http://www.jainkosh.org

सहजानंद शास्त्रमाला

सुभाषित रत्न संदोह प्रवचन

भाग-2

रचयिता

अध्यात्मयोगी, न्यायतीर्थ, सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री

पूज्य श्री क्षु० मनोहरजी वर्णी “सहजानन्द” महाराज

प्रकाशक

श्री सहजानंद शास्त्रमाला, मेरठ

एवं

श्री माणकचंद हीरालाल दिगम्बर जैन पारमार्थिक न्यास

गांधीनगर, इन्दौर

Online Version : 001

http://sahjanandvarnishastra.org/

आत्म-कीर्तन

अध्यात्मयोगी न्यायतीर्थ सिद्धान्तन्यायसाहित्यशास्त्री शान्तमूर्ति पूज्य श्री मनोहरजी वर्णी
"सहजानन्द" महाराज द्वारा रचित

हूं स्वतन्त्र निश्चल निष्काम । ज्ञाता द्रष्टा आतमराम ।।टेक।।

अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहं रागवितान ।
मैं वह हूं जो हैं भगवान, जो मैं हूं वह हैं भगवान ।।१।।

मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्ति सुख ज्ञान निधान ।
किन्तु आशवश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान ।।२।।

सुख दुःख दाता कोइ न आन, मोह राग दुःख की खान ।
निजको निज परको पर जान, फिर दुःखका नहिं लेश निदान ।।३।।

जिन शिव ब्रह्मा राम, विष्णु बुद्ध हरि जिसके नाम ।
राग त्यागि पहुंचूं निज धाम, आकुलताका फिर क्या काम ।।४।।

होता स्वयं जगत परिणाम, मैं जगका करता क्या काम ।
दूर हटो परकृत परिणाम, 'सहजानन्द' रहूं अभिराम ।।५।।

•••○◯○•••

[धर्मप्रेमी बंधुओ ! इस आत्मकीर्तनका निम्नांकित अवसरों पर निम्नांकित पद्धतियों में भारतमें अनेक स्थानोंपर पाठ किया जाता है । आप भी इसी प्रकार पाठ कीजिए]

१—शास्त्रसभाके अनन्तर या दो शास्त्रोंके बीचमें श्रोतावों द्वारा सामूहिक रूपमें ।
२—जाप, सामायिक, प्रतिक्रमणके अवसरपर ।
३—पाठशाला, शिक्षासदन, विद्यालय लगनेके समय छात्रों द्वारा ।
४—सूर्योदयसे एक घंटा पूर्व परिवारमें एकत्रित बालक, बालिका, महिला तथा पुरुषों द्वारा ।
५—किसी भी आपत्तिके समय या अन्य समय शान्तिके अर्थ स्वरुचिके अनुसार किसी अर्थ, चौपाई या पूर्ण छंदका पाठ शान्तिप्रेमी बन्धुओं द्वारा ।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

सुभाषित रत्नसंदोह प्रवचन

द्वितीय भाग

७—सदसत्स्वरूपनिरूपण

दुरंतमिथ्यात्वतमोदिवाकरा विलोकिताशेषपदार्थविस्तराः ।
उशंति मिथ्यात्वतमो जिनेश्वरा यथार्थतत्त्वाप्रतिपत्तिलक्षणं ॥१२८॥

मिथ्यात्वमें अलक्षित तत्त्वका मौलिक रूप—यहाँ अमितगति आचार्य कहते हैं कि यह जीव जिस भावके वश संसारमें अब तक जन्म मरण करता चला आया है वह मिथ्यास्वभाव क्या है ? तत्त्वोंकी वास्तविक प्रतीति न होना मिथ्यात्व है । धातुकी ओरसे मिथ्याका अर्थ उल्टा या विपरीत नहीं है, खोटा भी नहीं है, किन्तु उसका अर्थ है मिलावट होना । 'मिथुसंश्लेषणे' इस धातुसे मैथुन शब्द बना, जिसका अर्थ है मिलकर एक मानना, मिला देना, मिलावट । जैसे देहको आत्मा माना तो देहको लक्ष्य किया और आत्मारूपसे इसका भान किया, यह मिलना हुआ । जो तत्त्व जिस प्रकार है उस प्रकारसे न मानकर अन्यके मेलरूपसे मानना यह मिथ्या शब्दका शब्दार्थ है और फलितार्थ यही है—विपरीत, उल्टा और खोटा, तत्त्व किस प्रकारसे है इसका निर्णय स्वभावदृष्टिसे चलेगा । कोई पदार्थ स्वयं किस रूप है उसे कहते हैं भूतार्थ । भूतार्थका अर्थ है—स्वयं सहज जिस रूप हो उसे कहते हैं भूतार्थ । भू धातुका अर्थ लोग होना कहते हैं । वह होता है, सः भवति, किन्तु भू धातुका वास्तविक अर्थ क्या है ? भू सत्तायां, सही अर्थ लगाया, तो सः भवति का अर्थ हुआ, वह है, और लोग अस्तिका अर्थ क्या कहते हैं ? सः अस्ति, वह है और अस्ति शब्द बना है अस् धातुसे । और अस् धातुका अर्थ है असभुवि, होना अर्थ है । तो कैसा इन धातुवोंका आदान-प्रदान है, भू सत्तायां और असभुवि जिसका अर्थ यहीं यह निकल आता व्याकरण विधिमें कि होना है बिना नहीं और है होना बिना नहीं, भू धातुने असके हृदयको मंजूर किया और अस् धातुने भू हृदयको मंजूर किया । होना किसे कहते हैं ? है को कहते हैं । और है किसे कहते ? होने को कहते हैं । तो है और होनाका कैसा अविनाभावी सम्बंध है । यह एक व्याकरणकी मुद्रा ही बताती है, जिसका विस्तार करके चलें तो उत्पाद व्यय देख रहा है ध्रौव्यको, ध्रौव्य देख

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहा है उत्पादव्ययको। उत्पादव्यय होते रहनेके बिना ध्रौव्य नहीं, ध्रौव्य रहे बिना उत्पाद व्यय नहीं।

आत्माके भूतार्थ तथ्यकी महिमा—पदार्थ स्वयं अपने आपमें किस स्वरूप है? सो तो है अनिर्वचनीय। कई बातें ऐसी होती हैं कि देखने समझनेमें आ जायें, पर बोलनेमें न आ सकें। आप जब जा रहे हैं, यात्रा कर रहे हैं, कोई रेतीली नदी निकलती है तो आप देख डालते हैं सब रेतोंको, आपने सब दाने देख लिये, क्या है कितने दाने है, आप क्या बता सकते? हाँ तो वस्तुका स्वयं सहज जो अस्तित्व है वह कहलाता है भूतार्थ। और जो स्वयं सहज अस्तित्वमें नहीं है वह कहलाता है अभूतार्थ। यहाँ अभूतार्थके मायने झूठा नहीं है। कोई अभूतार्थ झूठे भी होते, कोई अभूतार्थ सच भी होते। अभूतार्थका अर्थ झूठा नहीं, किन्तु स्वयं सहज जो न हो वह अभूतार्थ। जो स्वयं सहज है वह भूतार्थ। तो यह भूतार्थ शुद्धनय का विषय है, जिसका आश्रय लेनेसे सम्यक्त्व होता है। सम्यग्दर्शनका निमित्त क्या है? ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय और क्षयोपशम। तो क्या जो यह बताया गया है और कर्तव्यमार्ग के लिए उपदेश किया गया है जिनबिम्बदर्शन, समवशरणमें जाना आदिक, क्या ये सम्यक्त्व के निमित्त नहीं हैं? हाँ सम्यक्त्वके निमित्त नहीं हैं। फिर इनका उपदेश क्यों किया गया गया है? क्या ये कर्तव्य नहीं हैं? हाँ कर्तव्य हैं। सम्यग्दर्शनसे पहले जो शुभोपयोग होता है उस शुभोपयोगके ये आश्रयभूत हैं। शुभोपयोगके निमित्त भी नहीं हैं, शुभोपयोगके निमित्त जो कर्मरूप हो वह है, कुछ क्षयोपशम कुछ उदय। जीवके भावोंके होनेमें कर्मदशाको छोड़कर अन्य कोई निमित्त नहीं हुआ करता। अन्य सब आश्रयभूत हैं। तो चूंकि शुभोपयोग हुए बिना सम्यग्दर्शन नहीं हुआ करता, अशुभोपयोगके बाद सम्यक्त्व नहीं होता। तो सम्यक्त्वसे पहले जो शुभोपयोग हुआ करते हैं उन शुभोपयोगके ये आश्रयभूत हैं, सो ये चलेंगे, पर सम्यक्त्व होता है तो एक भूतार्थके आश्रयसे ही, आत्माके सहज स्वभावके आश्रयसे ही और वहाँ निमित्त कारण होता है सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम।

निमित्तनैमित्तिक भावके परिचयसे स्वभावदर्शनकी शिक्षा—निमित्तनैमित्तिक भाव के परिचयसे स्वभावदर्शनकी शिक्षा मिला करती है। पर जब लोग आश्रयभूतको निमित्त कहने लगे तब उनको समझानेके लिए निमित्तके थोड़े खंडनकी जरूरत पड़ गई। यदि इसको आश्रयभूत कहकर ही समझाया जाय तो वहाँ भी व्यवस्था सही रही और यहाँ भी व्यवस्था सही रही। तो ७ तत्त्वोंकी यथार्थ प्रतीति न रहना मिथ्यात्व है, यह तो एक कार्य है, उसका उपादान यह आत्मा स्वयं है और निमित्त कारण मिथ्यात्वप्रकृतिका उदय है और यहाँ

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आश्रयभूत धन, घर, वैभव जिन जिनका आश्रय लेनेसे ये मिथ्यात्व व्यक्त होते हैं—कुदेव, कुशास्त्र, कुगुरु ये सब मिथ्यात्वके आश्रयभूत हैं। आत्माका परमार्थरूप क्या है ? जो निरपेक्ष हो, अपने आपके अस्तित्वसे ही हो वह स्वरूप चेतना चैतन्य। अब उस भूमिमें अन्य वैभव प्रतिबिम्बित हुए हैं जो मलिन बने हैं और भेदविज्ञान न होनेसे अज्ञानी बने हैं तो ये सब विकार हैं और विकारमें परसंग ही निमित्त होता है, स्वयं अपने आप निमित्त नहीं होता। यदि विकारका आत्मा स्वयं निमित्त रहे तब तो फिर विकार कभी मिट ही न सकेंगे। विकार को परभाव क्यों कहते ? परका निमित्त पाकर होने वाले विभाव परभाव कहलाते हैं। पर-भावका यों अर्थ करना कि परपदार्थमें उपयोग लगानेसे जो भाव बनता है उसे परभाव कहते हैं, यह अर्थ अव्यभिचारी नहीं है। सर्व विकारोंमें न घटेगा। आश्रयभूत पदार्थोंमें ही यह जीव उपयोग दे पाता है। कर्मदशारूप निमित्तमें कौन उपयोग देता है ? एकेन्द्रिय दोइन्द्रिय आदिक जीव ये कर्मकी बात न सुनें, न जानें। कुछ ही मनुष्य आगमके सहारे, युक्तिके सहारे उसका निर्णय करते हैं। पर कर्ममें उपयोग दें तब विभाव बनें यह बात नहीं बनती, किन्तु वहाँ ऐसा ही निमित्तनैमित्तिक योग है कि कर्मविपाक हुआ और अनिवारित प्रतिफलन हुआ, केवल एक छाया मायाकी मलिनता हुई। यदि आश्रयभूतमें उपयोग लगाया तो वह एकदम प्रकट हो गया, व्यवहारमें बन गया और यदि आश्रयभूतका उपयोग नहीं है, मंदिरमें, स्वानु-भूतिमें, शास्त्रमें इनमें उपयोग है तो क्रोधादिक कषायोंके उदय तो निरन्तर चल रहे हैं, पर वे व्यक्त नहीं होते, वे अव्यक्त होकर ही निकलते हैं। तो मिथ्यात्वप्रकृतिके उदयका निमित्त पाकर जीवमें होने वाले जो यथार्थकी अप्रतीतिरूप भाव है उसका नाम मिथ्यात्व है ऐसा जिनेन्द्रदेवने बताया।

हीनानुभागीय उदयमें प्रगतिका प्रारम्भ—जिन्होंने समस्त पदार्थोंको स्पष्ट रूपसे जाना उन्होंने भी किस प्रकार प्रगति की कि परमात्मपदको पाया ? जो भी सिद्ध हुए, अरहंत हुए वे जीव भी कभी निगोदमें ही थे, एकेन्द्रिय थे। साधारण वनस्पति थे। बडा कठिन है वहाँसे निकलना। इतना तो हम आप अपने लिए भला समझें कि निगोदसे निकल आये, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय आदिकसे निकल आये, संज्ञी पंचेन्द्रिय मनुष्य हुए हैं और हम नीचेकी गड़बड़ियोंके बारेमें चर्चामें ऐसी छान-बोन करें कि जिससे द्वेष भी बने तो उसकी क्या आव-श्यकता है आज, और हम जिस स्थितिमें हैं उससे आगे किस तरह बढ़ें और अपना उद्धार करें, यह एक जानने भरकी बात है।

यदि मनमें शंका हो कि वे निगोद जीव कौनसे पुरुषार्थसे वहाँसे निकले हैं और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बन जाते सीधा निगोदसे निकलकर। वहाँ भी क्या काम बन जाता ? सो भाई व्यवस्था यों है कि आज जो कर्म उदयमें आ रहे हैं सो वे एक समयके बंधे हुये कर्म नहीं हैं। आजसे करोड़ों पहलेके भवोंके बांधे हुए कर्म हैं और तबसे लेकर प्रतिसमयके बांधे कर्म हैं जो आज उदयमें हैं कर्म कहीं वह एक वक्तका बँधा हुआ नहीं है। वह अबसे पहलेके समस्त समयोंमें बँधे हुए कर्म उदयमें आये हैं। तो जब कर्मबन्ध होता है तो षड्गुण हानि वृद्धिके अनुसार नाना गुण हानिके अनुसार जितने समयके लिए कर्म बँधा है, आबाधाको छोड़कर सारे समयों में उदयमें आनेके लिए बँट जाते हैं। जैसे अबसे हजार वर्ष पहले कर्म बँधा और मानो १० हजार वर्षकी स्थितिके लिए बँधा तो तबसे थोड़े समय बादकी सारी स्थितियोंमें वे कर्म परमाणु बँट जाते हैं। जैसे एक खरब कर्म परमाणु एक समयमें बँधे तो उनके प्रत्येक समयमें विभाग हो जाते कि पहले समयमें हजार परमाणु उदयमें आयेंगे, उस एक समयके बँधेमें से दूसरे समयमें ६५०, तीसरे समयमें ६००, यों क्रमसे घट-घटकर १० हजार वर्षके अन्तमें मानो १० परमाणु उदयमें आये। यों कम-कम परमाणु उदयमें आते, मगर शक्ति कई-कई गुनी उनमें मिलती है, जहाँ हजार परमाणु उदयमें आये वहाँ शक्ति बहुत कम है। जहाँ १० परमाणु उदयमें आयेंगे उनमें अनुभाग बहुत तेज है। यह सब दृष्टान्त मात्र है, परमाणु तो अनन्त बँधते, विभक्त होते। हाँ तो जैसे कि एटममें बड़ी शक्ति है और मोटी चीजमें कम शक्ति है, तो प्रति समयके बँधे हैं और आज उदयमें हैं तो उनकी शक्तिका क्या अनुपात है ? बस वह अनुपात जब हीन आ जाता है तब उसे कहते हैं एक मौका। जैसे नदीका वेग कम हो गया सो चाहें तो वहाँसे पार हो जायें।

वर्तमान सत्समागमसे ऊँचा लाभ उठानेके लिये कर्तव्यकी दिशा – भैया, एक प्रकार से क्षयोपशम लब्धिमें एक वेग कम हुआ और वहाँ संक्लेश कम रहा, आयुबंधका सम्बन्ध हुआ, बात बन गई, मगर इन बातोंकी चर्चामें अपना क्यों समय खोना ? हम आप तो संज्ञी हैं, पंचेन्द्रिय हैं और ऊँची स्थितिमें हैं। यहाँ तो यह बात करनी चाहिये कि हम क्या पौरुष करें कि हम अपने शान्तिमार्गमें सतत प्रगतिशील रह सकें। तो हम आप लोगोंका मुख्य कर्तव्य तो एक लक्ष्यभूत यही है कि जो सहज आत्मस्वरूप है सहज ज्ञानदर्शन स्वभाव चेतना मात्र, प्रतिभासमात्र जिसमें इष्ट अनिष्ट भाव नहीं, रागद्वेष विकल्प नहीं। यद्यपि विकार हैं, पर समझ लेंगे कि वे नैमित्तिक हैं, वह छाया माया है कर्म अनुभागकी। उससे अछूता अपने को चैतन्यमात्र निरखे, यह दृष्टि बन सके और इस दृष्टिमें कुछ ठहरकर किसी समय सर्व विकल्प छूटकर ज्ञानज्योति मात्र ही ज्ञानमें रहे और वहाँ अलौकिक आनन्दका अनुभव हो तो वह स्थिति है हम आपके लिए प्रगतिकी। लेकिन ऐसी बात करते-करते भी नहीं बन पाती।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

एक बार बनी हो तो मानो न जाने कहाँ वह सब भाग जाती हैं कि प्रयत्न करके भी नहीं बन पाती। तो सारा जीवन दिन-रात पड़े हैं और मन, वचन, काय ये ऊधम किए बिना रहते नहीं हैं, तो उस समय अपना क्या कर्तव्य है ? इसीका ही तो उत्तर है चरणानुयोग। उस विधिसे अपना जीवन रखें तो कुछ पात्र रहे आयेंगे कि हम आत्मस्वभावकी दृष्टिको प्राप्त कर लें। अन्यथा यह विनोदकी स्थिति बन जाती है, एक शौक हो जाता है, व्यसन हो जाता है अध्यात्मकी बातको एक अलौकिक शब्दों में कहनेका व्यसन पड़ जाता है, तब उसका असर नहीं रहता। जैसे किसी बर्तन बनानेके कारखानेमें टनटनकी खूब आवाज निरन्तर आती है, फिर भी उसके अन्दर खूंटी या किसी आलेमें रहने वाला कबूतर उड़कर भागता नहीं है, वहीं बैठा रहता है। अब कोई मानो उस कबूतरसे ही पूछे कि रे कबूतर तू इतनी तेज ठन-ठनमें भी उड़कर क्यों नहीं भाग जाता, तू तो जरासी आवाजमें उड़ने वाला पक्षी है। तो उसका यही उत्तर है कि क्या करें, ऐसी ठन-ठन तो रोज-रोज होती है और इसको सुननेकी मुझे खूब आदत बन गई है, इसलिए कोई भय नहीं होता।

ज्ञानमय पौरुषका निमित्त पाकर कर्मोंमें क्षीणता होना—अपने दिन-रातका जीवन यदि जिनेन्द्रदेवके द्वारा बताये गए एक आत्मनियंत्रणमें है, सदाचारमें है, प्रभुकी श्रद्धासहित प्रभुके बताये गए नियममें रहते हैं तो वहाँ यह एक पात्रता रहती है कि हम उस आत्मस्व-भावको पुनः दर्शनमें ले सकें, और यदि चारित्र अपना सही न रखें और मन, वचन, काय को स्वच्छंद प्रवर्ताते रहें और यही यही कषायकी बात गाते रहें तो वह निष्प्रभाव बन जाता है। इससे शेष समय किस रूपमें बिताना इसके लिए चरणानुयोगका हुक्म लीजिए और मूल लक्ष्य हमें क्या रखना इसके लिए द्रव्यानुयोगका हुक्म लीजिये और हम ठीक विधिसे चलते रहे, हमारा काम सही चलता रहे, ठीक रास्तेसे गाड़ी जा रही, इसकी परीक्षाके लिए कर-णानुयोगका बल लीजिए। कभी अपना उत्साह घटे तो प्रथमानुयोगकी कथाओं में बड़े पुरुषों के कथानक सुनकर अपने दिलमें उमंग बढ़ाइये। तो यों जिस किसी भी प्रकार हो, चाहिये यह कि हम अपने आत्मस्वभावकी दृष्टिको बराबर बनाये रहें और इसके लिए आज इस स्थितिमें हैं हम आप कि एक बातसे बात न बनेगी। हमको सर्व प्रकारसे पौरुष करना होगा। तो जो प्रभु बने हैं उन्होंने क्या किया ? ऐसा चल-चलकर क्षयोपशम पा-पाकर विशुद्ध लब्धिमें आये, सत्संगमें आये, देशना पायी, तत्त्वचिन्तन किया। तो जैसे कहते हैं ना कि *कर्मोदयका निमित्त होनेपर जीवमें रागद्वेषादिक विकार जगते हैं। तो यह भी बात है कि* स्वाध्याय, सत्संग, तत्त्वचिन्तन, तत्त्वचर्चा, आत्माभिमुखताका प्रयास इन बातोंके होनेका निमित्त पाकर बँधे हुए कर्मोंमें शिथिलता आती है, निर्जरण होता है। जैसे—मिथ्यात्व गुण-

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थानमें ही बताया गया है कि कैसे मिथ्यात्वप्रकृति अनन्तानुबंधो प्रकृति निर्बल होती, कैसे संक्रान्त होती है, कैसे क्षीण होती है फिर कभी उनका उपशम आदि होता है, लो सम्यग्दर्शन हो जाता है। तो निमित्तनैमित्तिककी बात दोनों ओरसे है।

सहजात्मस्वभावकी दृष्टि करना जीवनमें एक मात्र कर्तव्य—भैया, जब हम आपको एक विशेष प्रतिभा मिली है, चिन्तनशक्ति मिली है, स्वभावदृष्टि करनेका हम पौरुष कर पाते हैं, समझ बनाते हैं तो हमारे इन पौरुषोंका निमित्त पाकर उन सत् कर्मोंमें हानि होने लगती है। तो केवल एक ही काम अपनेको अपने स्वभावरूप प्रतीति रखनेका हमारा उद्यम रहे, बाकी जो व्यवहारधर्म हैं ये उपलक्ष्य हैं और आत्मस्वभाव दृष्टि यह लक्ष्य है। जैसे आपको कोई एक भवन बनवाना है तो यह तो आपका लक्ष्य हुआ, पर रोज-रोज अनेक उपलक्ष्य भी चलते—जैसे कहीं लोहा ला रहे, कहीं सीमेन्ट ला रहे, कहीं परमिट ला रहे, कहीं कारीगरों के पास जा रहे, कहीं मजदूरोंसे मिल रहे या कहीं मकानका नक्शा बनवाने जा रहे, कहीं रोड़ी वालेसे बात कर रहे, कहीं भट्टे वालेसे बात कर रहे, तो ये सब उपलक्ष्य कहलाये और लक्ष्य कहलाया सिर्फ एक—भवन बनवानेका। तो ऐसे ही व्यवहारधर्ममें किए जाने वाले सारे काम व्यवहार करनेके लिए नहीं हैं, आत्मस्वभावकी दृष्टिके लिए हैं, पर उनके किए बिना भी काम न चलेगा। ये रोज-रोजके उपलक्ष्य भी रहेंगे और जिसके लिए किए गए हैं उसकी दृष्टि बिना वे सब ज्ञानरहित रहेंगे। सो जीवन बनायें अपना चारित्रपूर्ण गतिके साथ। जिसका जितनेमें सम्भव हो उस प्रकारके आचरणके साथ और दृष्टि रखें हम आत्मस्वभावकी, यह ही मात्र एक कर्तव्य है, दूसरा और कुछ काम है ही नहीं। जैसा हूं वैसा अपनेको मानकर अपनेमें मग्न होऊँ, आऊँ, उतरूँ, रम लूं निजमें। बाहरी भोगोंसे उपयोग हटाकर उपयोगको अपने आपमें लगाना है। अपने स्वरूपको निहारना है, उस ही में उतरना है और उस ही को निहारते रहना है, बस यही एक कार्य है जो अभी तक नहीं किया, जिससे संसार में रुलते आये।

विमूढतैकांतविनीतसंशयप्रतीपताग्राहनिसर्गभेदतः।
जिनैश्च मिथ्यात्वमनेकधोदितं भवार्णवभ्रांतिकरं शरीरिणां ॥१२६॥

पंच मिथ्यात्वोंमें अज्ञान व एकान्त मिथ्यात्वका निर्देश—जिस मिथ्यात्वके वश होकर यह जीव चतुर्गतिमें डोल रहा है वह मिथ्यात्व अनेक प्रकारका बताया गया। ५ भेदरूपमें मिथ्यात्व कहे गए हैं—(१) अज्ञानमिथ्यात्व, (२) एकान्तमिथ्यात्व, (३) विनयमिथ्यात्व, (४) संशयमिथ्यात्व और (५) विपरीतमिथ्यात्व। अज्ञान मिथ्यात्वमें कोई बोध नहीं। सभी अनन्तानन्त जीव अज्ञान मिथ्यात्वमें पड़े हैं। एकेन्द्रिय आदिक इन सभीके अज्ञानमिथ्यात्व

Report any errors at rjinrd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पाया जा रहा है। यद्यपि एकान्त विनय संशय वाला मिथ्यात्वप्रवृत्ति रूपसे संज्ञी पञ्चेन्द्रिय के ही हो सकेगा, ऐसा विदित होता है। तथापि उनकी योग्यता उनके आधारकी दृष्टिसे सभी मिथ्यादृष्टियोंमें ये पाये जाते हैं। अज्ञानमिथ्यात्व—हित अहितका ज्ञान न होना, आहारसंज्ञा, भयसंज्ञा, मैथुनसंज्ञा, परिग्रहसंज्ञा, इन चार संज्ञावोंसे पीड़ित होकर अपने विषयोंकी ही वासनामें रहना, यह फल अज्ञानमिथ्यात्वमें चलता है। एकान्त मिथ्यात्व—एक ही धर्मका एकान्त कर लेना, ऐसी ही श्रद्धा बनाना एकान्तमिथ्यात्व है। द्वादशांगवाणीमें सबका वर्णन किया है। जितना भी एकान्तवाद है सब एकान्तवाद दृष्टिवाद अंगमें वर्णित है। जो यहाँ द्वादशांगमें न बताया हो वह किसीके भी आयगा कहाँसे? पापको पाप बताया और पाप बताया द्वादशाङ्गमें, उसका अर्थ यह नहीं कि पाप कर्तव्य है। एकान्तवाद बताया द्वादशाङ्ग में उसका अर्थ यह नहीं कि यह श्रद्धातव्य है। वर्णन सबका पाया जायगा। अनन्त धर्मात्मक वस्तुमें किसी एक धर्मका आग्रह करना और अन्य धर्मोंका प्रतिषेध करना यह ही एकान्त मिथ्यात्व है।

स्याद्वाद और एकान्तवादका विश्लेषण—अनेकान्तका आधार है वस्तुका द्रव्यपर्यायात्मक होना। चूंकि प्रत्येक सत् द्रव्य पर्यायात्मक है, इस कारण अनेकान्त विधिसे, स्याद्वाद विधिसे वस्तुका परिचय बनेगा। केवल द्रव्यका ही वर्णन हो तो वस्तुका परिचय पूर्ण नहीं है, केवल पर्यायका ही वर्णन हो तो वह वस्तुका पूर्ण परिचय नहीं हैं। द्रव्य बिना पर्याय नहीं, पर्याय बिना द्रव्य नहीं। यहाँ द्रव्यका अर्थ गुणपर्ययवत् द्रव्य न लेना, किन्तु जो अन्वयी है उस अंशको द्रव्य कहते हैं। तो जब जीवके बारेमें वर्णन किया जाय तो कहना होगा कि जीव नित्य है द्रव्यदृष्टिसे और जीव नित्य नहीं है पर्यायदृष्टिसे। एक ही धर्मका विधि और निषेध बनाकर उनका वर्णन करना अनेकान्त नहीं है। जैसे जीव नित्य है अनित्य नहीं, यह अनेकान्त नहीं कहलाता, क्योंकि उसमें द्रव्यदृष्टिके धर्मका ही विधि और निषेध रूपसे वर्णन है। यदि एक धर्मका ही विधि निषेधका वर्णन होनेसे स्याद्वाद कहा जाय तब तो सभी स्याद्वादी हो गए। बौद्ध लोग कहते हैं कि वस्तु क्षणिक है, अक्षणिक नहीं, सांख्य कहते हैं कि वस्तु कूटस्थ ध्रुव है अध्रुव नहीं। फिर तो किसीका सिद्धान्त गलत नहीं कहा जा सकता। विधिनिषेध सबके साथ लगा हुआ है तो वह एक दृष्टिका पुष्ट निर्णय है। एक दृष्टिके पुष्ट निर्णयका एक दृष्टिका ही निर्णय कहा जायगा, स्याद्वाद न कहा जायगा। और अब उस आधारको छोड़कर यह प्रथा चलने लगी है कि जिसको जो बात सिद्ध करना है बस उसको विधि निषेध कहकर बोल दे और दुनियाको बहका दे कि देखो हम अनेकान्तसे कह रहे कि नहीं। जीव नित्य है, अनित्य नहीं। देखो हाँ कह दिया, न कह दिया। अरे विरुद्ध धर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कहाँ आया ? जीव नित्य है में क्या कहा गया ? शाश्वत है सो यही अनित्य नहीं। पक्षमें कहा गया। द्रव्य और पर्याय दोनों दृष्टियोंके आधारसे विरुद्ध धर्मोंका जो वर्णन जो किया जाता है वही स्याद्वाद अनेकान्त कहलाता है। तो वस्तु द्रव्य पर्यायात्मक है। उसमेंसे केवल द्रव्यदृष्टिका वर्णन एकान्त है, पर्यायदृष्टिका वर्णन एकान्त है। द्रव्य पर्यायात्मक वस्तुको जानकर फिर जिस दृष्टिको मुख्य करनेमें आत्मस्वभावकी दृष्टि बनती हो, आत्मकल्याण होता है उस दृष्टिको मुख्य कर लीजिये, अन्य दृष्टिको गौण कर लीजिये, यह तो मोक्षमार्गकी प्रगतिमें विधेय है। मगर ज्ञान करते समय एक ही दृष्टिका परिचय लेना अन्य दृष्टिका निषेध करना वह बिल्कुल स्याद्वादसे बाह्य चीज है। तो यह है एकान्तमिथ्यात्व। जीव एक है या अनेक है ? सामान्य स्वरूपकी दृष्टिसे एक है, आवान्तर सत्ताकी अथवा अनुभूतिकी दृष्टिसे जीव अनेक है। उनमें से जीव एक है इस नयको अपना लिया ब्रह्माद्वैत आदिकने और जीव अनेक हैं, इसको इस तरह अपनाया बढ़कर क्षणिकवादियोंने कि केवल एक पर्यायको पूर्ण जीवद्रव्य स्वीकार करके कहते हैं। जब कि जैनशासन एक ही जीवमें एक और अनेक बातें बताता है। वह जीव द्रव्यदृष्टिसे याने सामान्यदृष्टिसे एक है और पर्यायदृष्टिसे याने विशेष दृष्टिसे अनेक है। तो द्रव्य और पर्याय इन दोनों दृष्टियोंसे वस्तुका वर्णन करना स्याद्वाद कहलाता है। इस पद्धतिको छोड़कर जो एक ही दृष्टिकी बातको विधि निषेध द्वारा बोलकर बहकाने वाली बात हो वह स्याद्वाद सम्मत नहीं कहलाती। यह है एकान्तमिथ्यात्व।

पंच मिथ्यात्वोंमें विनय मिथ्यात्वका निर्देश—विनय मिथ्यात्व—सभी हमारे प्रभु हैं, सभी हमारे गुरु हैं। हमसे तो सब बड़े ही हैं, सबका विनय करना, धर्मदृष्टिसे वह विनयमिथ्यात्व है। विनयमिथ्यादृष्टि दलील देते हैं ऐसी कि कोई किसी रास्तेसे चले, कोई किसी रास्तेसे चल रहा हो, जा रहे सब एक मोक्षके महलमें ही। पर क्या ऐसा हो सकता कि कोई किसी रास्तेसे जाय, कोई किसी रास्तेसे जाय और वे एक जगह पहुंच जायेंगे ? नहीं हो सकता। अच्छा, और हो सकता है। देखिये—आपके इस मंदिरमें आनेके तीन चार रास्ते हैं, आप सबको मालूम है और सब लोग मंदिर आ भी जाते, पर यहाँ तो कहा जा रहा कि एक ही जगह नहीं आ सकते सो क्यों ? देखो चाहे कोई कितने ही रास्तोंसे आये, पर मंदिरके अन्दर प्रवेश होनेका रास्ता तो एक ही है ना ? हाँ पहलेके जो रास्ते हैं वे जरूर भिन्न-भिन्न हो गए। मगर वे भिन्न-भिन्न रास्ते भी एक इस रास्तेपर पहुंचनेके लिए हैं, इसलिए वे अनेक प्रकारके होकर भी एकके ही साधक हैं, ऐसे ही मोक्षमार्गमें चलने वालोंके कुछ दूर तक तो अनेक रास्ते हैं, कोई गृहस्थ धर्ममें रहकर मोक्षमार्गमें चल रहा है, कोई मुनिधर्ममें रहकर मोक्षमार्ग में चल रहा है, उसमें भी बहुत विधियाँ हैं, मगर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

वह व्यवहारधर्म, वह परम्पराकी बात, दूरकी बातमें भेद पड़ गया है। अब चाहे गृहस्थका धर्म हो, चाहे मुनिका धर्म हो, सब ज्ञानियोंकी दृष्टिमें एक आत्मस्वभावकी दृष्टि, आत्मस्वभाव का रमण, आत्मस्वभावमें मग्नताका ही ध्येय है। चाहे गृहस्थ हो और चाहे मुनि हो, मुनि आगे हैं, गृहस्थ पीछेके रास्तेमें है, पर अभिमुखता दोनोंकी एक ओर ही होती, इस तरह तो यथायोग्य विधि बन जायगी। सप्तम प्रतिमाधारीका भी विनय, क्षुल्लक, ऐलकका भी विनय, मुनिका भी विनय, यों तो विनय एकान्त न बनेगा, पर जहाँ लक्ष्य नहीं है, मोक्ष का स्वरूप, मोक्षमार्गकी अभिमुखता यह बात जहाँ नहीं है, ये जो अनेक सिद्धान्त हैं उनमें सबको एक समान मानकर विनयभाव करना यह विनय एकान्त है। जैनशासनमें पूजा, आदर, विनय धर्मदृष्टिमें त्याग और व्रतको ही कहा गया है। केवल सम्यग्दर्शन होनेसे उसकी महिमा बतानेके समय उसकी प्रशंसा गायी गई है, पर सम्यग्दृष्टि मात्र हो, अव्रती हो तो उसको जैनशासनमें यह विनय, पूजा आदिककी बात नहीं कही गई, क्योंकि उसमें फिर अव्यवस्था है। क्या पता कहो इन गाय, बैल, घोड़ा आदिक जानवरोंमें भी अनेकोंको सम्यग्दर्शन हो। होता ही है अनेक पशुवोंको सम्यग्दर्शन। बताया है कि जितने मनुष्य सम्यग्दृष्टि हैं उनसे कई गुने अधिक सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च होते हैं संसारमें। सम्यग्दृष्टि मनुष्योंकी संख्या बहुत कम है, उनसे अधिक सम्यग्दृष्टि जीव देवोंमें भी मिलेंगे और तिर्यञ्चोंमें तो बहुत अधिक मिलेंगे। ढाई दीपमें सम्यग्दृष्टि तिर्यञ्च भी मिलेंगे और ढाई द्वीपसे बाहर अन्तिम द्वीप समुद्रको छोड़कर बीचके जितने अनगिनते द्वीप समुद्र हैं उनमें पशुवोंकी संख्या अधिक है सम्यग्दृष्टि और पंचम गुणस्थान वाले भी मनुष्योंकी अपेक्षा तिर्यञ्चोंमें बहुत पाये जाते हैं। विनयमिथ्यात्व—सभी अनुयायी, सभी संन्यासी, सभी लोगोंको, सभी देवोंको, सभी मूर्तियोंको एक समान समझकर, हैं तो सब हमसे बड़े, हैं तो सब भगवानके रूप, ऐसी आस्था रखकर विनय करना विनय मिथ्यात्व कहा है।

पंच मिथ्यात्वोंमें संशयमिथ्यात्व व विपरीतमिथ्यात्वका निर्देश—संशयमिथ्यात्व—वस्तुके सम्बंधमें अनेक कोटि स्पर्श करने वाला ज्ञान संशय कहलाता है, और उसमें आस्था न बन सके वह संशयमिथ्यात्व है। आत्मा है या नहीं, अमुक बात है या नहीं, इसे कहते हैं संशय मिथ्यात्व। विपरीत मिथ्यात्व—वस्तु है अन्य प्रकार, मान ले अन्य प्रकार इसे कहते हैं विपरीत मिथ्यात्व।

दृष्टियोंसे दर्शनकी संभूति—देखिये—जितने दार्शनिक हैं, जो मूल प्रयोग हैं, मेरे ख्यालसे उन्होंने बेइमानी करके, जानबूझ करके इन दर्शनोंकी रचना नहीं की, किन्तु सब सुनते पढ़ते-लिखते चले आये उसी बीच उनको जैसी श्रद्धा बनी जिस एकान्ततत्त्व की, उसका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उन्होंने निरूपण किया। और जब नय विभागसे पता पड़ेंगे तो सभी दार्शनिकोंकी बात एक सही ज्ञात होगी कि इसका यह भाव है, इस इस प्रकारसे यह इस तत्त्वपर आया। इस विषय में एक अध्यात्मसहस्री पुस्तक है उसमें एक अध्यायमें यह ही सूत्र बताया गया कि किस दृष्टि से किसका सिद्धान्त बना हुआ है। कठिनसे भी कठिन कोई बात ले लो पुरातन दार्शनिकोंकी वह किसी नय विभागसे मिलेगा। कहीं एक नयसे मिलेगा कहीं दो तीन नयोंका संयोग समागमसे मिलेगा, पर उनके आशयका पता यह नय पाड़ देगा कि किस अभिप्रायमें रहकर उन्होंने यह बात देखी और फिर उसका एक एकान्त बन गया। जैसे ईश्वर जगत्का कर्ता है इसके मानने वाले अनेक दार्शनिक हैं, और आजके उठे हुए सम्प्रदाय भी हैं। वहां ईश्वरका अर्थ क्या है ? जो स्वयं अपने ऐश्वर्यमें यथार्थ हो, अपनी परिणति करनेमें दूसरेकी परिणति की अपेक्षा न करनी पड़ती हो, अर्थात् अन्य पदार्थोंकी परिणतिका साझेदार बनाकर परिणमन न करना पड़ता हो उसकी साझेदारीके बिना केवलका परिणमन चले उसे कहते हैं ईश्वर। वे हैं प्रत्येक जीव। प्रत्येक जीव अपनी सृष्टिको, निमित्तको, उपादानको करता चला आ रहा है। जैसा शरीर मिला, तो जीवके जैसे भाव हुए उस प्रकारका कर्मबंध होना उस कर्मके उदयमें आहार वर्गणावोंका वहां परिणमन हुआ। लेकिन शरीररचना इस जीव ईश्वरके कारणसे हुई। क्रोध, मान, माया, लोभ यह रचना जीवकी हुई। सर्व सृष्टियोंका कर्ता कहीं विचित्रतया, कहीं निमित्ततया यह जीव पाया जाता है। जगत्में जो कुछ भी यह दिख रहा है खम्भा, पत्थर, चटाई, कपड़ा इनमें कुछ भी ये सब जीवके शरीर हैं। कोई जीवके द्वारा छोड़ा गया शरीर है। कोई जीवसहित शरीर है, यह खम्भा खड़ा है, यह जीवसे त्यक्त शरीर है, इसकी यह शक्ल न बन सकती थी यदि जीवका सम्बंध न होता। जो कुछ दिख रहा है ये सब शक्ल कभी भी न बन सकते थे यदि इनमें कभी जीवका सम्बंध न होता। यह खान में था, वहां जीवका सम्बंध था, यह शक्ल बन गई, बढ़ गई, वहांसे निकाल लिया तो मृतक हो गया, पर जो दिख रहा है वह सब जीवका देह है। कोई मुर्दा देह है, कोई जीवित देह है, तो आखिर ये सब सृष्टियां जीवकी ही तो हुईं, होता भिन्न-भिन्न जीवों द्वारा, एक जीव द्वारा नहीं। तो यहां तक आये कि जीव ईश्वर द्वारा यह सब सृष्टि चली। अब इस निर्णय के बाद वे सब जीव स्वरूपतया एक दिखे, जीवके स्वरूपपर दृष्टि गई तो एक नजर आया। तो कहीं कुछ समझ आयी, कहीं कुछ समझ आयी। अनेक जीव ईश्वर सृष्टिकर्ता हैं। स्वरूप देखें तो वह ईश्वर केवल एक विदित हुआ, ऐसा होते-होते एक ईश्वर सृष्टिकर्ता है, यह सिद्धांत बन गया। जब प्रारम्भ हुआ होगा तब ऐसा ही आशय मिलता-जुलता था। आज वह आशय न रहा और एकदम ऐसी बात चित्तमें आयी लोगोंके कि जैसे कुम्हारने घड़ा

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बनाया वैसे ही ईश्वरने सारी सृष्टियोंको कर दिया। इसके आगे तो अन्य विषय बहुत छोटे हल्के हैं। वे तो नयविभागसे जल्दी सिद्ध हो जाते हैं। तो विपरीतमिथ्यात्व वस्तु और भाँति है, मान्यता और भाँति है उसे विपरीत मिथ्यात्व कहते हैं।

मिथ्यात्वकी अधिगमजता व निसर्गजता—५ प्रकारके मिथ्यात्वके वश होकर यह जीव संसारमें रुल रहा है। यह मिथ्यात्व कहीं तो समझानेसे बनता है और कहीं बिना समझाये बन रहा। मिथ्यात्वके अधिकारी अनंत जीव हैं। समझाकर बने हुए मिथ्यात्वके अधिकारी थोड़े जीव हैं। समझाकर बने मिथ्यात्वका नाम है गृहीत मिथ्यात्व। स्वभावतः निसर्गतः बिना ही समझाये चल रहे मिथ्यात्वका नाम है अगृहीत मिथ्यात्व। गृहीत मिथ्यात्व जिसके होता है वह उसे पूर्ण सत्य समझता है और उसे कोई दिशा नही मिलती सही कि जिससे वह समझ जाय कि यह क्या सत्य भी है? उसे सत्य समझता है और उसपर इतना तीव्र आग्रह रखता है। सत्य समझने वालेको सोचता है कि यह अनभिज्ञ है। इसको क्या पता है? बात तो वास्तविक यह है। जब कोई भविष्य अच्छा हो और चीजको प्रयोगरूपमें लेने लगे तब उसका निर्णय करना आसान होता है। केवल बोलता ही बोलता रहे और प्रयोग करनेकी भावना ही न हो तो वहाँ उसका निर्णय करनेका मौका खतम रहता है। जैसा किसीने सुनाया, जैसा बताया, कुछ शब्दोंमें प्रियताकी चाल होनी चाहिए वहाँ गृहीत मिथ्यात्व लग जाता है। और फिर वह गृहीत मिथ्यादृष्टि अन्य किसीकी बताई हुई बातको स्वीकार करनेसे लाचार हो जाता है। एक छोटे देहातके गाँवके किनारे कोई बढ़ई रहता था और वह बहुत मजाकिया था। सो जो कोई मुसाफिर उस गाँवसे होकर निकलता था वह उस बढ़ईके घरके पाससे होकर निकलता था। जो भी मुसाफिर उससे किसी गाँवका रास्ता पूछता तो वह गलत रास्ता बता दिया करता था। और साथ ही यह भी कह दिया करता था कि देखो इस गाँवके सभी लोग मसखरे हैं, उनसे तुम रास्ता पूछोगे तो वे तुम्हें गलत मार्ग बता देंगे, उनके कहनेमें तुम न आना। एक दिन कोई मुसाफिर उसके द्वारसे निकला, किसी गाँवका रास्ता पूछा, तो था तो मानो रास्ता वहाँसे पूरब दिशाकी ओर, मगर उसने बता दिया दक्षिण दिशाकी ओर। जब वह कुछ आगे बढ़ा और रास्ता पूछा तो लोगोंने बताया—अरे तुम गलत रास्ता आ गए, उस गाँवका रास्ता तो उस बढ़ईके घरके पाससे पूरब दिशाको जाता है। सभी लोगोंने यही बात कही, तो उस मुसाफिरको उनकी बातपर विश्वास न हुआ, समझ लिया कि बढ़ईने सच ही कहा था कि इस गाँवके सभी लोग मसखरे हैं। आखिर वह उसी गलत मार्गको सही समझकर आगे बढ़ता गया। काफी दूर निकल गया। आगे कोई दूसरा गाँव मिला, वहाँके लोगोंसे रास्ता पूछा तो लोगोंने बताया कि उस गाँवका रास्ता तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

तुम बिल्कुल गलत आ गए। यहाँसे वापिस उस गाँव जावो और वहाँसे एक रास्ता जो पूरब दिशाको जाता है उस रास्तेसे जावोगे तो सीधे तुम अपने निर्दिष्ट स्थानपर पहुंच जावोगे। आखिर उस मुसाफिरको वापिस लौटना पड़ा तब कहीं उस गाँवका रास्ता पाया। तो जब खुद प्रयोग रूपसे चलें, करना है आत्मस्वभावकी दृष्टि। उद्यम करनेकी धुन हो तो बाकी समयोंमें सर्व पता पड़ जाता है कि हमको किस विधिसे रहना है। किस विधिसे चिन्तन करना है।

आत्महिताभिलाषा होनेपर आत्मोपलब्धिके मार्गकी उपलब्धि—केवल आत्महितका अभिलाषी सर्वत्र निर्णय करनेको तैयार रहता है। वह सर्व कथनोंमें अपनी धुनकी ही बात रखता है। जैसे लोभी पुरुष कुछ भी बात कहे, मगर धनार्जनकी बातका ध्यान उसके मुख्य रूपसे रहता है, ऐसे ही आत्मधुनका स्वामी किन्हीं भी कथनोंको सुने, किसी भी अनुयोगका अध्ययन करे, सबसे उसे आत्मतत्त्व तक पहुंचनेकी विधि मिल जाती है। प्रयोग करना चाहे तो उसे सब जगह मार्ग मिल जायगा, पर केवल बोलना, पक्ष या अन्य जो कुछ भी बात चित्तमें है पार्टी मजबूत करना या जो भी ध्येय बने हों, उन ध्येयोंके रहते हुए इस जैनशासन के कथनोंमें से कोई सारभूत बात ग्रहण न कर सकेंगे। जो केवल आत्महितकी भावना रखता हो उसको मार्ग मिल जायगा, पर जो आत्महितकी भावनासे रहित है वह किन्हीं भी विधियों में मार्ग न पायगा। तो जो निसर्ग मिथ्यात्वमें है उसे मार्ग मिलना सरल होता है। कोई संज्ञी पञ्चेन्द्रिय हो, पर गृहीत मिथ्यात्व हो तो उसको मार्ग पाना कठिन होता है। जो वास्तवमें सोया हुआ हो उसको जगाना सफल होता है और जो जान-बूझकर आँखें मींचकर सोनेका रूप बना रहा है उसका जगाना कठिन होता है। तो ऐसे अनेक मिथ्यात्वके वश होकर यह जीव चतुर्गतिमें भ्रमण करता है।

परिग्रहेणापि युतांस्तपस्विनो वधेऽपि धर्मं बहुधा शरीरिणां।
अनेकदोषामपि देवतां जनस्विमोहमिथ्यात्ववशेन भाषते ॥१३०॥

मोहकी प्रबल बैरिता—जो जीव मिथ्यात्वके वशमें है वह जब कुछ बुद्धि पाता है तो किस तरह अपनी बुद्धि चलाता है, यह बात इस छंदमें कही गई है। देखिये—सबसे प्रबल बैरी हम आपका मोहभाव है। बाहरमें किसीको बैरी मानना यह सब कल्पना है और मिथ्या है। दूसरा कोई भी जीव मेरा बैरी नहीं है। यदि कोई दूसरे लोग मेरा अनर्थ करते हैं तो मेरे ही पापका उदय उसमें मुख्य निमित्त है। जैसा पुण्य कमाया है वैसा उदयमें आ रहा है। कोई दूसरा जीव मेरा बैरी नहीं है। मेरा बैरी मेरा मोहभाव हैं, रागद्वेष भी बैरी हैं, पर प्रबल बैरी, बैरियोंका राजा मोहभाव है। मोह मायने भेद ज्ञात न हो सकना परमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

और स्वमें एकता जानना इसे मोह कहते हैं जैसे शरीरको ही समझा कि यह मैं हूं, देहको ही जीव मान लिया यह मिथ्यात्व हुआ। तो यह मिथ्यात्व तो है ही, पर कुछ बुद्धि मिलती है, तो यह कुगुरु, कुदेव, कुशास्त्रको भी हितकारी मानने लगता है।

मिथ्यात्वमें देवमूढ़ता—मूढ़तायें ३ कही गई हैं—(१) देवमूढ़ता, (२) पाखण्डमूढ़ता और (३) लोकमूढ़ता। देवमूढ़ता उसे कहते हैं जो जीव रागी द्वेषी है, जिसकी वृत्तियाँ विकारोंसे भरपूर हैं तो भी उन्हें देव मानना अथवा वे अपनेको देवरूपसे जनायें तो इनको देव मानना यह देवमूढ़ता है। देखिये—अपनेको क्या करना है? जिससे शान्ति मिले, राग-द्वेष मोहसे रहित होना है। और अपने स्वरूप आत्मामें अपने उपयोगको लीन करना है। तो ये बातें जहाँ हो चुकीं हों उनकी ही सेवामें तो लाभ है या जो इनसे विपरीत हैं, विषयकषाय के वश हैं, रागद्वेष हो रहे हैं तो क्या उनकी आराधना पूजासे लाभ है? संसार तो दुःखमय है। संसारकी कोई भी चीज चाहने योग्य नहीं है। मानो कोई देशका राजा बन गया तो क्या वह सुखी हो गया? अरे उसकी चिंतायें उसके साथ हैं, और राज्य छिन जाय, जैसे कि आजकल वोटोंके आधारपर बड़े बनते हैं, मिनिस्ट बनते हैं और अगले चुनावमें वोटोंमें हार जायें तो उनको कितना परेशान होना पड़ता है। तो संसारकी कौनसी ऐसी वस्तु है जो इस जीवको सुख दे सकती है? कुछ भी पदार्थ नहीं। जो आज दिख रहा है कि यह बहुत ऊँची विभूति है, यह बड़ा अच्छा पदार्थ है, तो वह दुःखका ही कारण बनता है। देखिये—जो जितना अधिक ऊँचाईसे गिरेगा वह उतना ही अधिक चोट खायगा। तो संसारमें कुछ ऊँचा कहलवानेकी बात न विचारें। यहाँ चाहें तो यह चाहें कि मुझे चाहिये वीतरागता। इसके लिए वीतराग देवकी उपासना करें। जो जीव मोह मिथ्यात्वके वशमें है वे स्वयं रागी द्वेषी हैं, वे देव नहीं हैं। उनकी आराधना करना देवमूढ़ता है।

मोहमें पाखण्डिमूढ़ता—पाखण्डमूढ़तामें यह जीव मिथ्यात्वके वश होकर परिग्रहसे सहित गृहस्थोंको साधु संत तपस्वी मानता है। यद्यपि जितने भी साधु हो गए निर्ग्रन्थ दिगम्बर हो गए वे सब वास्तवमें साधु हैं यह बात नहीं कही जा सकती, मगर जो भी वास्तवमें साधु हैं वे निर्ग्रन्थ दिगम्बर भेषमें ही मिलेंगे। अन्य भेषमें साधुपना नहीं हुआ करता, मगर मिथ्यात्वके वश होकर जीव परिग्रहसे युक्त मनुष्योंको साधु तपस्वी बतलाता है। यह है पाखण्ड मूढ़ता। जो परिग्रहसहित है, आरम्भयुक्त है ऐसे मनुष्यने कुछ मुद्रा बना ली हो, जैसे लंगोट पहन लिया, राख बदनमें रमा लिया, जटा बढ़ा ली, त्रिशूल ले लिया, पंचाग्नि तप तपने लगे, कुछ लौकिक जनोंसे विलक्षण बात करने लगे, तो उन्हें मिथ्यादृष्टि जीव गुरु मानने लगते हैं, पर वे वास्तवमें गुरु नहीं है, क्योंकि हमें चाहिए एक आत्मतत्त्वकी उपा-

http://sahjanandvarnishastra.org/

सना। मैं आत्माके सही स्वरूपको जानूं और उसमें ही रम जाऊँ, यह ही चाहिये ना? तो ऐसा व्यक्ति ऐसे पुरुषोंको ही गुरु मानेगा जो आत्मतत्त्वकी आराधनामें लगे हैं। और संसार का कुछ भी जिनको चाहिए नहीं है वे ही तो वास्तवमें गुरु हैं। तो मोही जीव परिग्रहसहित को गुरु मानते हैं।

व्यामोहियोंकी लोकमूढ़ता—लोकमूढ़ता अर्थात् धर्मके बारेमें विपरीत कल्पनायें करना। जिन कार्योंमें महापाप होता है, जीवोंका वध होता है ऐसे कार्य करके लौकिक जन मानते हैं कि मैंने धर्म किया। जैसे देवताके आगे पशु-पक्षियोंका वध करके सोचते हैं कि मैंने बड़ा धर्म कर लिया। अरे कितना अंधकार है उनके हृदयमें और उस वध किए हुए मांसको लोग देवी देवतावोंका प्रसाद मानते हैं, तो यह है सब अज्ञानभाव। नदी, समुद्रमें स्नान कर धर्म मानना, पर्वतसे गिरकर मरनेमें धर्म मानना, बालू पत्थरोंका ढेर लगाना, वृक्षादि पूजनेमें धर्म मानना आदि सब हैं अज्ञानभाव। मिथ्यात्वके उदयमें इस जीवको ऐसा ही सूझता है, किन्तु ज्ञानी पुरुष जिसको आत्माके सहजस्वभावका अनुभव बना है जिसको अपना आनन्द मिल गया है वह पुरुष तो इस आनन्दरससे छके हुए पुरुषोंकी ही पूजा उपासना करेगा।

विबोधनित्यत्वसुखित्वकर्तृताविमुक्तितद्धेतुकृतज्ञतादयः।
न सर्वथा जीवगुणा भवंत्यमी भवंति चैकांतदृशेति बुध्यते ॥१३१॥

मिथ्यात्वविपाकवश तत्त्वके सम्बन्धमें नाना विकल्पनायें—धर्म और दर्शन अनेक हैं। जो केवल एक ही अंशका हठ करते हैं। किसीका सिद्धान्त है कि विज्ञानमात्र ही तत्त्व है और यह कुछ नहीं है। केवल ज्ञानस्वरूप ही ज्ञान. ज्ञान ही तत्त्व है यह ज्ञानका एकान्त है और उनकी युक्ति यह है कि जैसे कोई स्वप्नमें देखता है तो दिखता तो उसे सब कुछ है, ज्ञानमें सब आता है—मंदिर, पानी, जंगल, पहाड़, सांप, बिच्छू, शेर, हाथी आदि सब सही दिखता है, पर वहाँ सही तो कुछ है नहीं। तो ऐसे ही यहाँ जगते हुए की हालतमें भी ज्ञान में तो सब आ रहा—मकान है, धन है, परिजन हैं, सो ये विज्ञानएकान्तवादी कहते हैं कि यह सब भ्रम है। जो कुछ दिख रहा है वह सब ज्ञानस्वरूप है। जैनधर्म क्या कहता है कि जो ज्ञानस्वरूप है सो तो जीव है और जो ज्ञानस्वरूपसे रहित है वह अजीव है। जिसमें जानने देखनेकी शक्ति है वह जीव है और जिसमें जानने देखनेकी शक्ति नहीं सो जीव नहीं। और ये दिखने वाले पुद्गल अजीव हैं। सो यहाँ कुछ दिखा रहे हैं कि मिथ्यात्वके उदयमें ऐसे-ऐसे एकान्तमत निकलते हैं। किसी मतका कहना है कि वस्तु सर्वथा नित्य है, ब्रह्म जिसे कहते, आत्मा वह अपरिणामी है, नित्य है, उसमें कुछ फेरफार नहीं है। उसका परिणमन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। जो रागद्वेष सुख दुःख हो रहे हैं वे प्रकृतिके धर्म हैं ऐसा उनका कहना है। जैन सिद्धान्त क्या कहता है कि जीव द्रव्यदृष्टिसे नित्य है, पर्यायदृष्टिसे अनित्य है। जब यह जीव है तो सदासे है और सदा तक रहेगा, किन्तु इसकी अवस्थायें तो बनती हैं। आज मनुष्यभव में हैं, कभी किसी भवमें थे, कभी किसी भवमें थे, तो ये जो अवस्थायें बदलती हैं—अभी क्रोध है, थोड़ी देरमें मान हो गया, फिर शान्त हो गया, फिर लोभ हो गया, तो जो अवस्थायें बदलनेपर भी आत्मा अपने स्वरूपमें अचल है। सो स्याद्वादसे तो सर्व धर्मोंकी सिद्धि होती है, पर उसमें ये केवल एक ही धर्मका एकान्त करना यह मिथ्यात्वमें होता है। कोई पुरुष समझता है कि जीवके सुख दुःख ये जीवके गुण हैं, पर ये जीवके गुण नहीं हैं। जीव का गुण तो आनन्द है, उस आनन्द गुणका विकार बना है सुख दुःख। यदि सुख दुःख जीव के गुण होते तो जीवके साथ सदा रहते। ये तो विकार हैं, ये मेरे स्वरूप नहीं हैं।

आत्माके निर्णय बिना धर्मकी दिशाका भी अलाभ—देखो अपने आपका कल्याण करना है तो अपना निर्णय जरूर करना पड़ेगा कि मैं क्या हूं, कहांसे आया, किस रूपमें हूं और किस-किस रूपमें था; और न चेते तो किस-किस रूपमें फिर रहेंगे। और अगर चेत गए सम्मार्ग मिल गया तो किस रूपमें मैं होऊंगा आदि सारी बातें ठीक तरहसे समझना है। परिवारसे मोह कर-करके या धन-दौलतको चित्तमें बसा-बसाकर इस जीवका पार न पड़ेगा, बल्कि यह जीवन व्यर्थ खो दिया समझिये। यदि धर्मसे अलग होकर और इन बाहरी बातोंमें ममता करने लगे, धर्म इतने ही मात्रको न समझें कि मंदिरमें आये, प्रभुकी स्तुति कर ली, कुछ विनती बोल ली, बस धर्म हो गया। अरे मंदिरमें आकर, प्रभुकी विनती बोलकर भी चित्तसे अगर मोह नही हटा रहा तो वहाँ धर्म नहीं हो रहा। मोह तो भीतर बसा हुआ है। सो इसी भावसे वह धर्म कर रहा है कि मेरा घर सुखी रहे, मेरा परिवार सुखी रहे और सबकी खूब तरक्की हो, ऐसे भावोंको लेकर वह मंदिरमें धर्मकार्य कर रहा है, उसे धर्म नहीं मिल रहा, कभी कषायें मंद हों, उस तरफसे भी उपयोग हटे तो थोड़ा पुण्यबंध हो जायगा, पर भेदविज्ञान जगे बिना, आत्मस्वरूपका प्रकाश पाये बिना धर्म न हो पायगा। मोक्षमार्ग न मिल पायगा। दो बातें एक साथ किसीके नहीं हो सकतीं कि विषयोंका मौज भी खूब मिलता रहे और धर्म भी खूब कर लेवें। आपको निर्णय करना होगा कि हम संसारमें जन्म मरण करते रहनेका हो प्रोग्राम रखें या सर्व संकटोंसे छूटकर सिद्धप्रभु होनेका प्रोग्राम बनायें, इन दो में से एक कुछ निर्णय करना होगा। ये दोनों बातें एक साथ नहीं हो सकतीं। तो अपना-अपना निर्णय बनाइये, घर गृहस्थीमें रहते हैं तो करना सब पड़ रहा, मगर उसे समझना चाहिए कि अपना गुजारा करनेके लिए सब करना पड़ रहा, पर वास्तवमें करने योग्य

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कार्य तो सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र है। यदि यह ध्येय न बना पाये और वैभवों में ही रम गये, परिजनोंसे ही मोह करते रहे तो यह जीवन यों ही व्यर्थ जायगा।

अधर्मभावके परिहारमें ही धर्मकी संभवता—एक उदाहरण है कि कोई दो भाई थे, तो छोटा भाई तो था पुजारी, भगवानका भक्त और बडा भाई दुकान धंधा रोजगार करने वाला, छोटा भाई रोज-रोज बड़े भाईको समझाता रहता था कि देखो तुम धर्मके कामोंसे दूर रहते हो, केवल व्यापार धंधाके कामोंमें ही अपना उपयोग फंसाये रहते हो, सो यह तुम्हारे लिए ठीक नहीं, धर्ममें अधिक दृष्टि दो। तो उस बड़े भाईका जवाब होता था कि ठीक है, हम धर्म नहीं करते, मगर तुम्हें धर्मका काम करनेकी हम पूरी छुट्टी तो दिए हैं, तुम्हारे धर्म के काममें हम कोई दखल तो नहीं देते, इससे हम भी अपनेको ऐसा समझते कि हम भी धर्म कर रहे। अब देखिये हुआ क्या कि किसी कारणसे छोटा भाई रुग्ण हो गया, उस रोगमें उसकी मरणासन्न दशा हो गई तो उस रोगसे घबड़ाकर बोला—भैया जी अब तो हमारा जीवन रहना मुश्किल है, हमारे न रहनेपर पता नहीं हमारे बच्चोंका क्या हाल हो, सो आप उनका पूरा ध्यान रखना, उनको किसी बातकी तकलीफ न होने पावे, उनकी तुम सब प्रकार से व्यवस्था बनाये रहना....तो बड़ा भाई समझ गया कि हमारे इस छोटे भाईको इन बाल-बच्चोंका मोह इस मरणासन्न दशामें सता रहा है। सब बात समझ गया, सो बोला—अरे तुम क्यों व्यर्थकी मोह ममतामें पड़ रहे? तुमने जिन्दगीभर धर्म करके भी कुछ धर्म नहीं किया। खैर तुम अब इन बाल-बच्चोंकी चिन्ता छोड़ो हम उनकी सब प्रकारसे व्यवस्था रखेंगे। उनको कोई तकलीफ न होने देंगे। और यदि तुम्हें विश्वास न हो तो ये लो एक कागजपर मैं लिखकर तुम्हारे बाल-बच्चोंको दिए देता हूँ कि मेरे पास जितना जो कुछ धन सम्पत्ति है वह सब मेरे छोटे भाईके बाल-बच्चोंकी है। मैं तो सिर्फ एक छोटीसी झोंपड़ीमें रहकर साधारणसा कोई काम करके अपना गुजारा चला लूंगा।....इस प्रकारकी बात सुन-कर वह छोटा भाई बड़ा लज्जित हुआ और बोला—भाई मैं बड़ी भूलमें था, अब मेरा शल्य निकल गया। अब मेरे ममत्व नहीं रहा। और आप जैसा जानें सो करें, मैं तो अब-आत्मा में लीन होना चाह रहा हूं। आखिर उसने समाधिपूर्वक मरण किया। उसके नामपर उसके बड़े भाईने धर्मार्थ औषधालय बनवाया, अपने पास जितनी जो कुछ सम्पत्ति थी उसका बह भाग उस छोटे भाईके बाल-बच्चोंके नाम कर दिया। और स्वयं एक छोटीसी झोंपड़ीमें रहकर कोई साधारणसा काम करके अपना जीवन निर्वाह करने लगा। तो समझिये कि जहाँ अपने भाव उत्तम हैं वहाँ तो धर्म चल रहा और जहाँ भावोंमें कलुषता है, मायाचार है, वहाँ धर्म नहीं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सर्व सतोंका स्वतंत्र सत्त्व—कितने ही लोग वस्तुका सही स्वरूप न जानकर कुछसे कुछ मानते हैं—जैसे कोई इस जगत्का रचने वाला है। पर देखो तो सही यह जगत् क्या है ? यह सब जो कुछ दिख रहा है इसकी सृष्टिका निमित्त कारण यह जीव है। यह जीव जहाँ जाता है वहीं किसी न किसी शरीररूप बन जाता है और सारी रचना चलती है। यदि कोई बाहरसे रचने वाला आया तो बताओ जब कोई चीज हो उससे रचा या कुछ न था और रच दिया। आखिर कुम्हार भी तो जब घड़ा बनाता है तो मिट्टीसे ही तो बनाता है। स्वर्णकार कलश बनाता है तो स्वर्णसे ही तो बनाता है। तो यदि किसी एकने इस सारे जगत्को रचा, समस्त पदार्थोंके समूहको बना डाला तो बताओ उनका उपादान कुछ था या नहीं ? अगर कुछ भी उपादान न था तो असत् कैसे प्रकट हो सकता है ? और था उपादान तो सृष्टि भी क्या रची ? सर्व पदार्थोंका स्वभाव है ऐसा कि वे समय-समयपर नई-नई अवस्थायें बनाते रहते हैं। यह स्वभाव द्रव्यमें चल रहा है अनादिसे। तो हम अपने भविष्यका निर्माण किया करते हैं। आज जैसे परिणाम कर रहे हैं उसके अनुसार हमारा भविष्य बनेगा। तो देखो मोह करना बिल्कुल व्यर्थ और गंदा परिणाम है। बिल्कुल भिन्न जीव हैं, भिन्न पदार्थ हैं, क्या सम्बंध है ? आपके घरमें जितने जीव हैं उनसे भी बहुत अच्छे गुणी सुन्दर और लोग भी हैं, और बच्चे भी हैं। उनमें क्यों ममता जगती ? इन घरके कुछ जीवोंमें ही क्यों मोह ममता बन रही ? जैसे वे बाहरके जीव अत्यन्त भिन्न हैं वैसे ही ये खुदके घरमें आये हुए जीव भी उतने ही भिन्न हैं। भिन्नतामें कुछ अन्तर नहीं। जीव सब मुझसे निराले हैं, मेरेमें मैं ही हूं। तो जब अत्यन्त भिन्न हैं तो उनमें यदि यह छंटनी बन जाय कि ये तो मेरे हैं और ये गैर हैं तो यह तो उसने अनन्त आत्मावोंके स्वरूपकी उपेक्षा कर दी। अन्य आत्मावोंका जो स्वरूपमें परमात्मा हैं उनका तिरस्कार करता है। मोह करना इस जीवके लिए बिल्कुल व्यर्थकी विडम्बना है। तो जो नहीं जानता है वस्तुका यथार्थ स्वरूप वह कितने ही एकान्त दर्शनोंमें रम जाता है। पर्यायोंको ही गुण समझकर ऐसे अनेक गुण अनेक दर्शनों ने माने। मुक्ति संसारपना, कृतज्ञता आदिक अनेक बातें गुणरूपमें मानी, मगर गुणरूप तो जीवका केवल चैतन्यस्वभाव है, बाकी तो यह सब बेकार है। एक भाव बने—अपने आत्मा को देखो—मैं आत्मा हूं, मैं अनन्त गुणोंका पुञ्ज हूं, परमार्थसे अखण्ड हूं, जब भेददृष्टि करके निहारता हूँ तो ये ज्ञान दर्शन, आनन्द, श्रद्धा, चारित्र आदिक अनेक गुण आत्मामें मालूम होते हैं।

आत्माकी स्वतंत्रता—लोकमें सभी सतोंका अपने आपके खुदमें परिणमन चल रहा है तो मैं अपने काममें रह रहा हूँ। मैं दूसरे जीवका काम नहीं करता। कोई सोचता हो कि

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मैं दूसरेको दुःखी कर देता, दूसरेको सुखी कर देता तो यह सोचना उसका बिल्कुल मिथ्यात्व है, क्योंकि उसके यदि पापका उदय नहीं है तो कितना ही कोई प्रयत्न करे, पर दूसरा दुःखी नहीं हो सकता। यदि दूसरेके पुण्यका उदय नहीं है तो आप कितने ही प्रयत्न करें, पर वह सुखी नहीं हो सकता। लोग ऐसा सोचते हैं कि हम छोटे-छोटे बच्चोंको पालते पोषते हैं, मगर बात वहाँ यह है कि उन बच्चोंका पुण्य अधिक है जिससे उनकी नौकरी करनी पड़ रही है, यह अहंकार करना व्यर्थ है कि मैं बच्चोंको पाल रहा हूं। हाँ हो रही है आपके द्वारा सब व्यवस्था यह बात और है। उनके प्रति प्रेमका व्यवहार भी कीजिए, मगर भीतर में यह अहंकार न रखें कि मैं दूसरोंको पाल रहा हूं, दूसरोंको सुखी कर रहा हूँ। सबके कर्म सबके साथ हैं। कर्मोंके उदयके अनुसार ही सबकी सब बात बनती है। आप किसीके मदद-गार न होंगे, आप अपनेको सम्हालें और दयावश दूसरोंको भली बातकी शिक्षा दें, यह तो आपका कर्तव्य है, मगर भीतरमें यह अहंकार न जगना चाहिए कि मैं इन बाल-बच्चोंको सन्मार्गपर लगाता हूं, मैंने इनको इतना इतना सम्बोधन किया है···· । अरे जो सन्मार्गमें लगे हैं, सो अपनी कलासे अपने विकाससे सन्मार्ग पर लगे है। मैंने किसीको सन्मार्ग पर नहीं लगाया, मैंने किसीका कुछ पालन-पोषण नहीं किया। सर्व जीव अपने-अपने अर्जित किए हुए कर्मोंके अनुसार अपनी सृष्टि पाते हैं और स्वयंकी रचना बनाते हैं। ऐसा जानकर चित्तमें गर्व न होना चाहिये। और कायरपना भी न अनुभवना कि यह मुझे दुःखी कर देगा, यह मेरा न जाने क्या बिगाड़ कर देगा ? अरे अपने ज्ञानस्वरूपको सम्हालें। बाहरमें मेरा कुछ है ही नहीं। बाहरमें यदि कभी कुछ कम हो जाय तो उससे आत्मामें कमी नहीं कहलाती। अपना ज्ञानस्वरूप देखो, जो ज्ञानका जहाँ विकास हुआ है ऐसे प्रभुकी भक्तिमें रहिये. बस ये ही दो काम हैं—सिद्धप्रभुकी भक्ति करना और शुद्ध आत्मारूप अपनेको अनुभवना कि मैं सर्व विकार विडम्बनाओंके संकटसे अलग हूं। मेरे स्वभावमें ज्ञान और आनन्द ही बसा हुआ है। जो आत्माको पहिचानेगा सो संसारके दुःखोंसे दूर हो जायगा।

न घूर्णमानो भजति ध्वजः स्थितिं यथानिलैर्देवकुलोपरि स्थितिः।
समस्तधर्मानिलधूतचेतनो विनीतमिथ्यात्वपरस्तथा नरः॥१३२॥

पूर्व गाथावोंमें वर्णित अज्ञान व एकान्त मिथ्यात्वकी हेयताका स्मरण—इस प्रक-रणमें मिथ्यात्वके भेद बताये जा रहे हैं, जैसा कि आलोचना पाठमें पढ़ते हैं विपरीत, एकान्त विनयके, संशय अज्ञान, कुनयके। नामोंमें मैं पहले पीछे प्रायः बदलकर मिलते हैं उससे कुछ बात नहीं। इसी ग्रन्थमें पहले अज्ञानमिथ्यात्व, फिर एकान्तमिथ्यात्व, फिर विनय, फिर संशय, फिर विपरीत, फिर गृहीत और निसर्ग ७ प्रकारके मिथ्यात्व बताये जा रहे हैं। तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अज्ञान मिथ्यात्वमें तो बताया ही था कि अज्ञानवश एकेन्द्रिय आदिक सब मिथ्यात्वमें पड़े हैं, कुछ विशेष बुद्धि भी जगी तो परिग्रहयुक्तको तो तपस्वी मानते, जीवोंके वधमें धर्म मानते और रागद्वेषसहित प्राणियोंको देव मानते। ये अज्ञानमें चेष्टायें हुई हैं। एकान्तमिथ्यात्वमें बताया है कि किसी भी सिद्धांतका, मतका, धर्मका हठ कर लेना, बाकी अन्य धर्मोंकी अपेक्षा छोड़ देना एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे जीव नित्य है कि अनित्य। नित्य मायने सदा रहने वाला, अनित्य मायने सदा न रहने वाला। तो जीव सदा रहने वाला है या मिटते रहने वाला है ये दोनों बातें यदि द्रव्यदृष्टिसे देखें तो सदा रहने वाला है। जीववस्तुका कब नाश होगा? पर्यायदृष्टिसे देखें तो जीवकी पर्यायें बदलती रहती हैं। तो पर्यायरूप जीव तो सदा न रहा। अब उसमें से नित्यका ही हठ कर लेना अथवा अनित्यका ही हठ कर लेना यह एकान्त मिथ्यात्व है। जैसे बहुतसे दार्शनिक हैं सो कुछने आत्माको कूटस्थ नित्य माना, कुछ दार्शनिकोंने आत्माको केवल क्षणस्थायी माना, सो किसी एक ही वस्तुधर्मका हठ करना, शेषको न मानना यह एकान्तमिथ्यात्व है। ये सब मिथ्यात्व जीवके बैरी हैं इनको छोड़नेमें ही आत्महित है।

विनयमिथ्यात्वकी भी हेयता—अब इस छन्दमें विनय मिथ्यात्वकी बात कही गई है। जिन पुरुषोंके विनय मिथ्यात्व पाया जाता है उनका मन कहीं एक जगह नहीं टिकता। कभी किसीको माना कभी किसीको। जैसे कि मन्दिरके ऊपरकी ध्वजा हवाके वेगसे क्षणभर भी स्थिर नहीं रह सकती, डोलती ही रहती है, इसी प्रकार जो विनय मिथ्यात्वके वशमें हैं उनका मन भी सांसारिक मतोंके प्रभावरूपी वायुके वेगसे किसी एक धर्ममें स्थिर नहीं रहता। वह इधर-उधर भटकता ही रहता है। लोग तो कहने लगते कि मार्ग नाना प्रकारके हैं, पहुंचना तो सबको एक ही मंजिलपर है मोक्षमें, पर मार्ग नाना कैसे हो सकते? कोई इस मंदिरमें आया मानो पूरब दिशासे तो क्या वह चारों दिशावोंमें चला गया? वह तो पश्चिमकी ओर ही आयगा। मार्ग एक ही है मुक्तिका और वह है निश्चयसे आत्माके सहज स्वरूपमें अपने उपयोगको मग्न करना। संसार संकटोंका घर है। जिन जीवोंका चित्त सदैव बाहरी बाहरी पदार्थोंपर ही रहता है उनको क्षणभर भी विश्राम नहीं मिल पाता। यहाँ तो मन बहलानेके लिए कोई ताश खेलता, कोई सिनेमा जाता, कोई अन्य उपाय करता, पर वह वास्तविक विश्राम नहीं है। वहाँ तो उपयोगका बाहर बाहर भटकना ही है। वास्तविक विश्राम मिलेगा सहज आत्मस्वरूपमें। जिसने सहज आत्मस्वरूपके अनुभवका आनन्द पाया है वह जब चाहे किसी भी क्षण दृष्टि दे और उसके दर्शन कर ले। तो सच्चा विश्राम मिलेगा आत्मानुभवमें। इस जीवनमें कर्तव्य है कि अन्य बातें कुछ लौकिक प्रभावकी, महिमाकी,

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवन-यापनकी जैसे गुजरें सो गुजरें, वे प्रधान काम नहीं हैं इस मनुष्यभवमें। मनुष्यभवका प्रधान काम है आत्माको पहिचानना और जैसा वास्तविक सही सहज स्वरूप है उस रूप अपनेको स्वकीार कर लेना, अन्य रूप स्वीकार न करना यह भीतरी काम, गुप्त काम जो केवल अपने ज्ञान द्वारा ही किया जाता है, जो महाभाग कर-सके उसका जीवन सफल है, पर जिसने इस आत्माके सहज स्वरूपकी दृष्टि नहीं की वह बाहर ही बाहर डोलता है, भटकता है। और प्रत्येक देव, प्रत्येक गुरुकी सेवा उपासनामें अपनेको मुक्तिमार्गपर चलने वाला मानता है। आजकल तो विनयमिथ्यात्वको एक बड़ा शृङ्गार मानते हैं। ये नेता बड़े ऊँचे पहुंचे हुए हैं, ये किसी भी धर्मसे घृणा नहीं करते हैं, सब धर्मोंमें पहुंचते हैं। तो घृणा करने न करनेकी बात नहीं कही जा रही, पर वस्तुका सही स्वरूप क्या है, उसकी श्रद्धा तो मजबूत होनी ही चाहिये। जिसको वस्तुस्वरूपकी सही श्रद्धा नहीं है उसके ही विनयमिथ्यात्व हुआ करता है। ये सब मिथ्यात्व इस जीवको संसारमें परिभ्रमण कराने वाले हैं। इनके वर्णनसे शिक्षा यह मिलती है कि मिथ्यात्व भावसे परे रहना चाहिये।

समस्ततत्त्वानि न संति संति वा विरागसर्वज्ञनिवेदितानि वै।
विनिश्चयः कर्मवशेन सर्वथा जनस्य संशीतिरुचेर्न जायते ॥१३३॥

त्याज्य संशयमिथ्यात्वका निर्देश—इस छंदमें संशय मिथ्यात्वका प्रभाव बताया गया है। जिनेन्द्र देवने ७ तत्त्व कहे—जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष। उनके विषयमें संशय होना कि वहाँ इन ७ पदार्थोंको तत्त्व कहा या नहीं कहा, ये तत्त्व इस स्वरूपके हैं या नहीं, आत्मा है या नहीं, परलोक है या नहीं, मोक्ष वास्तवमें होता है या नहीं, यों किसी प्रकारका संदेह रखना संशय मिथ्यात्व है। सर्वज्ञदेव द्वारा प्रतिपादित वचनों में पदार्थोंमें यह मिथ्यादृष्टि जीव शंका रखता है, और यों कहना कि कौन देख आया कि सर्वज्ञ होता या नहीं, स्वर्ग नरक है या नहीं, इस प्रकारका संशय करना संशय मिथ्यात्व है।

पयोयुतं शर्करया कटूयते यथैव पित्तज्वरभाविते जने।
तथैव तत्त्वं विपरीतभंगिनः प्रतीपमिथ्यात्वदृशो विभासते ॥१३४॥

त्याज्य विपरीत मिथ्यात्वका निर्देश—इस छंदमें विपरीत मिथ्यात्वका वर्णन है। विपरीत मिथ्यादृष्टि वाले जीवको सच्ची बात नहीं सुहाती। जैसे कि पित्तज्वर वालेको शक्कर मिला हुआ दूध भी कडुवा लगता है। उसकी कैसी जिह्वा हो गई उसका कैसा शरीर हो गया कि मीठा दूध भी उसे कडुवा लगता है। ऐसे ही विपरीत मिथ्यात्व वाले जीवोंको वास्तविक तत्त्व चाहे युक्तियोंसे भी बहुत समझाया गया हो, पर उन्हें उल्टा ही भाषता है। समझाने पर भी वास्तविक तत्त्वका निश्चय नहीं होता और मिथ्या तत्त्वोंमें ही फंसा रहता है। कहने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

से कहीं निर्णय नहीं बन जाता कि इसकी ऐसी ही श्रद्धा है। शरीर न्यारा है, जीव न्यारा है, ऐसा कहने वाले अनेक लोग हैं, पर साधारण असाधारण गुणोंकी परख करना, असाधारण स्वरूपसे निरखकर जो जाने कि ये सब शरीर अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावमें हैं, यह मैं अमूर्त आत्मा अपने ही स्वरूपसे हूं। इस प्रकारकी अन्तर्भावना करके जो परखे सो सत्य समझ सकता है, कहनेका एक ऐसा रिवाज बन गया जो चाहे कहने लगता कि शरीर जुदा, जीव जुदा, पर भावभासना नहीं है। तो ऐसे जीव भी मिथ्यात्वमें फंसे रहते हैं, शरीरको आत्मा मानना भी विपरीत मिथ्यात्व है। यदि किसी मनुष्यको ऐसा आभास हो जाय कि मेरा अब मरण काल आ गया तो उस समय उसे यदि घबड़ाहट है तो समझिये कि उसे देहमें आत्म-बुद्धि है तब ही तो वह मरणसे डर रहा। और कोई मनुष्य ऐसे भी मिलेंगे जो मरणके समय प्रसन्न रहते, उनको किसी बातका विषाद नहीं होता। जिसको बाह्यपदार्थोंमें ममता नहीं, इस दुनियाको असार जिसने जाना, अपने आत्माको अमर माना, जिसकी आस्थामें है कि मैं आत्मा परिपूर्ण हूं, यह हूँ तो भी वही हूं। जिसने इस आत्माको ही इहलोक समझा और साथ ही परलोक समझा उसको विषाद नहीं होता। तो यह है भेदविज्ञान। जिसे भेद-विज्ञान हुआ उसका ममत्व टूट जाता है। यदि ममता चित्तमें चल रही है तो न है वह ज्ञानी, न है वह धर्मात्मा। भले ही ऊपरके धार्मिक कार्य करें, पर इन ऊपरी-ऊपरी बातोंसे कर्म थोड़े ही कट जायेंगे। अन्त: धर्मबुद्धि हो, धर्मदृष्टि हो, स्वभावका ग्रहण हो, ममता मोह टूट गया हो, एक आत्माकी ही धुनमें रहता हो, जिसकी पहिचान है कि इन्द्रियके विषयोंमें प्रीति न होगी और नामवरीकी इच्छा न होगी। इस तरहकी जिसको अपने आतमाकी धुन हो वही पुरुष मृत्यु जैसी घटनावोंमें विषाद नहीं मानता। और जिसको देहमें आत्मबुद्धि है वह इसमें अपना विनाश समझता है। तो विपरीत मिथ्यात्वमें इस जीवको सही तत्त्व सुहाता नहीं, जिनवाणी सुहाती नहीं।

ज्ञानको ज्ञानके साधनकी व ज्ञानियोंकी अनुरक्तिका परिणाम—देखिये—खास बात यह है कि केवलज्ञान पाये बिना संसारसंकट मिटेंगे नहीं और केवलज्ञान जिस ज्ञानधारामें रहकर मिलता है वह है आत्मज्ञानकी धारा, और यह आत्मज्ञान, यह ज्ञानप्रकाश ज्ञानावरण कर्मके दूर हटे बिना नहीं होता और उन कर्मोंके हटनेका उपाय ज्ञानमें, ज्ञानके साधनोंमें, ज्ञानियोंमें अनुराग जगना यह है ज्ञानावरण कर्मको दूर करनेका पुरुषार्थ। अनेक लोग होते हैं ऐसे कि बड़ी-बड़ी धर्मशाला, बिल्डिंग, मन्दिर या अन्य-अन्य चीजें दुनियाको दिखें उनके बनवानेमें बड़ी उमंग रखते, बड़ा द्रव्य खर्च करते, तो ठीक है, ये सब बातें चलेंगी, किन्तु ज्ञानप्रचारका कोई प्रसंग आये, पाठशाला खुलवाये, शास्त्रोंका प्रकाशन हो, व्याख्यान आदिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

का प्रबन्ध हो तो इन बातोंको वह बेकार मानता है और उसमें उमंग नहीं जगती । तो ऐसे जीव बड़े दयापात्र हैं, वे कैसे भविष्यमें ज्ञानप्रकाश पायेंगे, यह बहुत शोचनीय बात है । तो यदि अरहंत पद प्राप्त करना है, केवलज्ञानी बनना है तो ज्ञानमें धुन होना, ज्ञानके साधनोंमें धुन होना, दूसरोंके ज्ञानवर्द्धनमें सहयोग देना, इनमें यदि वृत्ति है, अनुराग है तो यह ज्ञानावरण कर्मको ढीला कर देगा और उनका क्षयोपशम बनेगा । तो ज्ञानविकास होगा, पर यह सब एक गुप्त साधना है । इसमें भी भीतर अन्य कोई आकांक्षा न हो, विशुद्ध ज्ञानप्रकाशका भाव हो तो वह ज्ञान थोड़े ही कालमें अथवा अगले ही भवमें ज्ञानविकास प्राप्त करेगा । यहाँ ही लड़कोंको देखा जाता कि कोई लड़का इतना बुद्धिमान् होता कि एक बार कोई बात बता दी गई तो वह उसको भी सीख लेता और उससे सम्बंधित अन्य बातें भी अपने आप सीख लेता, और कुछ लड़के ऐसे होते हैं कि वर्षों प्रयत्न करनेपर भी वे पढ़ ही नहीं पाते । बड़ी उम्रके हो जाते, फिर भी छोटी कक्षावोंमें पढ़ते रहते । कुछ उनकी प्रगति ही नहीं हो पाती, तो यह फर्क कैसे आया ? यह फर्क आया ज्ञानावरणके क्षयोपशमका । उन्होंने पूर्वभवमें जैसा ज्ञान और ज्ञानके साधनोंके प्रति व्यवहार किया उस प्रकारका उनका भविष्य बना । जिसने ज्ञानकी साधना की, दूसरोंके ज्ञानके साधन दिलाये, ज्ञानदान किया, खुद पढ़ाया-लिखाया, ज्ञानमें उमंग रखी, ज्ञानियोंको देखकर खुश हुए, ऐसा पुरुष मरकर वह बालक हुआ जो एक बारके सिखानेमें बहुत कुछ सीख जाता है । कोई दूसरा पुरुष जिसने ज्ञानमें अन्तराय डाला, ज्ञानियोंसे ईर्ष्या की, ऐसा पुरुष मरकर ऐसा लड़का बना कि जिसको कितने ही ट्यूशन दिलवाये गए, कितने ही मास्टर लगवाये गए तो भी वह आगे नहीं बढ़ सका । तो जिसको अपने ज्ञानस्वरूपका विकास चाहिए उसका कर्तव्य है कि वह आत्मविज्ञानके साधनोंमें प्रीति करे, ज्ञानी जनोंको देखकर हर्ष भाव लाये तो उसके कर्म क्षीण होंगे और वह ज्ञानावरणके क्षयोपशमके अनुसार ज्ञानलाभ पायगा ।

प्रपूरितश्चर्मलवैर्यथाशनं न मंडलश्चर्मकृतः समिच्छति ।
कुहेतुदृष्टांतवचः प्रपूरितो जिनेंद्रतत्त्वं वितथं प्रपद्यते ॥१३५॥

गृहीत मिथ्यात्वकी प्रेरणा—५ मिथ्यात्वके वर्णनके बाद इस छंदमें गृहीत मिथ्यात्व की बात कही गई है । जैसे चमारका कुत्ता जो वहाँ रात-दिन माँस खाता रहता है, चमार चमड़ा उधेलता रहता और उस कुत्तेको माँस मिलता रहता, तो माँसभक्षी होनेके कारण अब वह अन्नको नहीं चाहता । कोई रोटी डाल दे तो रोटी पड़ी रहेगी । तो कुत्ता माँस खाता, उस माँसको ही स्वादिष्ट जानता और अन्नसे घृणा करता, इसी प्रकार जिन जिनके चित्तमें खोटे छन्द, खोटी युक्ति, खोटे दृष्टान्तसे समझाया गया है, रात दिन उल्टा ही उपदेश प्राप्त हुआ है वह पुरुष सर्वज्ञदेव द्वारा कथित सत्य पदार्थोंको मिथ्या मानता है और उसे समझना

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं चाहता। उस जिनवाणीसे दूर रहता है। जो बात समझा दी गई उल्टी बस उसीको पकड़कर रह जाता है। फिर कोई दूसरा कितना ही समझाये उसे ग्रहण नहीं करता, यह है गृहीत मिथ्यात्व। गृहीत मिथ्यादृष्टि कुदेवको देव मानता, कुशास्त्रको शास्त्र मानता, कुगुरुको गुरु मानता और उनकी इस सेवासे ही अपनेको मोक्ष मानता है, जो समझ लिया, जिस अज्ञानीने जो भी कुतत्त्व समझ लिया उसकी दृष्टिमें वह ही सार लगता है। उसे उसमें दोष नहीं विदित होते। और कोई सत्य तत्त्व उपस्थित करे तो उसमें भी वह दोष लगाता है। यह है गृहीत मिथ्यात्वका असर। कभी घरमें बच्चोंको या किसीको कुछ तकलीफ हो जाय और कोई बहका दे कि अमुक देवी देवताकी मान्यता करो तो सब ठीक होगा। बस तुरन्त तैयार हो जाते। उनको आस्था नहीं है यह कि जरा असाताका उदय आया और यह निकल रहा यह उदय भी टलेगा। तो यह दुःख भी दूर होगा अथवा वीतराग जिनेन्द्रदेवकी भक्तिमें ही रहिये—जो होता है सो पाप पुण्यके उदयसे होता है। इस पर आस्था नहीं जमती। तो यह सब क्या है? गृहीतमिथ्यात्वकी प्रेरणा। सो जो जीव सिखाये गए होकर कुधर्ममें लग जाते हैं वे गृहीत मिथ्यादृष्टि हैं। उनकी ऐसी हालत है जैसी कि बहाना करके कोई आँखें मींचकर सो गया है तो उसे कोई कितना ही जगाये, पर उसे जगनेका क्या काम? और कोई वास्तवमें सो गया हो तो वह तो जगानेपर जग जायगा। तो ये गृहीत मिथ्यादृष्टि ये बँधकर मिथ्यादृष्टि हुए हैं। इनको कितना ही समझाया जाय, पर समझना बड़ा कठिन है। हाँ जिनका भवितव्य उत्तम है वे थोड़ा ही समझाया जानेपर सुलट जाते हैं। जैनशासनमें ऐसे अनेक आचार्य हुए, अष्टसहस्रीके रचयिता विद्यानन्दि स्वामी जी सैंकड़ों वर्ष पहले हुए थोड़ीसी घटनामें ही उन्होंने विपरीत आस्था तोड़ दी और स्याद्वाद शासनमें आ गए। अनेक पुरुष जिनका भवितव्य उत्तम है वे गृहीत मिथ्यात्वको भी छोड़ देते हैं।

यथांधकारांधपटावृतो जनो विचित्रचित्रं न विलोकितुं क्षमः।
यथोक्तत्त्वं जिननाथभाषितं निसर्गमिथ्यात्वतिरस्कृतस्तथा ॥१३६॥

निसर्गमिथ्यात्व—जैसे अंधेरेका वक्त है और कोई मनुष्य काले वस्त्रसे ढका हुआ हो तो वह रंग-बिरंगे चित्रोंको देख नहीं सकता। प्रथम तो अंधेरा ही हो तो भींतमें बने रंग-बिरंगे चित्र न दिखेंगे, और फिर काला वस्त्र ओढ़े हुए हो, ऐसा पुरुष बाहर कुछ भी नहीं निरख सकता, इसी तरह जो पुरुष निसर्ग मिथ्यात्वके वशमें हैं वे बार-बार उपदेशे जाने पर भी प्रभु द्वारा बताये गए तत्त्वोंको नहीं समझ सकते। निसर्गमिथ्यात्व कहते हैं उसे जो बिना सिखाये बिना समझाये जीवोंमें मोहभाव बना रहता है। शरीरको मानें कि यह मैं हूं इसको सिखानेकी कहीं पाठशाला नहीं है, किन्तु बिल्ली, कुत्ते, कीड़े, मनुष्य व पशु-पक्षी आदि सभी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अपने आप इस मिथ्यात्वमें पड़े हुए हैं । जो देहको मानता है कि यह मैं हूँ । तो जो सिखाना न पड़े और अपने आप बना हो उसे मोह कहते हैं । निसर्ग मिथ्यात्व—सो अज्ञानके कारण बड़े-बड़े उपदेशों द्वारा समझाया जानेपर भी वास्तविक तत्त्वका श्रद्धान नहीं हो पाता, इसे कहते हैं निसर्ग मिथ्यात्व । सारा जगत् इस मिथ्यात्वके वशमें है । अनन्त निगोद जीव निसर्ग मिथ्यात्वमें हैं, जिनका दूसरा नाम है गृहीत मिथ्यात्व । दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें सभीके गृहीत मिथ्यात्व है । संज्ञी पञ्चेन्द्रियमें भी बहुत कम मनुष्य हैं ऐसे जिनके गृहीत मिथ्यात्व नहीं होता । सो उनके भी अगृहीत तो लगा हुआ ही है, बाकी सब गृहीत मिथ्यात्व है । यह मोह ऐसा पिशाच है कि हम आपको बरबाद करने वाला है, ऐसे दुर्लभ मानव-जीवनको निष्फल गंवा देने वाला यह मिथ्यात्व है ।

दयादमध्यानतपोव्रतादयो गुणाः समस्ता न भवंति सर्वथा ।
दुरंतमिथ्यात्वरजोहतात्मनो रजोयुतालाबुगतं यथा पयः ।।१३७।।

मिथ्यादृष्टि जीवमें गुणोंका अनवसर—जैसे तूमड़ीमें मिट्टी भरी हो, राख भरी हो तो उसमें जल कभी न रह पायगा, वह तो सूख जाता है उसी तरह जिस आत्मामें मिथ्यात्व की धूल पड़ी हुई है उसमें दया, ध्यान, जप, तप आदिक कोई गुण नहीं ठहर सकते । इस जीवका मिथ्यात्वसे बढ़कर कोई बैरी नहीं । जो इन्द्रियसे दिख रहा है वह विश्वासके लायक नहीं है और रमणके योग्य भी नहीं है । सब मायामय हैं, इन वस्तुवोंमें मोहभाव करना बिल्कुल मूढ़ता है और उसका ही फल है कि संसारमें दुःखी होते फिर रहे हैं । रात-दिनके क्षणोंमें कुछ क्षण तो आत्मदृष्टिमें व्यतीत हों । आत्माकी सुध लेनेमें लग गए वे तो इसके क्षण सफल हैं और यदि यह काम न किया जा सका तो सारे जीवन यों समझो जैसे कहावतमें कहते हैं—पापड़ बेले । पापड़ बेलनेमें भी कुछ फायदा दिख सकता, मगर मिथ्यात्वभरी चेष्टावोंसे कोई फायदा न मिलेगा । जिसका हृदय अज्ञानसे भरा है, बाहरी पदार्थोंकी ममतासे भरा है, यह मेरा है, ऐसी ममता जिनमें कूट कर भरी है उनमें दया कहाँसे आ सकती ? जिनके तीव्र ममताका भाव है उनके अन्य सबसे उपेक्षाका भी भाव रहता है । दया उन पुरुषोंके चित्तमें होती है कि जिनको अपने स्वजनोंमें तेज ममता नहीं है । तो अन्य जीवोंपर भी कुछ कुछ ध्यान जायगा । यदि कुटुम्ब आदिकमें तीव्र ममता है तो अन्य जनों पर दृष्टि कम जायगी, दया नहीं आती । मोही पुरुषोंमें इन्द्रियदमनकी बात कहाँसे आ सकती ? विषयों का त्याग तपश्चरण, सत्संगति आदिक बातें कहाँ पैदा हो सकतीं ? उसके तो मोह सता रहा है ।

मोही प्राणीके शान्तिकी असंभवता—मोही जीवोंको शान्ति कहाँसे मिलेगी ? मोह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

खुद अशान्ति है। संसारमें जिन जिनका समागम हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। जो मोहीजन हैं, जो मिले हुए समागमोंमें यह आस्था रख रहे हैं कि ये तो कभी मिट ही नहीं सकते, और जब मिटेंगे तब इसको बड़ा दुःखी होना पड़ेगा। मोही जीवको शान्ति नहीं मिल सकती। जिसका उपयोग आत्माके स्वभावसे हटकर बाहरी पदार्थोंमें लग रहा है, बिना काम पापड़ बेलनेकी तरह बिल्कुल व्यर्थ है। ऐसा बाहर उपयोग भटकाने वाले पुरुषको शान्ति कहाँ मिल सकती ? शान्ति बाह्यपदार्थोंसे नहीं आती। गृहस्थीमें करना सब पड़ रहा है, और जब गृहस्थ हैं तो करना चाहिये, पर जो योग्य गृहस्थ है, ज्ञानी गृहस्थ है वह इन कार्योंको मुख्य नहीं मानता। हाँ जीवन-यापन करनेके लिए करना पड़ रहा है, पर जीवनका ध्येय न समझना कि मैं खूब धन जोड़कर धर जाऊँ। अरे जो जिन्दगीभर धन जोड़-जोड़कर धर जायगा उसे लाभ क्या होगा ? वह तो निरन्तर व्याकुल रहा कमाते समय भी और जब उसे छोड़कर जायगा तब तो उसे बड़ा संक्लेश परिणाम बनेगा—हाय मेरा साराका सारा धन छूटा जा रहा है। यहाँ कोई परपदार्थ किसीका बनकर न रहा। आपका आपके प्रदेशोंसे बाहर कुछ नहीं है। जैसे दुनियाके सब जीव आपसे बिल्कुल भिन्न हैं वैसे ही आपके घरमें रहने वाले दो-चार जीव भी आपसे बिल्कुल भिन्न हैं। तो मरेके बादकी तो बात क्या, जीवित अवस्थामें भी बच्चे या अन्य कोई अपने कुछ नहीं। तो मोही जीव कभी शान्त नहीं हो सकता।

मोही प्राणीके ज्ञान, ध्यान आदि धार्मिकताकी अनुद्भूति—जिसके मोह बसा है उसके ज्ञान कहाँसे जगेगा ? ज्ञान तो यह बतलाता है कि प्रत्येक पदार्थ एक दूसरेसे बिल्कुल जुदा है, सत्ता ही न्यारी है। दो मिलकर एक न कभी हुआ, न है, न हो सकेगा, पर ममतामें तो यह बात जगती है कि हममें और इनमें कुछ फर्क ही नहीं, खुद न खाया, पर जिनमें ममता है उनको खूब खिलाया, खुद तो रूखा सूखा खा लेते, पर जिनमें ममता है उनको रसीले व्यञ्जन खिलाते। और यह समझते कि इनके अच्छा खाने-पीनेसे मेरेको ही खाने-पीनेका लाभ हो गया। देखिये—कितना मोह है, ऐसा मोह जहाँ बसा है वहाँ ज्ञानप्रकाश कभी आ सकता है क्या ? तो मोहमें ज्ञान नहीं रहता, ध्यान भी नहीं जमता, ध्यान करें, आत्माका ध्यान करें, अपने देहके अन्दर जैसे कि ध्यानके प्रयोग हैं—श्वास रोकना, एक जगह मनको टिकाना फिर उपयोगको अपने आत्मापर प्रयोग करें। पर अहो, जिन जीवोंके मोह लगा है, परमें आत्मबुद्धि है, उन पुरुषोंके ध्यान कैसे जम सकता है ? ध्यानमें आवश्यक है उपयोगको अपने आत्मामें टिकाना। एक जगह अच्छे योग्य तत्त्वोंमें मनको लगाना और मोह प्रेर रहा है बाहरी पदार्थोंमें मनको रमानेके लिए, तो जहाँ मोह है वहाँ ध्यान कभी हो नहीं सकता।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जप तप ये मोहमें कहाँ रहते ? जबरदस्ती माला लेकर बैठे हैं तो मन कहीं रहेगा, अंगुली कहीं चलेगी। जिसका जाप किया जा रहा, जिसका नाम जपा जा रहा वह उपयोगमें रहे यह कैसे हो सकता ? मोही पुरुषकी बात है। मोही पुरुष इच्छाका निरोध कैसे करेगा ? वहाँ तो इच्छायें बनती हैं, उसे तो निरर्गल विषयसेवन चाहिये। मोहियोंके चित्तमें व्रत, तप आदिककी बात नहीं जम सकती। व्रत, उपवास, नियम आदिक इनकी ओर ध्यान कहाँ जायगा ? जिनके मिथ्यात्व भाव लगा है। इस देहमें जिसके आत्मबुद्धि है उसके तो देहके पोषनेका ही भाव रहेगा, देहसे विरक्त होकर अपनी कामनावोंसे दूर रहे यह व्रत मोहीमें नहीं हो सकता। तो यह मिथ्यात्वका प्रकरण चल रहा है। इस जीवका प्रबल बैरी मिथ्यात्वभाव है, इसलिए थोड़ा ध्यान जमायें। जो आँखों दिखता है उसे माया जानें। वह मेरे लिए सत्य स्वरूप नहीं है। वे सब सांसारिक बातें हैं, उनसे मेरा हित नहीं होनेका। मुझ आत्माका हित तो मुझमें बसे हुए परमात्मस्वरूपके दर्शनसे ही होगा, मोहादिकसे न होगा। ऐसा निर्णय बनाकर जीवनमें अपना उच्च ध्येय बनाना चाहिये।

ब्रवीति तत्त्वं सदसत्त्वलक्षणं बिना विशेषं विपरीतलोचनः।
यदृच्छया मत्तवदस्तचेतनो जनो जिनानां वचनात्पराङ्मुखः ॥१३८॥

जिनवचनाभिमुख मोही प्राणीके सत् असत्के विवेकका अभाव—मोही मिथ्यादृष्टि जीव सर्वज्ञदेवके बताये हुए मार्गसे बिल्कुल उल्टे हैं। जो पुरुष भगवानके दर्शन करते हैं, मंदिरमें प्रतिबिम्बके दर्शन करते हैं और बड़ी भक्तिसे पाठ विनती पढ़ते हैं, और उनके चित्त में यदि यह बात है कि ऐसे धर्मपालनसे मेरा परिवार सुखी रहेगा…तो बताओ भगवानके द्वारा बताये गए मार्गमें वह कहाँ चल रहा ? भले ही हम भगवानके बताये मार्गपर चल न सकें, पर जब-जब प्रभुका स्मरण हो तब-तब यह भाव लाना चाहिए कि जैसे मोह मिथ्यात्व को तजकर सर्व परिग्रहोंसे ममता तजकर प्रभुने अपने आत्मामें अपनेको देखा, ध्यान बनाया और इस मार्गसे चलकर सदाके लिए सुखी हो गए, मुझको भी यही स्थिति चाहिये, अन्य कुछ न चाहिए। यह तो निर्णय होवे दर्शनके समय तब तो प्रभुके दर्शन कहलायेंगे, और प्रभु का मार्ग यदि रुच ही नहीं रहा तो वह प्रभुका दर्शन नहीं है। तो जो जीव सर्वज्ञदेव द्वारा बताये गए मार्गसे भ्रष्ट है वह मद्यपायी पुरुषके समान है। विशेष ज्ञानके बिना वस्तुके सत्त्व और असत्त्वको यथार्थ नहीं जान सकता। विपरीत जानेगा। जैसे मद्यसे मतवाला हुआ पुरुष अपने पागलपनके कारण, नशेके कारण कभी अपनी माँ को बहिन कहता, कभी माँ को अपनी स्त्री कहता, कभी अपनी स्त्रीको माँ कहता या वह अटपट बकता है, क्योंकि उसे कुछ विवेक नहीं रहता, ऐसे ही जो लोग वस्तुस्वरूपसे अनभिज्ञ हैं और यथार्थ आत्मस्वरूपका जिन्हें कभी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

अनुभव नहीं हुआ वे वास्तविक बातका निर्णय नहीं कर सकते। मिथ्यात्वके नशेसे पागल हुआ यह जीव सत्को असत् और असत्को सत् समझता है। वास्तविक भेदको न जान सकेगा मिथ्यादृष्टि जीव, और यही कारण है कि मोही जीव संसारमें अनादिकालसे चिरकाल तक भटकता ही फिरता है।

त्रिलोककालत्रयसंभवासुखं सुदुःसहं तत्त्रिविधं विलोक्यते।
चराचराणां भवगर्तवर्तिनां तदत्र मिथ्यात्ववशेन जायते ॥१३६॥

मिथ्यात्ववशवर्ती जीवोंका संसारपरिभ्रमण—भूत भविष्यत् वर्तमानमें तीनों लोकमें जितने भी मानसिक वाचनिक और शारीरिक असह्य दुःख हैं वे सब इस मिथ्यात्वके कारण होते हैं। यह कितनी एक बड़ी विकटसी बात है कि कोई जीव मरकर पेड़ बन जाय और उसका आत्मा इस ढंगसे फैल जाय कि शाखावोंमें, टहनियोंमें, पत्तियोंमें, फूलोंमें, परागोंमें उन सबमें ये आत्माके प्रदेश फैलते हैं, यह तो कोई विचित्र काम है। इसे कोई कैसे करके दिखायेगा? तो उसका उपाय केवल एक ही है कि मोह ममता खूब करे जावो तो आसानी से यह जीव ऐसे पेडोंमें जन्म ले-लेकर इस तरहसे फैलकर अपनी लीलायें करेगा। जितना भी संसारमें कष्ट है वह सब मिथ्यात्व और अज्ञानके कारण है। अन्यथा कष्टका क्या काम? कोई मकान गिर गया या जल गया, पुद्गल था, इकट्ठा था, बिखर गया, उसमें मेरेको क्या कष्ट पड़ गया? कोई परिजन या मित्र जन गुजर गया तो उससे मेरे आत्मामें क्या कष्ट आया? अरे जगत्में कुछसे भी कुछ गुजरे, उससे मेरेको कोई कष्ट नहीं होता। कष्ट है तो मोहभावका है। जो भीतरमें अज्ञान बसा है, जिससे कल्पनायें चल रही हैं, बस यही दुःख है। तो दुःख रहा मिथ्यात्व, मोह। दूसरा कोई दुःख नाम नहीं है। जो भी जीव दुःखी हो रहे हैं कोई धनके बिगड़नेसे, कोई अपने इष्टके बिछुड़नेसे, कोई किसी तरह, तो उनको कौन सा साधन रखा जाय कि उनका दुःख दूर हो जाय? है क्या कोई ऐसा साधन? केवल एक सम्यग्ज्ञान ही साधन है।

अपनी सम्हालमें सब सम्हाल—भैया, अपनेको वश किया तो बाकी सब ठीक। एक ऐसा अहाना है कि लेवा मरे या देवा, बल्देवा करे कलेवा। कोई अनाजकी मण्डी थी, उसमें कोई बल्देवा नामका एक दलाल था। दूसरेका अनाज बिकवा दे तो कुछ बेचने वालेसे मिल जाता, कुछ खरीदने वालेसे। सो उसने एक किसानका दो एक गाड़ी अनाज बिकवा दिया और दोनोंसे अपना कमीशन ले लिया। अब बिक तो गया, मगर उस प्रसंगमें खरीददार और बेचने वाला इन दोनोंमें मन-मुटाव हो गया, खरीदने वालेने समझा कि हमको महंगा मिला और बेचने वालेने समझा कि हमारा सस्ता बिका, सो दोनोंमें कुछ झगड़ासा होने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

लगा। करीब दोपहरका समय था, उसके कलेवा करनेका समय हो गया था, सो वह एक पेड़के नीचे बैठ गया और कहने लगा—लेवा मरे या देवा, बल्देवा करे कलेवा, याने चाहे लेने वाला मरे चाहे देने वाला, बल्देवाको उससे कुछ मतलब नहीं, उसे कुछ दुःख नहीं, वह तो आराममें है। लड़े मरें तो वे दोनों मरें तो ज्ञानी पुरुष चूंकि अपने आत्माकी सम्हाल लिए हुए हैं, सो वह परपदार्थोंकी परिणतिमें ज्ञाता दृष्टा रहता है और यह निर्णय रखता है कि चाहे जगत्का कुछ भी परिणमन हो हम तो अपने आत्मारामनें ही लीन होकर संतुष्ट रहेंगे।

मोहवश उच्छिष्ट भोगोंमें अपूर्वताका भ्रम—यह जीव अब तक किस-किस भवमें नहीं गरा। यहां तो जैसे रोज-रोज वही रोटी-दाल, चावल खाते, पर रोज-रोज उन्हें नया सा लगता। अपने इस ५०-६०-७० वर्षके जीवनमें न जाने कितना हो अनाज खा लिया होगा, मगर रोज-रोज वही दाल, रोटी, चावल ऐसे लगते हैं जैसे कि नई चीज। स्वादमें आसक्त रहते हैं। सो ऐसे ही इस जीवने इन सब पुद्गलोंको बार-बार भोग रखा, अनेक बार भोगा, मगर प्रत्येक भवमें कुछ नयेसे लगते हैं। उनकी तृष्णा भी जगती, और लोकमें जो धनी हैं, ऐश आराममें रहते हैं उनके प्रति होड़ भी लगाते हैं। यह विवेक नहीं करते कि पुण्यके उदयसे जो कुछ प्राप्त हुआ है वही बहुत है। हम उसमें ही गुजारा कर लेंगे। हमें तो अपना आत्मज्ञान बढ़ाना है, उसमें बढ़ें और उसका आनन्द लूटें। बाहरी पदार्थोंमें कुछ नहीं रखा और न कभी होड़के चक्करमें रहना चाहिये। जैसा उदयमें है वैसा हो रहा है, उसमें हम गुजारा कर सकते हैं, ऐसी हमारेमें कला है। संतोष रहे, और वास्तविक जो धन है, अपने ज्ञानमें ज्ञानका अर्जन करें और अपने आपके आत्मामें घटित करें। और उसके अनुभव का आनन्द लें, यह काम करनेका है इस जीवनमें, और यह काम वही कर सकता है, जो इन बाहरी पुद्गलोंको, महल मकानोंको, धन-दौलतको तुच्छ समझता हो। यह मेरे आत्माके लिए कुछ चीज नहीं है। आत्माका हित करने वाला तो यह ज्ञानभाव ही है। ऐसा जो भाव रखता है वह संसारके परिभ्रमणसे दूर होता है। और जो मिथ्यात्वमें पगे रहते हैं वे चतुर्गतियोंमें जन्म मरण कर, परिभ्रमण कर, शारीरिक, मानसिक, वाचनिक सब दुःखोंसे दुःखी रहते हैं।

वरं विषं भुक्तमसुक्षयक्षमं वरं वनं श्वापदवन्निषेवितं।
वरं कृतंवह्निशिखाप्रवेशनं नरस्य मिथ्यात्वयुतं न जीवितं ॥१४०॥

मिथ्यात्वकी सर्वाधिक अहितकारिता—मिथ्यात्वसहित जीवन रहना बहुत बुरा है, क्योंकि जहां ज्ञानप्रकाश नहीं, स्व-परका भेद नहीं, यथार्थ ज्ञान नहीं वहां उपयोग क्षुब्ध रहता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

है, व्याकुल रहता है और अटपट कल्पनायें करने वाला रहता है। ऐसा जीवन ठीक नहीं है। उससे तो अच्छा हैं विषपान, विषपान करने वाला एक ही बार तो मरेगा, दो जीवनमें न मरेगा। मगर मिथ्यात्वसे जिसका हृदय व्याप्त है उसका तो अनेक भवोंमें मरण होगा। तो विषपानसे भी खोटा है मिथ्यात्वयुक्त जीना। मिथ्यात्वयुक्त जीवनसे अपेक्षाकृत भला है सिंहादिक जंतुवोंसे भरे हुए बनमें निवास करना। जहाँ हिंसक जंतु भरे हैं उस वनमें जो निवास करेगा वह भला तो नहीं है। वहाँ वे जंतु आक्रमण करेंगे और इसको मरना होगा, मगर एक ही बार तो मरण होगा, किन्तु मिथ्यात्वसे जिसका आत्मा दबा है उसका तो भव-भवमें मरण होगा। मिथ्यात्वसहित जीवनसे तो जलती हुई अग्निमें जलकर प्राणोंका खो देना अच्छा है। उस घटनाका असर उतना ही तो है कि एक भवमें मरण हो, किन्तु जिनके मोह बसा है उनका तो भव-भवमें मरण होगा। जन्म और मरणकी परम्परामें लगेगा। तो मिथ्यात्वभाव इतना दूषित भाव है कि कषायोंके व्यामोहमें रहकर यह जीव सोचता नहीं है और अपना जीवन जैसे कषाय परिणाममें गुजरें, जैसे तात्कालिक काल्पनिक आनन्द मिले वैसा प्रयत्न करता है। उन सुखोंमें यह बहिर्मुख रहता है। ये सब सुख वस्तुत: तो दुःखसे भरे हुए हैं। यह जीव अब तक संसारमें रुलता चला आया तो यह मिथ्यात्वका ही तो असर है। मिथ्यात्वके बराबर जीवका बैरी दूसरा नहीं है। मान लो यहाँ प्रेम हुआ किसीसे, स्नेह हुआ, मोह हुआ तो उसमें थोड़ासा कल्पित मौज माना कि यह मेरा बहुत भला है, मगर किसीका किसीसे पूरा पड़ सकता है क्या ? अपने आत्मासे ही अपना पूरा पड़ेगा। यदि ज्ञान सही है तो अपना पूरा पाड़ लेगा यह जीव और यदि ज्ञान निर्बल है, मिथ्या है तो वह दुःखी रहेगा। सो मिथ्यात्वके समान दूसरा कोई बैरी इस जीवका नहीं है।

करोति दोषं न तमत्र केशरी न दंदशूको न करी न भूमिथ:।
अतीव रुष्टो न च शत्रुरुद्धतो यमुग्रमिथ्यात्वरिपुः शरीरिणी ॥१४१॥

मिथ्यात्वका प्रबल बैरीपना—इस जीवका जितना अहित मिथ्यात्वरूप बैरी कर सकता है उतना अहित कोई दूसरा नहीं कर सकता। सिंह भी क्रुद्ध हो जाय तो जान ले लेगा, एक भवका प्राण ले ले इतना ही तो कर पाया। हस्ती, रुष्ट राजा, शत्रु आदिक कोई अधिकसे अधिक इतना ही तो बिगाड़ कर सकेगा कि एक भवका प्राण खत्म कर दे, मगर मिथ्यात्व बैरी तो भव-भवमें जन्म मरण करायेगा, और जिससे जीवन रहता है इष्ट वियोग अनिष्ट सयोग, नाना वेदनायें, इससे दुःखी रहेगा। जीवका विशुद्ध जाननहार है। जहाँ कल्पना नहीं, विचार नहीं, कोई विशेषता न लेकर केवल झलक प्रतिभासमात्र दर्पणमें इस तरह झलक रहे समस्त पदार्थ कि यह ही तो वास्तविक स्वरूप है। अपने सही स्वरूपमें रहे तो कोई कष्टकी बात नहीं। लोग कष्ट बनाते हैं और फिर उन कष्टोंको मिटानेका प्रयत्न करते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं। कदाचित् कल्पनामें यह बात आये कि कष्ट मिटा तो उसके एवजमें इसको कष्ट और भी सामने आते हैं। जैसे कोई तराजूमें धरकर जिन्दा मेढक तौल नहीं सकता। कुछ रखे जायेंगे, फिर कुछ रखनेका प्रयत्न करेंगे तो उनमेंसे कुछ उछल जायेंगे, तो जिन्दा मेढक तौलना जैसे अशक्य है ऐसे ही कष्टोंको दूर करनेका प्रयत्न कर-करके कष्टोंका मिटाना बिल्कुल अशक्य है, केवल ज्ञानप्रकाश ही एक ऐसी परम औषधि है कि कष्ट मिटानेमें समर्थ है। दूसरा कुछ नहीं हैं। तो जिस जीवके मिथ्यात्वभाव लगा है उसका महान अहित है। हमारे अहितको कोई दूसरा नहीं कर सकता।

दधातु धर्मं दशधा तु पावनं करोतु भिक्षाशनमस्तदूषणं।
तनोतु योगं धृतचित्तविस्तरं तथापि मिथ्यात्वयुतो न मुच्यते ॥१४२॥

मिथ्यात्ववशीभूत जीवके क्षमा आदि धर्मोंका पालन करने पर भी मोक्षमार्गका अभाव—कोई पुरुष १० प्रकारके क्षमा आदिक पवित्र धर्मोंको भी पा ले, पर मिथ्यात्वको न तजे तो क्या उसको मोक्ष मिलेगा? वह तो संसारमें ही रुलेगा। जिसने मिथ्यात्व नहीं छोड़ा वास्तवमें वह धर्मको पाल ही नहीं सकता, मगर रूढ़िमें हम जिसे धर्मपालन कहते हैं उस ढंगसे कोई क्षमा मार्दव आदिक दस धर्मोंका पालन करे और मिथ्यात्वसे युक्त है तो वह छुटकारा नहीं पा सकता। कोई पुरुष बाह्य परिग्रहोंको त्यागकर निर्दोष भिक्षावृत्तिका आचरण करे और जैसे संन्यासमें उपदेश किया है उस प्रकारसे योगकी साधना भी कर डाले, मनके वेगको भी रोके, मनको नियंत्रणमें रखे तो भी जब तक मिथ्यात्वसे युक्त है तब तक कदाचित् भी इसकी मुक्ति नहीं हो सकती। वास्तवमें श्रद्धान हुए बिना कितना ही जप तप कर लिया जाय वह मोक्षका दायक नहीं हो सकता। उसे संसारमें रुलना ही पड़ेगा। तो अब यदि अपने आपपर दया हुई हो तो भीतरमें यह सोचिये कि हम इस जीवनमें कर क्या रहे है? मिथ्यात्व और मोह ही पुष्ट हो रहा है तो उसका जीवन सब व्यर्थ है। यों तो अनादि कालसे अनन्त जन्म मरण किया, अनेक जीवन पाये, परिजन पाये, पौद्गलिक ठाठ पाये, पर उससे लाभ क्या मिला? आज भी यदि वास्तविक ज्ञान प्रकाश नहीं जग रहा है तो कुछसे भी कुछ कर लिया जाय उससे इस जीवका लाभ होनेका नहीं है। अपने आपका केवल अपना आत्मा ही शरण है दूसरा कोई शरण नहीं। ऐसा जानकर कुछ दया करनी चाहिए और सत्य प्रकाश चित्तमें लाइये। मैं आत्मा अमूर्त ज्ञानस्वरूप अकेला हूं, इसका दूसरा कोई कुछ नहीं है। यह अपनेको सम्हाले तो कल्याण पा लेगा और अपने स्वरूपकी सुध न ले और बाहरी पदार्थोंमें लगाव मोह राग बनाये रहे तो यह संसारमें इसी तरहके जन्म मरणके कष्ट पायगा। सो जो मिथ्यात्वयुक्त पुरुष हैं वे बाहरमें कितनी भी धार्मिक क्रियायें कर डालें तो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

भी उनको मोक्षमार्ग नहीं मिलता।

ददातु दानं बहुधा चतुर्विधं करोतु पूजामतिभक्तितोऽर्हतां।
दधातु शीलं तनुतामभोजनं तथापि मिथ्यात्ववशो न सिद्धयति ।।१४३।।

दान, पूजा, शील आदि कर्तव्य करने पर भी मिथ्यात्ववशी जीवको सिद्धिका अभाव—मिथ्यादृष्टि जीव चाहे चारों प्रकारके दान भी कर लेवे तो भी उसको निराबाध सुख की प्राप्ति नहीं हो सकती। यह भी एक हिम्मत है कि अपने पाये हुए धनको दूसरोंके उपकार के लिए लगाये, दान करे सो अपेक्षाकृत ठीक है किन्तु मोहबुद्धि यदि न चले तो मोक्षमार्ग तो न मिल पायगा। कोई पुरुष जिनेन्द्र भगवानकी पूजा बड़ी भक्तिसे करे तो अपेक्षाकृत उसे लाभ मिलेगा थोड़ा, लेकिन मिथ्यात्वके वशीभूत हैं तो ऐसे पूजन आदिक करने पर भी उसे निराबाध मोक्षका मार्ग नहीं मिल पाता। कोई पुरुष शीलको खूब धारण करे याने द्रव्य ब्रह्मचर्यका पालन करे वह भी ठीक है अपेक्षाकृत, लेकिन मिथ्यात्वके वशीभूत है तो इतना त्याग करके भी उसे मोक्षमार्ग न मिल पायगा। कोई पुरुष ८-१० दिनके बड़े उपवास भी करे और नाना प्रकारके एकान्त आदिक बहुत-बहुत व्रत करे कर्मदहनके, जिनगुणसम्पतिके, णमोकार मंत्रके, किसी भी सहारेसे व्रत, उपवास करे, तीर्थप्रवृत्तिके लिए ठीक है, करे, लेकिन यदि मिथ्यात्वके वशीभूत है, मोहयुक्त है तो वह मोक्षमार्ग तो नहीं पा सकता। तो इस जीव का सर्वाधिक बैरी एक मिथ्याभाव है।

अवैतु शास्त्राणि नरो विशेषतः करोतु चित्राणि तपांसि भावतः।
अतत्त्वसंसक्तमनास्तथापि नो विमुक्तिसौख्यं गतबाधमश्नुते ।।१४४।।

शास्त्रज्ञान व विविध तपश्चरण होनेपर पर्यायबुद्धि जीवके मुक्तिका अभाव—कोई मनुष्य शास्त्रोंका भले प्रकारसे अध्ययन, अध्यापन करे, पर यदि मिथ्यात्वभावमें आसक्त है तो वह मुक्तिके सुखको तो नहीं पा सकता। उसका शास्त्राध्ययन करना शब्दोंमें है, भावभासनामें नहीं है। कोई पुरुष पवित्र भावोंसे नाना प्रकारके उग्र तपोंकी आराधना करे, परन्तु यदि वह निर्दोष तत्त्वके विचारसे विमुख है तो वह कभी भी बाधारहित मोक्षसुखको प्राप्त नहीं कर सकता। यहाँ जो यह बतलाया जा रहा है कि चाहे उपवास करे, चाहे शास्त्र पढ़े आदिक जो कहा जा रहा, सो इसमें शास्त्रके अध्ययन उपवास, जप तप आदिकमें हीनता नहीं बतायी जा रही है, किन्तु मिथ्यात्वका प्रबल बैर बताया जा रहा कि यदि मोह मिथ्यात्व है तो इतना बड़ा काम करनेपर भी वह मोक्षमार्गको न प्राप्त कर सकेगा।

विचित्रवर्णांचितचित्रमुत्तमं यथा गताक्षो न जनो विलोकते।
प्रदर्श्यमानं न तथा प्रपद्यते कुदृष्टिजीवो जिननाथशासनं ।।१४५।।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जिसके आँख नहीं है वह अंधा मनुष्य नाना रंगके बने हुए उत्तम चित्रोंको देख सकता है क्या ? आँखें अंधी हैं तो उन चित्रोंको कैसे देख सकता ? तो ऐसे ही जिसके विवेक नहीं है, विवेककी आँख फूट गई है, मिथ्यात्वका अंधा बना हुआ है वह जीव नाना प्रकारके उपदेश किए गए जिनेन्द्रके सच्चे मार्गको नहीं पहिचान सकता। मिथ्यात्व-अज्ञान इस जीवका इतना घना बैरी है। तो जीवनमें कर्तव्य तो यह है कि उन सब कामोंको गौण कर देवें, पर तत्त्वज्ञानके पौरुषको पूर्ण मुख्यता दें, क्योंकि मददगार, शरण अपना तत्त्वज्ञान बनेगा।

तत्त्वज्ञानातिरिक्त अन्य पदार्थ व अन्य भावकी अशरणता—बाह्य पदार्थ जो समागममें मिले हैं ये मददगार नहीं बनते। जीवनमें अनेक घटनायें घटती हैं और वे घटनायें क्या हैं ? सारे कष्टके कारणभूत है। अगर किसीको विशेष धन मिल गया तो वह भी कष्टका कारण है, न मिला तो वह भी कष्टका कारण है। किसीके संतान हो तो वह भी कष्टका कारण है, न हो तो वह भी कष्टका कारण है।

इस प्रकार सारी घटनायें कष्टका ही एक रूप हैं। सो कहनेको धन तो सभीके पास है, किसीके पास अधिक भी है। तो जो भी धन मूलमें प्राप्त है उसकी रक्षाकी चिन्ता, व्यवस्थाकी चिन्ता, उसकी सम्हालकी चिन्ता और रक्षा करते-करते हानि हो जाय तो उसकी चिन्ता, धनमें कहाँ सुख पाया और कोई अगर निर्धन है, गरीब है, तो उसके भूख-प्यासकी बाधा कैसे मिटे, अनेक कठिनाइयाँ हैं, उसको भी कष्ट है। जिसके पुत्र है तो पुत्र तो दो ही तरहके होंगे—कोई कुपूत निकले कोई सुपूत निकले। यदि किसीका पुत्र कुपूत निकल आया तो बताओ कष्ट मानते कि नहीं ? और किसीका पुत्र सुपूत निकल आया तो उसके तो उससे भी अधिक कष्ट है कुपूत निकल आया तो एक बार घोषणा कर दी कि मेरा इससे कुछ मतलब नहीं। जो इससे व्यवहार करे, लेन देन करे सो खुद जाने, और सुपूत निकला तो जिंदगी भर उसके पीछे चिन्ता, इसे मैं खूब कमाकर धर जाऊँ, यह बड़ा आज्ञाकारी है, बड़ा गुणवान है, कभी लौटकर बात नहीं कहता, सो उसके सुखी करनेके लिए जिन्दगीभर चिन्तन करेंगे, परिश्रम करेंगे कि मैं इसके लिए खूब धन जोड़कर धर जाऊँ। तो आखिर कष्टका ही तो कारण बना। संसारका कौनसा समागम ऐसा है परपदार्थका जो शान्तिका साधन बने ? सब कष्टके कारण बनते हैं। भले ही मोहमें वे न मानें, पर हैं वे सब कष्टके ही कारण। सो जिसने विवेक नहीं पाया, जो मिथ्यात्वसे अंधा है वह कभी सुखी नहीं हो सकता।

अभव्यजीवो वचनं पठन्नपि जिनस्य मिथ्यात्वविषं न मुंचति।
यथा विषं रौद्रविषोऽतिपन्नगः सशर्करं चारुपयः पिबन्नपि ॥१४६॥

अभव्य जीवके अध्ययनकी भी मिथ्यात्वविषपोषकता—कोई विषधर सर्प भयंकर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विष वाला यदि मीठे दूधको पी ले तो वह क्या उगलेगा ? विष ही उगलेगा, अमृत नहीं, यद्यपि उसने पी तो अच्छी वस्तु, सही दूध है, मीठा मिला हुआ है, पर वह आधार ऐसा है कि वहां दूध पहुंच जानेपर विषरूप परिणम जाता है। तो जैसे विषैला सर्प मीठे दूधको पीकर विष ही उगलता है इसी प्रकार अभव्य जीव जिनेन्द्र भगवानके वचनोंको पढ़ता हुआ भी मिथ्यात्वरूपी विषको ही उगलता है। आपने निर्णय ही यह बनाया है कि मुझे दोष निरखना है और आप यदि गुण निरखने चलें तो दीन भिखारियोंमें भी कोई न कोई गुण मिलेंगे। तो जैसी दृष्टि बनायेंगे वैसा ही उपयोग बन जायगा। मगर आशय मिथ्या है, मोह भरा है, अपने आपकी सुधसे पतित है, च्युत है तो वह कितना भी उपदेशको सुने, पर उसमें से दोष ही निकालेगा, मिथ्यात्वको ही प्रकट करेगा। भव्य पुरुष समय पाकर अपने शुद्ध परिणामोंके बल से मिथ्यात्वको तोड़ देगा, पर जिनका होनहार खोटा है, अभव्य पुरुष हैं वे तो सदा वैसे ही रहते हैं। वे अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ सकते। जैसे सांप अपनी प्रकृतिको नहीं छोड़ पाता, दूध भी पिये तो भी विष ही उगलेगा। ऐसे ही कोई कैसा ही विद्वान् हो, उपदेश भी सुने, यदि श्रोता अभव्य है तो वह दोष ही देखेगा—भाई बात तो सब ठीक कही, पर एक इतनी कमी दिखी।

परके दोष न निरखकर स्वके दोष देखकर उसके दूर करनेके पौरुषमें विवेक—कमी तो साधुवोंमें भी होती, अन्यथा वे साधु ही क्यों होते ? फिर तो वे भगवान कहलाते। जिनमें कमी नहीं है वे भगवान हैं। साधुवोंमें कमी होती है, उस कमीको दूर करनेकी साधना करते हैं, उनको ही तो साधु कहते हैं। अब कमीपर कोई दृष्टि डाले तो बतलावो उसका जो दिल है वह दोषकी फोटोसे भर गया या नहीं ? जो दूसरोंके दोष देखनेकी आदत बनाये रखते हैं उनका उपयोग दोषोंकी फोटोसे भरा हुआ रहता है। और गुणोंको देखे तो उसका उपयोग गुणोंकी फोटोसे भरा हुआ होता। तो मनुष्यका यह कर्तव्य है कि वे दोष देखें, कमी देखें तो खुदकी कमी देखें। मुझमें कितनी कमी है। भले ही सम्यक्त्व भी हो गया, पर जो गुण कुछ विकासमें आये हैं उनको न देखे, किन्तु जो दोष रह गए हैं उनको देखे। अगर अपने गुणोंको देखेंगे जो कि पर्यायरूप है तो उससे तो अहंकार बनेगा और अपने दोष देखेंगे तो उन दोषोंको दूर करनेका पौरुष बनायेगा। और यदि अपने गुण ही देखना है तो जो अल्प विकास पर्यायरूपमें जो गुण है उनको न देखें, किन्तु आत्माके जो सहज स्वभावरूप शाश्वत शक्तिको देखें। जो कुछ थोड़े विकसित हुए हैं उन गुणोंपर दृष्टि न डालिये अपनी। गुण देखें तो स्वभावमें देखें और दोष देखें तो जिससे अपने दोष दूर हो सकें उसे देखें। अब दूसरोंमें देखिये तो उनके गुण निहारिये ताकि अपनेको प्रेरणा मिले कि इस तरहकी वृत्ति मेरी भी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

होनी चाहिए । तो गुण देखिये दूसरोंके और दोष देखिये अपने ।

स्वसहज गुणोंकी उपासनामें प्रगति—अपने गुण देखना हो तो अनादि अनन्त अहेतुक सहज स्वभावरूप अपना चैतन्यगुण निरखियेगा । बाहरमें देखा तो यह जीव उलझनमें पड़ गया । सारी उलझनें दिख रही हैं बाहर । जब अपने स्वरूपके अन्दर देखें तो वहाँ सारी उलझनें समाप्त हो जाती हैं। जितनी उलझनें हमने बाह्य पदार्थोंके लगावसे बना डाली है एक क्षणमें आत्मस्वभावकी दृष्टि होते ही सारी उलझनें समाप्त हो जाती हैं । चाहे बड़ा कठिन भी हो कि मकान कैसे छोड़ा जा सकता, यह धन कैसे दूर हो गया, लोग मुझसे कैसा बुरी तरह बोलते हैं, इन्होंने मेरा कितना बड़ा तिरस्कार किया…यों कितनी ही उलझनें मिलेंगी चित्तमें, मगर सारीकी सारी उलझनें एक क्षणके आत्मतत्त्वकी दृष्टिमें खत्म हो जाती हैं । क्या है, परकी परिणति थी, उससे मेरेमें क्या आता था । तो अपने स्वभावके दर्शन होते ही सारी उलझनें समाप्त होती हैं । तो सुखके लिए बाहर कहीं उद्यम नहीं करना है, किन्तु अपने सहज ज्ञानस्वरूपकी दृष्टि करना, उपासना करना उसे निहारे रहना, प्रयोग करना है ।

भजंति नैकैकगुणं त्रयस्त्रयो द्वयं द्वयं च त्रयमेककः परः ।
इमेत्र सप्तापि भवंति दुर्दृशो यथार्थतत्त्वप्रतिपत्तिवर्जिताः ॥१४७॥

मिथ्यादृष्टिके रत्नत्रयका अभाव—तीन बातें हैं—सम्यग्दर्शन न होना, सम्यग्ज्ञान न होना, सम्यक्चारित्र न होना । दो भङ्गोंके रूपमें रखा जाय तो मुख्यताकी दृष्टिसे ३ भंग और हो जायेंगे । तीन तो एक-एकके और तीन दो-दो के । सम्यक्त्वका अभाव और सम्यग्ज्ञानका अभाव अथवा सम्यक्त्वका अभाव, सम्यक्चारित्रका अभाव अथवा सम्यग्ज्ञानका अभाव, सम्यक्चारित्रका अभाव । और तीनोंका अभाव है, वह एक भंग हुआ अथवा जो पहले ७ तरहके मिथ्यादृष्टि कहे गए उनमें प्रथम तीनके तो एक गुण सम्यग्दर्शन नहीं । अगले तीन मिथ्यादृष्टियोंके दो गुण नहीं और अन्तके एकके अतिरिक्त अगृहीत मिथ्यादृष्टिके तीनों ही गुण नहीं । वस्तुतः इन सभी मिथ्यादृष्टिवोंके तीनों ही गुण नहीं । वस्तुतः इन सभी मिथ्यादृष्टियोंके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र नहीं है । जिसके सम्यक्त्व नहीं उसके दो हो ही नहीं सकते ।

अनंतकोपादिचतुष्टयोदये त्रिभेदमिथ्यात्वमलोदये तथा ।
दुरंतमिथ्यात्वविषं शरीरिणामनंतसंसारकरं प्ररोहति ॥१४८॥

सम्यक्त्वघातक सप्त प्रकृतियोंके उदयकी अनंतसंसारकरता—सम्यग्दर्शनका घात करने वाली ७ प्रकृतियाँ हैं । अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व और सम्यक्प्रकृति । ये ७ प्रकृतियाँ सम्यक्त्वकी घातक बतायी गई हैं । इनके उदयमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवके मिथ्यात्वभाव रहता है और इस मिथ्यात्वभावके कारण संसारमें निरन्तर दुःख भोगना पड़ता है। अनन्तानुबंधी क्रोध—जो क्रोध मिथ्यात्वका सम्बंध बनाये, मिथ्यात्वको पुष्ट करे उसे अनन्तानुबंधी क्रोध कहते हैं। अनन्तका अर्थ है मिथ्यात्व, उसका जो अनुबंधन कराये उसे कहते हैं अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ ये सम्यक्त्वके घातक हैं।

धार्मिक ओटमें या प्रसंगमें कषायोंके होनेकी अनन्तानुबन्धिता—अनन्तानुबंधीके उदाहरणमें यह उदाहरण भी हो सकता है कि धार्मिक प्रसंगकी कोटिमें क्रोध, मान, माया, लोभ करना, जैसे धार्मिक व्यवस्था, प्रबंध संचालन या जो धार्मिक कार्य हैं उनके प्रसंगमें क्रोध आना एक हठवादके कारण जैसे पर्वके दिनोंमें पूजन करते हैं, अब रोज रोज अभिषेक करते हैं मानो प्रारम्भमें और किसी दिन उस जगह कोई दूसरा आ जाय तो उसपर क्रोध कर बैठे तो यह अनन्तानुबंधी क्रोध है। कोईसा भी धर्मकार्य हो उस बीच क्रोध आये तो वह अनन्तानुबंधी क्रोध है। जिन लोगोंकी ऐसी प्रकृति है कि पूजा करते समय मान लो धूप दान न आया या अग्नि न आयी तो लोग माली या मंदिरके पंडितपर झल्ला जाते हैं, उस पर बहुत नाराज होते हैं तो वह अनन्तानुबंधी क्रोध है। प्रभुकी पूजा तो बिना द्रव्यके भी हो लेती है, चुपचाप भी हो लेती है, आँखें बंद करके भी हो लेती है, वहाँ तो भक्तिभाव चाहिये, पर उस प्रसंगमें बीच-बीच क्रोध आना यह भलेका सूचक नहीं है। हाँ व्यवस्थाके नाते आगे पीछे बात करना वह तो व्यवस्थामें शामिल है, पर जब पूजा कर रहे हों, जहाँ कि भावशुद्धि रहनी चाहिए वहाँ यदि भाव बिगड़ जायें तो वह अनन्तानुबंधीका द्योतक है। कोई धर्मकार्यके प्रसंगमें घमंड आये—मैं पुजारी हूं, मैं इतने दिनोंसे लगातार पूजा करता आ रहा हूं, प्रबधक हूं यह अनन्तानुबंधी मान है। कारण यह है कि अन्य जगह कोई पाप कर आये तो धर्मस्थानमें उन पापोंको नष्ट करनेका मौका मिलता है और यदि कोई धर्मस्थानमें ही पाप करे तो फिर उसको अन्यत्र कहाँ मौका मिलेगा? अनन्तानुबन्धी माया—धर्मका कार्य करते हुएमें मायाचार रखना, दिखानेके लिए अन्य करते और अपने आपकी जगह आचरण और करते, जैसे अभी तक तो ढीले-ढाले बैठे या खड़े पूजा कर रहे थे, जल्दी-जल्दी बोलकर कर रहे थे, पर कोई दो-चार दर्शक लोग आ गए तो झट अटेन्शन हो गए और बड़ा राग आलापकर पूजा करने लगे। तो यह अनन्तानुबंधी माया है। ऐसे ही धर्मका कार्य कोई सामने आये और अपनेमें सामर्थ्य बहुत है और उस प्रसंगमें तृष्णा लोभ कर जाय तो वह अनन्तानुबंधी लोभ है। एक ही बात नहीं, अन्यत्र भी यह अनन्तानुबंधी लोभ चलता है। तो जहाँ ये चार कार्य हैं वहाँ प्रकट नहीं हो पाता। भले ही एक स्थिति ऐसी आती है कि सम्यक्त्व छूट गया, मिथ्यात्वमें नहीं आ पाया और एक समयसे लेकर अधिकसे अधिक

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१ आवली पर्यन्त अनन्तानुबंधी रहता है। जिसे कहते हैं सासादन गुणस्थान, पर वह तो मिथ्यात्वके ही सम्मुख है। वहाँ भी अज्ञान है। तो अनन्तानुबंधी चार कषाय और दर्शनमोह की तीन प्रकृतियाँ इनके उदयसे मिथ्यात्व होता है। जहाँ मिथ्यात्वका उदय है वहाँ सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृतिकी क्या चर्चा ?

दर्शनमोहकी प्रकृतियोंका वैचित्र्य—एक स्थिति ऐसी होती है कि मिथ्यात्व नहीं है और सम्यग्मिथ्यात्वका उदय है, जिसे कहते हैं तीसरा गुणस्थान, मगर वह सम्यक्त्वके प्रसाद से ही प्रकट हुआ है। जिसको पूर्ण सम्यक्त्व नहीं हुआ उसके तीसरा गुणस्थान नहीं हो सकता। भले ही वह मिथ्यादृष्टि होकर तीसरा गुणस्थान पा ले, पर सम्यग्मिथ्यात्व प्रकृतिकी सत्ता तो सम्यक्त्व होनेके समय ही तो बनी थी। यही सम्यक्प्रकृतिका हाल है। सम्यक्प्रकृति सम्यक्त्वका घात नहीं करती, पर सम्यक्त्वमें चल मलिन अगाढ़ दोष उत्पन्न करती रहती है। इसका नाम सम्यक्त्वप्रकृति रखा है। सम्यक्त्वप्रकृतिके मायने क्या है कि सम्यक्त्व होते हुए भी उसमें दोष उत्पन्न हों। सम्यक्त्व नाम उसका रख दिया है, पर अर्थ उसका दोषोत्पादक है और उसका उदय वेदक सम्यक्त्वमें होता है। सो यह प्रकृति भी सत्तामें तब आयी जब प्रथमोपशम सम्यक्त्व हुआ था। उस क्षण मिथ्यात्वके तीन टुकड़े हुए थे। सो जहाँ मिथ्यात्वका उदय है वहाँ इन २ प्रकृतियोंकी क्या चर्चा ? भले ही पड़े रहें, पर प्रबल तो मिथ्यात्वकर्म है।

संसारी जीवोंकी कर्माक्रान्तता—संसारमें जितने भी प्राणी हैं उन सबके साथ शुभ और अशुभ कर्म लगे हैं और उन्हीं शुभ अशुभ कर्मोंकी प्रेरणासे ये संसारी जीव चारों गतियों में डोलते रहते हैं। तो जो भी संसारमें कष्ट हैं वे कर्मका निमित्त पाकर हुए हैं। जीवका स्वभाव है नहीं कष्ट होनेका। वह तो आनन्दस्वरूप है, पर जहाँ ऐसे कर्म उदयमें होते हैं वहाँ दु:खकी स्थिति बन जाती है। ये आठों प्रकारके कर्म इस जीवके लिए एक कीचड़ हैं। इससे मलीमसता उत्पन्न होती है। जैसे-जैसे इन कर्मोंका नाश होता है वैसे ही वैसे आत्माके गुणों का विकास होता चला जाता है। आत्मामें शक्ति अद्भुत है, अनन्त है, पर कर्मोदय इस प्रकार निमित्त हो रहा है कि यह जीव स्वयं बलहीन हो जाता है और दोषोंक बन जाता है। जब कभी आत्माको अपने सहज स्वरूपका अनुभव बने तो वहाँ आत्मा बलिष्ट होता है। तो निमित्तनैमित्तिक भावका अब पल्टा हो गया। आत्माके शुद्ध भावका निमित्त पाकर अब कर्मोंमें निर्जरा होने लगती है। पर जहाँ मिथ्यात्वका तीव्र उदय है वहाँ इस जीवका क्या वश चले, तिसपर भी जब विवेक पाया है तो उद्यम करें तत्त्वज्ञानका, भावनाका, भक्तिका, जिसके प्रसादसे सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंमें कुछ कमजोरी आयी और मौका सम्यक्त्व पानेका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मिल गया ।

अलब्धदुग्धादिरसो रसावहं तदुद्भवो निंबरसं कृमिर्यथा ।
अदृष्टजैनंद्रवचोरसायनस्तथा कुतत्त्वं मनुते रसायनं ॥१४६॥

मिथ्यादृष्टिकी कुतत्त्वमें आस्था—जैसे निम्बोलीमें अर्थात् नीमके फलमें उत्पन्न हुआ कीड़ा उस नीमके रसको ही मधुर और इष्ट समझता है। उसने कभी दुग्ध अथवा मीठेका रस जाना ही नहीं है। तो नीमके रसको वह मधुर समझता है। ऐसे ही कुछ मिथ्यादृष्टि जीवोंने जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित तत्त्वरूपी रसायनको जाना ही नहीं है तो उनको रागद्वेष मोह अथवा कुबुद्धि कुनयकी बात ही विदित होती है। बड़ा ही सौभाग्य है उन मनुष्योंका जिनको जैनशासनमें प्रीति, आत्मस्वभावकी दृष्टिमें प्रीति, धार्मिकतामें अनुराग होता है। और इस शुद्ध तत्त्वकी प्रीतिमें कुछ शान्तिका भी अनुभव होता है। और जो मनुष्य पञ्चेन्द्रियके विषयोंमें अनुराग रखता है, उनके संचयका ही मात्र ध्येय समझता है, उसका उपयोग निरन्तर बाहर ही बाहर भटकता रहता है और उसे चैन नहीं पड़ती। उसे शान्तिलाभ नहीं मिल सकता। परवस्तुवोंके उपयोगमें शान्ति सम्भव ही नहीं है। जैसे कोई मछली अपने जल के स्थानसे उछलकर रेतीली भूमि पर गिर जाय तो उसका तड़पना ही रहेगा और तड़प-तड़पकर मरना होगा, ऐसे ही अपना उपयोग इस ज्ञानसमुद्रसे, इस आत्मस्वरूपसे बाहर निकल गया तो इस उपयोगने अपने इस ज्ञानसागरको तो नहीं जाना और जानने लग गया बाह्य विषयोंको। तो जो उपयोग यों बाह्य विषयोंमें गिर पड़ेगा वह तो तड़पेगा और तड़प-तड़पकर विकट कर्म बाँधेगा और तड़पनेकी म्याद बढ़ाता रहेगा, भव-भवमें जन्म-मरण करता रहेगा।

ददाति दुःखं बहुधातिदुःसहं तनोति पापोपचयोन्मुखीं मतिं ।
यथार्थबुद्धिं विधुनोति पावनीं करोति मिथ्यात्वविषं न किं नृणां ॥१५०॥

मिथ्यात्वविषकी दुःखकारिता, पापविस्तारकता व सद्बुद्धिध्वंसकता—यह मिथ्यात्वरूपी विष इस जीवको अतीव दुःसह दुःख देता है। इस मिथ्यात्व भावके ही कारण पाप कार्योंकी ओर बुद्धिको लगा देता है। विषयके भोग और उपभोगोंमें ही यह अपनेको महत्त्वशाली जानता है। इसीसे ही कल्याण समझता है। इसमें ही लाभ समझता है। किसीके पास बहुत धन इकट्ठा हो गया तो वह यह समझता है कि मैंने बहुत कमाया और महत्त्व ही महत्त्व पाया, लाभ पाया, पर जो आत्मा है उस ओर तो देखो कि परपदार्थोंकी ओर बुद्धि लगाकर उसने अपना सब कुछ खोया या पाया ? उसने सब खोया। भले ही धनलाभ हुआ, पर उससे वह अपनेको महत्त्वशाली समझे, बड़प्पन जाने और उसमें अपनेको कृतार्थ माने तो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उस जीवने अपना सब कुछ खोया ही है, कमाया कुछ नहीं है। कमाया तो उसने है जो अपने सहज स्वरूपको निरखता है, और उस सहज स्वरूपकी दृष्टिमें ही अपना लाभ समझता है।

ज्ञानीका उद्देश्य व परमार्थनिधिलाभ—ज्ञानीका उद्देश्य सहज आत्मस्वरूपकी उपासना है। बाह्य तत्त्वोंका निवारण करना ज्ञानका ध्येय नहीं होता। ज्ञानी गृहस्थ भी यद्यपि लगा है सबके बीच, पर उसकी धुनमें केवल अन्तः स्वरूप ही बसा है। जैसे किसीका कोई इष्ट गुजर जाय तो भले ही वह रिश्तेदारोंके बीच भी बैठा है, भोजन भी करता, लोगों की बात भी सुनता, पर लक्ष्य और दृष्टि मरे हुए इष्टकी ओर ही है। उसका ख्याल और प्रतीति नहीं छोड़ पाता। तो ऐसे ही धर्मात्मा ज्ञानी पुरुष भले ही समय-समयपर अन्य-अन्य कार्योंमें लगा है। घरमें, दुकानमें लोगोंसे वार्तामें भले ही लगा है, मगर एक क्षणको भी वह अपने शुद्ध अन्तस्तत्त्वकी प्रतीति नहीं छोड़ता। जैसे लोगोंको अपने-अपने नाममें बड़ी प्रीति और प्रतीति लगी हुई है, वह एक सेकेण्डको भी नहीं हटती। भले ही सो गया, मगर अपने नाम और पर्यायके प्रति जो वासना है उसे बार-बार रखे हुए है। इन्द्रियाँ बेहोश हैं सो विकार मालूम नहीं हो रहा, पर प्रतीतिमें उसके अपने पर्याय और नाममें आत्मत्वकी आस्था है। तो सम्यग्दृष्टि ज्ञानीको हर प्रसंगमें चाहे वह खाये-पिये, चाहे किसीसे वार्तालाप करे, पर प्रतीति अपने अकिञ्चन चैतन्यस्वरूपकी ही है। मैं तो यह हूं, बाकी बाहरी रंग ढंग ये सब मैं नहीं हूं। मैं तो अमूर्त ज्ञानमात्र हूं, ऐसी आस्था ज्ञानीके होती है। इस जीवका प्रबल बैरी है मिथ्यात्वभाव। इस मिथ्यात्वके कारण जीवपर सभी प्रकारके संसार-संकट छा जाते हैं।

अनेकधेति प्रगुणेन चेतसा विविच्य मिथ्यात्वमलं सदूषणं।
विमुच्य जैनेन्द्रमतं सुखावहं भजंति भव्या भवदुःखभीरवः ॥१५१॥

भव्यों द्वारा कुपथको छोड़कर सुपथका ग्रहण—जो भव्य पुरुष हैं, सम्यक्त्वके पात्र हैं वे संसारमें जन्म मरण धारण करनेसे डरते हैं। देखिये क्या लाभ मिलता? मरे, फिर कोई न कोई जन्म ले लिया, चिड़िया ही बन गए, पशु ही बन गए, न जाने कहाँ कैसे रहना पड़ता है, न जाने कैसे-कैसे शरीर मिलते हैं, ये सब बड़ी विडम्बनाकी बातें हैं। जन्मे फिर मर गए, कितना कष्ट है? चिड़ियोंके अंडेमें पहुंचे, उस अंडेमें रह रहे, कुछ जरासे बड़े हुए तो किसी बंदरने दबोचा या किसी बिल्लीने उठा लिया, किसी तरह मर गए। तो जन्म-मरण की इस कसरतमें इस जीवको लाभ क्या मिलता है? अबसे पहले भी तो जन्म था किसी भव में। वहाँसे तो मरकर आये हैं। क्या लाये हैं साथ? वहाँका क्या है? अब यहाँसे मरकर जायेंगे सो पता नहीं कहाँ उत्पन्न हों? यदि सम्यक्त्व नहीं है और विषयवासना ही चल रही है तो उसका फल है कीड़ा-मकोड़ा एकेन्द्रिय आदिक होना। हुए, जन्म तो हो गया, पर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किस कामका ? जन्मे और मरे, यह कसरत ज्ञानीको पसंद नहीं है। ज्ञानी पुरुष जन्म मरण धारण करनेसे डरता है। वह नाना प्रकारके दोषोंसे दूषित सर्व प्रकारके मिथ्यात्वको छोड़कर जिनेन्द्र मतको ही धारण करता है। मिथ्यात्व सर्व दोषोंसे दूषित भाव है। जहाँ अपना ही पता नहीं और बाहरी-बाहरी पदार्थोंमें ही मोह बना हुआ है, सही सुध है ही नहीं कि मैं क्या हूँ, तो ऐसा प्राणी तो बड़े अंधेरेमें है। न जाने क्या-क्या सोच रहा है ? वह स्वप्न जैसी स्थिति है। जैसे स्वप्नमें कोई बड़ा खजाना दिख गया अथवा किसी घसियारेको स्वप्नमें राज्य मिल गया तो सब लोग उसे सलाम करने लगे, हुक्म मानने लगे और सो रहा जमीन पर, सिरके नीचे ईंट रखे हुए हैं और अचानक किसी घसियारेने जगा दिया कि उठो चार बज गए, अब कब चलोगे, कब घास बेचोगे ? तो चूंकि वह स्वप्नमें तो राज्यपद पाये हुए था। जगनेके बाद तो कुछ नहीं तो वह अन्य लोगोंसे लड़ने लगा कि तुमने हमारा राज्य छीन लिया। अरे था कहाँ राज्य ? केवल एक स्वप्नकी बात थी, तो वह तो सोतेकी बात है, जगनेमें भी उसका है कहाँ ? केवल कल्पनामें, मोहमें मान रहे कि मेरा है। कहीं मेरे माननेसे कोई वस्तु मेरी बन सकती है क्या कि आत्मस्वरूप ही मेरा है, अन्य कुछ मेरा नहीं है। ऐसी बुद्धि भव्य जीवोंको प्राप्त होती है। सो वे मिथ्यात्वको छोड़कर अनन्तसुख देने वाले जिनेन्द्र देव द्वारा बताये गए धर्मभावमें प्रवेश करते हैं। मिथ्यात्वसे हटना और सम्यक्त्व भावमें आना यह है सच्ची कमाई और वह नहीं है तो पुद्गलका ढेर कुछ भी हो उससे आत्माका क्या लाभ ?

विमुक्तशंकादिसमस्तदूषणं विमुक्ततत्त्वाप्रतिपत्तिमुज्ज्वलं।
वदंति सम्यक्त्वमनंतदर्शना जिनेशिनो नाकिनुतांघ्रिपंकजाः ॥१५२॥

प्रभु द्वारा निर्दोष सम्यक्त्वका निरूपण—अनन्त दर्शनके धारी देवेन्द्रों द्वारा पूजित भगवानने दिव्यध्वनिमें उपदेश किया है कि शंका आदिक दोषोंसे रहित जीव, अजीव, आश्रव, बंध, सम्वर, निर्जरा और मोक्ष इन ७ तत्त्वोंके यथार्थ श्रद्धानको सम्यक्त्व कहते हैं। शंका आदि दोषोंसे रहित मायने जो सम्यग्दर्शनके ५ अतिचार बताये गए हैं उन अतिचारोंसे रहित सम्यक् सम्यक्त्वनिरतिचार सम्यक्त्व कहलाता है। उन अतिचारोंसे रहित सम्यक् सम्यक्त्व निरतिचार सम्यक्त्व कहलाता है। शंकाके मायने हैं जिनेन्द्रवचनोंमें आत्मस्वरूपमें संदेह करना, शंका रखना यह अतिचार है। काञ्छाका अर्थ है भोगोंकी, भोगोंके साधनोंकी वाञ्छा करना अतिचार है। विचिकित्साका अर्थ है कर्मोदयसे क्षुधा, तृषा आदिक कोई विपदा आ पड़े तो उसमें विषाद करना विचिकित्सा है तथा साधुजनोंकी सेवामें उनके मलिन शरीरको देखकर ग्लानि करना विचिकित्सा है, यह सम्यक्त्वका अतिचार है। अन्य दृष्टि प्रशंसा—

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अन्य दर्शन अर्थात् मिथ्यादर्शनका जिनके प्रवर्तन है ऐसे साधकोंकी प्रशंसा करना सम्यग्दर्शन का अतिचार है। यह प्रशंसा शरीरसे हो, मनमें हो, वह सब अतिचार है और मिथ्यादृष्टिका स्तवन करना, गुणानुवाद करना, वचनोंसे प्रशंसा करना, यह अतिचार है। इन ५ अतिचारों से रहित ७ तत्त्वोंका श्रद्धान सम्यक्त्व कहलाता है। जीव चैतन्यस्वरूप है। इसके साथ अनादिसे अजीव कर्म उपाधि लगी आयी है। जीवमें कर्मका आना, कर्मवर्गणामें कर्मत्व आना आश्रव है। कर्मोंका अनेक समयके लिए जीवमें बँध जाना बंध है। कार्माणवर्गणामें कर्मत्व न आना सम्वर है। जो बँधे कर्म हैं उनका झड़ जाना निर्जरा है और सर्व कर्मोंका विकार हट जाना, क्षय हो जाना मोक्ष है। इन ७ तत्त्वोंका श्रद्धान हो और उसके माध्यमसे परिचय करके जीवके सहज स्वरूपका श्रद्धान होना वह सम्यग्दर्शन कहलाता है।

परोपदेशेन शशांकनिर्मलं नरो निसर्गेण तदा तदश्नुते ।
क्षयं शमं मिश्रमुपागते मले यथार्थतत्त्वैकरुचेर्निषेधके ॥१५३॥

सम्यक्त्वकी निसर्गजता व अधिगमजता—सम्यग्दर्शनके दो भेद किए गए हैं—(१) निसर्गज सम्यग्दर्शन और (२) अधिगमज सम्यग्दर्शन। सो कोई भी सम्यक्त्व होना होता है सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशममें। केवल वर्तमान समयमें उपदेश आदिक मिलने न मिलनेका अन्तर है। निसर्गज सम्यग्दर्शन जिसको उत्पन्न होता है उसने कभी पूर्वभवमें देशनालब्धि पायी थी और उसके संस्कारसे आज इस भवमें बिना उपदेश पाये सम्यक्त्व हो रहा है तो भले ही हो रहा है तो भी ७ प्रकृतियोंके उपशम, क्षय, क्षयोपशम बिना नहीं हो पाता। वे ७ प्रकृतियाँ यथार्थ तत्त्वोंके श्रद्धानको रखने वाली हैं, जिनमें तीन दर्शनमोहनीयकी हैं—मिथ्यात्व, सम्यग्मिथ्यात्व, सम्यक्प्रकृति। चार चारित्रमोहनीयकी हैं—अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ। इन ७ प्रकृतियोंके उपशम क्षय अथवा क्षयोपशमसे सम्यक्त्व होता है। किसी भी नवीन परिणतिके होनेमें दो कारण हुआ करते हैं—(१) अंतरंग कारण, (२) बहिरंग कारण। जिनका दूसरा नाम है उपादान कारण और निमित्त कारण। सो ऐसे ही जिस जीवके सम्यक्त्व न था और अब सम्यक्त्वका आविर्भाव हो रहा है तो उसमें उपादान कारण तो जिसमें सम्यक्त्व हो रहा है वह जीव है और निमित्त कारण सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंका उपशम, क्षय व क्षयोपशम है। उपशमका अर्थ है कर्मोंका दब जाना उदयमें न आ पाना। जैसे कोई मलिन तेल है तो उसमें फिटकरी डालनेसे उस तेलमें रहने वाले मलका उपशम हो जाता है। दब जाता है। वही तेल यदि दूसरी शीशीमें निखार लिया जाय तो वहाँ मलका अंश भी नहीं है। वह क्षय जैसी चीज है और वह मलिन दबा हुआ तेल यदि हिल जाय तो उसका मैल कुछ व्यक्त होता है कुछ नहीं रहता है। ऐसी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

स्थिति क्षयोपशमकी होती है। अनादिकालसे यह आत्मा कर्म द्वारा मलिन था। इस आत्मा में उपदेश आदिकके कारण दर्शन गुणको ढाकने वाले कर्मका उदय न आये, कुछ कालके लिए उस कर्मके फलका मिलना न हो तो यह उपशम कहलाता है। सम्यक्त्वघातक ७ प्रकृतियों का सर्वथा नाश हो जाय उसका नाम क्षय है और सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंमें से ६ प्रकृतियों का उदयाभावी क्षय हो, उन्हींका उपशमन और सम्यक्त्वघातक प्रकृतियोंका उदय हो तो यह क्षयोपशम है, सो निमित्त कारणमें अंतरंग निमित्त है ७ प्रकृतियोंका उपशम, क्षय, क्षयोपशम, बाह्य कारण है दूसरेका उपदेश मिलना, जिनबिम्बका दर्शन होना आदिक। ये सम्यक्त्व होते समय तो नहीं हैं कारण, पर सम्यक्त्वसे पहले जो शुभोपयोग हुआ था उस शुभोपयोगमें ये आश्रयभूत कारण पड़े थे। चूंकि शुभोपयोग हुए बिना सम्यक्त्व नहीं हुआ और शुभोपयोगमें ये आश्रयभूत कारण पड़े तो इन्हें भी सम्यक्त्वका बाह्य कारण कहा जाता है। इस प्रकार निमित्तकी ओरसे देखनेपर सम्यक्त्वके तीन भेद हैं––औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक, और परोपदेश आदिक वर्तमान भवमें न हों तथा हों इस अपेक्षासे दो भेद हैं—(१) निसर्गज सम्यग्दर्शन और (२) अधिगमज सम्यग्दर्शन।

सुरेन्द्रनागेंद्रनरेंद्रसंपदः सुखेन सर्वा लभते भ्रमन् भवे।
अशेषदुःखक्षयकारणं परं न दर्शनं पावनमश्नुते जनः ॥१५४॥

अशेषदुःखक्षयकारणभूत सम्यक्त्वकी दुर्लभता—इस संसारमें भ्रमण करता हुआ यह जीव बड़ी सुगमतासे देवेन्द्र, नागेन्द्र, नरेन्द्रकी सम्पत्तियोंको सबको पा लेता है। परन्तु इस पवित्र सम्यग्दर्शनसे जो कि समस्त दुःखोंके क्षयका कारण है उसे यह मनुष्य नहीं प्राप्त कर पाता। इस छंदमें सम्यग्दर्शनकी दुर्लभता बतायी है। सम्यग्दर्शनको हर एक कोई पुरुष नहीं प्राप्त कर पाता। जितना सुलभ संसारके बड़े-बड़े वैभवोंको मिलना है उसके मुकाबलेमें सम्यग्दर्शनका पाना अतीव दुर्लभ है। इस जीवने अनेक वैभव संपदायें अनेक भवोंमें पायी, पर इस जीवका कुछ पूरा न पड़ा। सम्यक्त्व एक ऐसा पवित्र विकास है कि जिसके होनेपर वह आत्मा नियमसे निर्वाण प्राप्त करेगा।

जनस्य यस्यास्ति विनिर्मला रुचिर्जिनेंद्रचंद्रप्रतिपादिते मते।
अनेकधर्मान्विततत्त्वसूचके किमस्ति नो तस्य समस्तविष्टये ॥१५५॥

सम्यग्दृष्टिकी सम्पन्नता—जो आत्मा सर्वज्ञ प्रणीत जीवादिक तत्त्वोंमें निर्दोष श्रद्धा रखता है उन आत्मावोंके लिए इस लोकमें कोई भी पदार्थ दुष्प्राप्य नहीं है। समस्त सांसारिक सुख मानो उनके हाथके खिलौने ही हैं। लोकमें जो भी बड़े-बड़े पद प्राप्त होते हैं चक्री, नारायण, बलभद्र, तीर्थंकर आदिक वे सब यद्यपि होते हैं पुण्योदयसे, लेकिन इस प्रकारका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुण्यबंध सम्यग्दृष्टि जीवके शुभ राग होनेपर होता है। तो सम्यक्त्व होनेपर ही ऐसा पुण्योदय संभव है, जिसके उदयमें लोकपूजित बड़े पदोंकी प्राप्ति होती है, इसीसे यहाँ यह कहा गया है कि जिन जीवोंको भगवत् प्रणीत तत्त्वोंमें निर्दोष श्रद्धा है उनके लिए लोकमें कोई भी पदार्थ दुर्लभ नहीं है। सत्य सुख चाहने वाले पुरुषोंका कर्तव्य मात्र एक ही है—अपने आत्माके सहज स्वरूपका अनुभव, दर्शन, प्रत्यय करना। एक इस आत्माकी सम्हाल होनेपर जो इस लोकमें अच्छा होना चाहिये वह सब विधान बनता चला जाता है। और जिस अंतस्तत्त्वका विकास होना चाहिए वह भी विधान इसके साथ बनता चला जाता है। तो उन्नतिका मूल हेतु सम्यक्त्वका प्रादुर्भाव है। उसकी प्राप्ति सहज आत्माके अनुभवसे बनती है। ऐसे अनुभव की पात्रता भेदविज्ञानसे बनती हैं। भेदविज्ञानका लाभ वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जाननेसे होता है। अतः प्राथमिक कर्तव्य यह है कि वस्तुका स्वरूप यथार्थ समझनेका पौरुष करें।

विधाय यो जैनमतस्य रोचनं मुहूर्तमप्येकमथो विमुंचति।
अनंतकालं भवदुःखसंगतिं न सोऽपि जीवो लभते कथंचन ॥१५६॥

सम्यक्त्वसे संसारपरिपाटीका प्रक्षय—जो जीव जिनेन्द्र प्रतिपादित तत्त्वोंमें एक क्षण भी श्रद्धान कर लेता है वह जीव भी अनन्तकाल तक संसारमें परिभ्रमण करनेकी परिपाटी को तोड़ डालता है। सम्यग्दर्शनकी स्थिति कमसे कम अन्तर्मुहूर्त है। उपशम सम्यक्त्व अंतर्मुहूर्तसे अधिक टिकता ही नही। क्षायोपशमिक सम्यक्त्व भी किसीके जघन्य अन्तर्मुहूर्त रह सकता है। तो यों कोई जीव मुहूर्तके भीतर ही सम्यग्दृष्टि बन जाय, पीछे मिथ्यादृष्टि हो जाय तो भी वह पुरुष अनन्तकाल तक तो संसारमें परिभ्रमण न करेगा। तो यों चाहे बहुत थोड़े समयके लिए ही सम्यक्त्व पाया गया है, पर सम्यग्दर्शनके प्रतापसे इतना कर्मभार दूर हो गया और ऐसा संस्कार अपेक्षाका टूट गया कि सम्यक्त्व मिटनेपर भी यदि वह संसारमें रहेगा भी तो अधिकसे अधिक कुछ कम अर्द्धपुद्गल परिवर्तन तक ही रह सकेगा, यह तो बहुत विरली बात कही है, पर निकट कालमें ही वह सम्यक्त्व पायगा और उच्च गुणस्थानमें चढ़ेगा और क्षपक श्रेणीमें प्रवेश कर कर्मोंका क्षय करता हुआ निर्वाण प्राप्त कर लेगा।

यथार्थतत्त्वं कथितं जिनेश्वरैः सुखावहं सर्वशरीरिणां सदा।
निधाय कर्णे विहितार्थनिश्चयो न भव्य जीवो वितनोति दुर्मतिं ॥१५७॥

प्रभुभाषित तत्त्वोंके अवधारणसे कुमतिका विनाश—जिनेन्द्रदेव द्वारा प्रतिपादित तत्त्वोंका जो भव्य जीव पूर्ण विश्वास रखता है वह कभी भी दुर्गतिको प्राप्त नहीं होता। सम्यग्दृष्टि जीव मरकर दुर्गतिमें नहीं जाता। एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, असंज्ञी पंचेन्द्रियमें तो उत्पन्न होता ही नहीं, तिर्यंच पञ्चेन्द्रियमें वही सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

होगा सो भी भोगभूमिमें, जिसने कि पहले तिर्यञ्चायु बांध ली हो पश्चात् सम्यक्त्व हुआ हो और वह सम्यक्त्वमें ही रहे तो वह तिर्यञ्च तो होगा, पर भोगभूमिया तिर्यञ्च होगा। सम्यग्दृष्टि जीव मनुष्यगतिमें उत्पन्न होगा तो संज्ञी पञ्चेन्द्रिय पर्याप्त पुरुषवेदी मनुष्य होगा। उसका स्त्रीमें और नपुंसकोंमें उत्पाद नहीं होता। देवगतिमें देवोंमें ही उत्पन्न होगा। सम्यक्त्वमें मरण कर जीवको नरकगतिमें न उत्पन्न होना चाहिए, पर किसी जीवने पहले नरकायु बांध ली हो पश्चात् सम्यक्त्व उत्पन्न हो तो वह सम्यक्त्वमें मरण कर अधिकसे अधिक पहले ही नरकमें और वह भी थोड़ी ही आयु लेकर उत्पन्न होता है। नरकोंमें जघन्य आयु ८४ हजार वर्षकी है। तो यों जीव सम्यग्दृष्टि होकर खोटी गतियोंमें उत्पन्न नहीं होता। सम्यग्दर्शनका ऐसा ही प्रभाव है कि वह वर्तमानमें भी खोटे मार्गमें न चलकर सुमार्गपर ही चलता है।

विरागसर्वज्ञपदांबुजद्वये यतौ निरस्ताखिलसंगसंगे न
वृषे च हिंसारहिते महाफले करोति हर्षं जिनवाक्यभावितः ॥१५८॥

सम्यग्दृष्टिके यथार्थ देव धर्म गुरुकी प्रतीति—सम्यग्दृष्टि जीव रागद्वेषादि सहित देवोंमें देवत्वकी बुद्धि नहीं रखता। जो रागद्वेष सहित है वह कभी देव हो ही नहीं सकता। प्रभु तो वह है कि जिसमें दोष एक भी न हो और गुण परिपूर्ण हों। तो दोषसहित आत्मा देव नहीं कहला सकता। सम्यग्दृष्टि जीव आरंभ परिग्रहसहित मनुष्योंमें गुरुत्वकी श्रद्धा नहीं रखता। जो आरंभसहित है वह गुरु नहीं कहला सकता है, क्योंकि गुरु आरंभ और परिग्रह से रहित होता, विषयोंके वश नहीं होता। जो ज्ञान ध्यान तपमें ही निरत रहा करता। इससे विपरीत लक्षण वाला मनुष्य गुरु नहीं कहलाता। सम्यग्दृष्टि जीव हिंसा आदिक कर्मों में धर्मपनेकी बुद्धि नहीं करता। जैसे कि लोकमें अनेक मोही पुरुष ममता आदिक करके देवी देवताके नामपर पशु आदिककी बलि देकर धर्मबुद्धि कर लेते हैं वह सम्यग्दृष्टि उन्हें पापरूप से ही निरखेगा। उनमें धर्मत्वकी बुद्धि नहीं करता। धर्म वही है जहाँ स्वकी भी दया है और परकी भी दया है। तो सम्यग्दृष्टि कुदेव, कुगुरु, कुधर्ममें श्रद्धा न रखकर यथार्थदेव, यथार्थ गुरु और यथार्थ धर्ममें ही श्रद्धा रखता है, जो रागद्वेषसे रहित है, सर्व पदार्थोंका ज्ञाता है वह देव कहलाता है। जो आरंभ परिग्रहसे रहित है, निरंतर आत्माकी धुनमें रहता है वह निर्ग्रन्थ मुनि गुरु कहलाता है। जो हिंसा आदिक पापोंसे रहित कर्तव्योंमें धर्म मानते है और उन्हीं की सेवा करते हैं, सम्यग्दृष्टिका ऐसा ही आचरण होता है।

भवांगभोगेष्वपि भंगुरात्मना जयत्सु नारीजनचित्तसंतति।
भावार्णवभ्रांतिविधानहेतुषु विरागभवं विदधाति सद्रुचिः ॥१५९॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

इन्द्रियभोगोंकी अहितकारिताका निर्णय — सम्यग्दृष्टि जीव इन्द्रियभोगोंको बुरा अहितकारी समझता है। ये भोग सांसारिक आपत्तियोंसे भरे हैं, विनाशीक हैं और नारीके मनोभावकी तरह चंचल हैं याने स्थिर नहीं हैं। ये भोग विनाशीक हैं। इन भोगोंको सम्यग्दृष्टि पुरुष बुरा ही मानता है। भोगोंमें लगाव, भोगोंका लाभ, इनमें उसकी रुचि नहीं रहती है। और इन भोगोंको ये संसारसमुद्रमें डुबाने वाले हैं ऐसा समझता है। सो भोगोंको अप्रशस्त जानकर उनसे विरक्त ही रहता है। इन्द्रिय भोगोंमें सम्यग्दृष्टि जीवको उपादेय बुद्धि कभी नहीं होती और इसी कारण उनमें लिप्त नहीं होते। ज्ञानी पुरुषको सहज आनन्दस्वरूप अपना ज्ञानमात्र आत्मा अनुभवमें आया है, दृष्टिमें आया है। सो अपने सहज स्वरूपके आलंबनसे जो आनन्द पाया है वह अनुपम है, अलौकिक है। ऐसा अद्भुत आनन्द पाने वाला भोगोंमें कैसे चित्त देगा? यद्यपि जीवकी आदत है आनन्द होनेकी, सो जिसको अपने आनन्दधामकी सुध नहीं है वह परपदार्थोंमें उपयोग लगाकर अपनी ही कल्पनासे सुख मानता है सो ये इन्द्रियविषय जिनका संयोग समझकर सुख मानता है वे बाह्य पदार्थ विनाशीक हैं, वे अपने आपके समयानुसार नष्ट हो जाते हैं। तो यह मोही जीव उनको वियुक्त नष्ट देखकर मनमें बड़ी वेदना मानता है। संसारमें यही हो रहा। किसका कुटुम्ब सदा रहने वाला है? जिनका संयोग हुआ है उनका वियोग नियमसे होगा। जो इन बाह्य पदार्थोंसे भिन्न परतत्त्व मानते हैं उनको तो कोई आकुलता नहीं होती इनके वियोग होनेपर, पर जिनको स्वरूपकी सही श्रद्धा नहीं है वे यही आस्था लिए हुए हैं कि धन-वैभव परिजनके संयोगसे ही मेरेको सुख है, आनन्द है और पवित्रता है, इस कारण वे पराधीन रहते हैं। सम्यग्दृष्टि जीव इन सब आपत्तियोंसे दूर है, वह तो निरन्तर इस धुनमें रहता है कि मेरा सहज आत्मा ही मेरेमें विराजे। मेरा उपयोग एक इस सहज आत्मस्वरूपकी सेवामें लगे, सम्यग्दृष्टिका यह ही प्रयत्न होता है। उसे विषय भोग खाना-पीना कदाचित् संयमके साधनभूत देहकी रक्षाके लिए करने पड़ते हैं, परन्तु उनमें न धुन है, न शक्ति है, उनसे उनकी प्रतीक्षा रहती है, समय पर जैसा हो गया सही मार्गानुसार वैसा हो गया, पर किसी भी भोगमें सम्यग्दृष्टिके अनुराग नहीं रहता।

कलत्रपुत्रादिनिमित्ततः क्वचिद्विनिंद्यरूपे विहितेपि कर्मणि।
इदं कृतं कर्म विनिंदितं सता मयेति भव्यश्चकितो विनिंदति ॥१६०॥
गलंति दोषाः कथिता कथंचन प्रतप्तलोहे पतितं यथा पयः।
नयेषु तेषां व्रतिनां स्वदूषणं निवेदयत्यात्महितोद्यतो जनः ॥१६१॥

ज्ञानी द्वारा चारित्रमोहवशापतित कुकृत्यपर आत्मनिन्दा—सम्यग्दृष्टि जीव अपने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवनमें कैसी चर्चासे रहता है इसका वर्णन चल रहा है। इन दो छंदोंमें कहा गया है कि यदि कदाचित् सम्यग्दृष्टि जोवसे स्त्री, पुत्र, भाई-बहिन, माँ-बाप आदिक कुटुंबी जनोंके निमित्तसे कोई बुरा काम बन जाय तो वह अपनेको बार-बार धिक्कारता है, उस काम करने की निन्दा करता है, और एक निन्दा ही नहीं, वह अपने कुकार्योंको गुरुजनोंके समक्ष निवेदन भी करता है, गृहस्थीमें रहकर वह स्वयं भी चारित्रमोहके उदयसे कोई कुकार्य बन जाय या परिजन आदिकके प्रसंगसे कोई खोटा काम करनेका प्रसंग आ जाय जिससे कि दूसरोंको कष्ट हुआ हो अथवा किसी पर अन्याय हो गया हो तो ऐसे कार्योंकी वह स्वयं निन्दा करता है और गुरुजनोंसे आलोचना करता है। वह ज्ञानी जानता है कि गुरु जनोंके समक्ष विनयपूर्वक दोष कहा जाय तो इस आलोचनासे भी समस्त दोष नष्ट हो जाते हैं। जैसे गर्म लोहेपर गिरी हुई जलकी बूंदें क्षणभरमें नष्ट हो जाती हैं इसी प्रकार गुरु जनोंके समक्ष विनयपूर्वक कहा गया दोष भी नष्ट हो जाता है। सो यह ज्ञानी जीव अपनेमें सावधानीका ही प्रयत्न करता है। पर गृहस्थीका प्रसंग है, इसको पंक बताया गया है। अनेक कार्य कुछ अन्याय आदिकके बन सकते हैं। तो जो खोटा कार्य बन गया हो उस कार्यकी यह निन्दा करता है और गुरु जनोंसे आलोचना करता है।

निमित्ततो भूतमनर्थकारणं न यस्य कोपादिचतुष्टयं स्थिति।
करोति रेखा पयसीव मानसे स शांतभावोऽस्ति विशुद्धदर्शनः ॥१६२॥

सम्यग्दृष्टिका शान्त भाव—महान् अनर्थके कारणभूत क्रोधादिक चार कषायोंके कारणसे कोई अनर्थके काम हो तो गए, परन्तु जैसे जलकी रेखा चिरकाल तक नहीं ठहरती, उसी प्रकार सम्यग्दृष्टिके चित्तमें बहुत देर तक वे कषाय वाली बातें नहीं ठहरतीं। ऐसा ही शान्त स्वभावी सम्यग्दृष्टि कहा जाता है। सम्यग्दृष्टिने मात्र अपने स्वभावकी आराधनाका ही जीवनका ध्येय बनाया है, इसके अतिरिक्त उसके अन्य कुछ भी ध्येय नही हैं, पर कर्मोदय है, पूर्वबद्ध कर्मविपाक आता है। क्रोध, मान, माया, लोभके प्रसंग बन जाते हैं और जब तक वह निम्नभूमिमें है तब तक कषायकी वेदना हो जाती है। तो ऐसे समयमें उससे कोई अनर्थ की बात बन जाय, ये कषायें बन जायें तो भी उसके चित्तमें ये कषायें देर तक नहीं ठहरतीं, इसका कारण यह है कि ज्ञानी तो अपनेमें शुद्ध चैतन्यस्वरूपकी भावना करता है, वही उसका ध्येय है, तो जो बाहरी विकार प्रसंग हैं वह स्थूल नहीं रह सकता है। यों विकार परिणाम उसके नष्ट हो जाया करते हैं। जैसे मान लो क्रोधवश किसीको कुछ कह डाला तो जैसे बालक कभी आपसमें भड़ने लगे तो थोड़ी ही देर बाद वे मिलकर खेलने लगते हैं, उन बच्चों के चित्तमें कषाय बैठकर नहीं रहता, ऐसे ही ज्ञानी पुरुषोंके चित्तमें कोई कषाय बैठाकर न

http://sahjanandvarnishastra.org/

रहेगा। किसी भी कषायवश किसीके प्रति कोई व्यवहार बन गया हो तो वह उस कषायको लिए हुए नहीं रहता। कषायका परिहार कर देता है, और जिसको कष्ट हुआ है उससे बड़े प्रेमपूर्वक मिलकर वह शल्यको दूर कर देता है।

विशुद्धभावेन विधूतदूषणं करोति भक्ति गुरुपंचके श्रुते।
श्रुतान्विते जैनगृहे जिनाकृतौ जिनेशतत्त्वैकरुचिः शरीरवान ॥१६३॥

सम्यग्दृष्टिके पञ्चपरमगुरुभक्तिका भाव—सम्यग्दृष्टि जीव पूज्य पुरुष और पूज्य जिनालय आदिकके भक्तिभावसे निर्दोष विधिसे पूजा भक्ति करते हैं, पर अन्य अल्पज्ञ पाखंडी जनोंके प्रति भक्ति नहीं करते। सम्यग्दृष्टिको परमात्मतत्त्वके प्रति दृढ़ श्रद्धा है कि जो निर्दोष और सर्वज्ञ हो और हितोपदेशी हो वह तो अरहंत भगवान है। प्रभु निर्दोष हैं, इस कारण उनके वचन कभी मिथ्या नहीं हो सकते, और सर्वज्ञ हैं, इसलिए उनके कोई बचन मिथ्या नहीं निकलते। जिनको संपूर्ण ज्ञान है उनके मिथ्यावचन होनेका प्रसंग ही नहीं है, सो यह प्राणिमात्रके हितके लिए इनकी दिव्यध्वनि होती है और उस उपदेशसे जगतके प्राणी लाभ लेते हैं। सिद्ध भगवान आत्माकी परम शुद्ध अवस्था है। जिसका आत्मा स्वयं अपने आप है उस ही प्रकार जो प्रसिद्ध हो गया, प्रकट हो गया। निर्लेप निरञ्जन चेतनामात्र जिनकी जाज्वल्यमान ज्योतिसे समस्त लोकालोक प्रतिभासित होता ऐसा शुद्ध द्रव्य, व्यञ्जन पर्याय और शुद्ध गुण व्यञ्जन पर्यायमें परिणम रहे आत्मा सिद्धप्रभु कहलाते हैं। आचार्य जो मुनिसंघके नायक हैं और परिग्रह भारसे रहित हैं, संगमें रहने वाले मुनिजन स्वयं आत्म-कल्याणके अभिलाषी हैं अतएव सहज है। ऐसी प्रकृति रहती है कि उनसे आचार्यपर कोई भार नहीं होता और आचार्य भी स्वयं आत्मकल्याणके मार्गमें रहनेके कारण अपनेको परिग्रह रहित, भाररहित ही अनुभव करते हैं यह उनकी परम करुणा है कि संगमें रहने वाले साधु जनोंको ययासमय उपदेश आदेश देकर उन्हें भी मोक्षमार्गमें लगाये रहते हैं। उपाध्याय परि-ग्रह और आरंभसे रहित हैं और मुनियोंको प्रतिदिन पढ़ाते रहते हैं, ऐसे ज्ञानी और दूसरोंको पढ़ानेका उपकार करने वाले उपाध्याय कहलाते हैं। ये भी साधु ही हैं। निर्ग्रन्थ परिग्रहरहित आत्मसाधनामें तत्पर रहा करते हैं और साधुजन जो आरंभ परिग्रहसे रहित हैं इनकी निर्दोष पूजा भक्तिमें सम्यग्दृष्टि निरत रहता है और सर्वज्ञके द्वारा कहे गए शास्त्रोंके प्रति अपूर्व भक्ति रहती है। उन शास्त्रोंका प्रकट करना, प्रचार करना, पढ़वाना और उपदेशादिकसे ज्ञान की प्रभावना कराना यह सब सम्यग्दृष्टि जीवोंकी चर्यामें बना रहता है। जैनमंदिर और जिनबिंबकी भी विशुद्ध भक्तिसे निर्दोष पूजा करते हैं, पर ज्ञानी पुरुष अन्य किसी भी अल्पज्ञ को आरंभ परिग्रहसहितको विषयकषायकी वाणीको कभी भी योग्य सही नहीं समझता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चतुर्विधे धर्मिजने जिनाश्रिते निरस्तमिथ्यात्वमलेऽतिपावने ।
करोति वात्सल्यमनर्थनाशनं सुदर्शनो गौरिव तर्णके नवे ॥१६४॥

सम्यग्दृष्टिका चतुर्विध संघके प्रति वात्सल्य—जिस प्रकार गाय अपने नये बच्चेमें प्रीति करती है और वह गाय अपने बच्चेका वियोग कभी नहीं चाहती है, ऐसे ही सम्यग्दृष्टि जीव भी अपने ही समान जो तत्त्वके श्रद्धानी हैं ऐसे श्रावक श्राविका और इस पंथमें बढ़े हुए मुनि अर्जिका आदिक संघमें निर्दोष प्रेम करता है और उस संघ समागमका वियोग नहीं चाहता। उनकी संगतिमें रहना ही हितकर समझता है। सम्यग्दृष्टिकी मूल चाह है कि आत्मश्रद्धान, आत्मज्ञान और आत्मरमणमें उसकी वृत्ति रहती है, ऐसी चाह करने वाला सम्यग्दृष्टि जीव ऐसी चाह वाले और इस ही में जो अग्रगामी हैं उन पुरुषोंके प्रति निश्चल प्रेम करेगा ही। लोकमें भी देखा जाता कि जो जिस कर्मका उद्देश्य रख रहा है उसीका उद्देश्य रखने वाले अन्य जनोंमें प्रीति हो जाती है। बालक भी जो सिनेमा जा रहा हो और अन्य बालक सहपाठी भी सिनेमा जा रहा हो तो उनमें परस्पर मैत्री भाव बन जाता है, प्रीति हो जाती है। तो यहाँ तो मोक्षमार्गका उद्देश्य है। जो लोकोत्तर लक्ष्य है इसका ही ध्येय सम्यग्दृष्टिने बनाया और इसी ध्येयमें चलने वाले अन्य श्रावक, श्राविका, मुनि, अर्जिका हैं तो उनके प्रति निश्छल वात्सल्य उमड़ जाता है, क्योंकि समय-समयपर जो बातें अपनेमें देखना चाहते हैं उसीके संकेत इन पूज्य संतोंमें प्राप्त होते हैं, इसलिए अनुरागकी वृद्धि करना स्वाभाविक ही बात है।

दुरंतरोगोपहतेषु संततं पुरार्जितैनोवशतः शरीरिषु ।
करोति सर्वेषु विशुद्धदर्शनो दयां परामस्तसमस्तदूषणः ॥१६५॥

सम्यग्दृष्टिका रोगी दुःखी जीवोंपर करुणाभाव—सम्यग्दृष्टि जीव समस्त संसारी जीवोंमें दयाभाव धारण करता है। संसारी जीवोको निरखकर वह समझ रहा है कि पहले अपने उपार्जित किए हुए दुष्कर्मोंके कारण यह अनेक रोगोंसे आक्रान्त है, अनेक कठिनाइयोंसे परेशान है तो ऐसे रोगाक्रान्त प्राणियोंमें सम्यग्दृष्टि जीव दयाभाव धारण करता है और केवल वचनमात्र ही दयाभाव नहीं, किन्तु अपने सामर्थ्य प्रमाण तनसे, मनसे, धनसे, वचनसे उन रोगाक्रान्त प्राणियोंकी सेवा करता है। इस प्रकार इस सम्यग्दृष्टि जीवको सभी प्राणियों के प्रति दयाभाव रहता है, उनमें किसी प्रकारका वह स्वार्थ नहीं चाहता। निश्छल सेवा करता, क्योंकि सम्यग्दृष्टि जीव जो सेवामें चल रहा है वह स्वरूपके नातेसे चल रहा है। कोई लौकिक छल कपटका संबंध वहाँ नहीं है। तो जैसे सम्यग्दृष्टि जीवोंका अन्नदान आदि में प्रेम है उसी प्रकार औषधिदानमें रोगियोंकी सेवामें भी उसकी प्रवृत्ति रहती है। वह सर्व

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अवस्थावोंमें सभी जीवोंमें उस शुद्ध सामान्य चैतन्यस्वरूपको निरखता है यह जीव स्वभावतः है तो कष्टरहित अविकार, पर उपाधिवश ऐसी ही वृत्ति हुई कि जिससे कर्मबन्ध हुए, और उन कर्मोंके उदयमें आज ऐसी रुग्ण दशा हुई है।

विशुद्धमेवंगुणमस्ति दर्शनं जनस्य यस्येह विमुक्तिकारणं।
व्रतं विनाप्युत्तमसंचितं सतां स तीर्थकृत्त्वं लभतेऽतिपावन ॥१६६॥

विशुद्ध सम्यक्त्वका लोकमें प्रताप—जिस जीवके विशुद्ध सम्यग्दर्शन है वह बिना व्रत, तप, उपवास किए भी सर्वोत्कृष्ट तीर्थंकर प्रकृतिका बंध कर लेता है। तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करने वाले अव्रती भी होते, श्रावक भी होते, मुनि भी होते। तीर्थंकर प्रकृति बंधमें जीवों के प्रति विशुद्ध भावना पड़ी हुई है, संसारके ये जीव सभी स्वरूपतः शुद्ध ज्ञानानन्दमय हैं अर्थात् स्वरूपमें विकार नहीं पड़ा है। ये कब अपने स्वरूपकी सुध लें और संसारके संकटोंसे मुक्ति पायें ऐसे जीवोंके प्रति सम्यग्दृष्टिकी भावना रहती है। यह सम्यग्दर्शन मुक्तिका कारणभूत है। अष्ट अंगसे सहित है और जीवोंका मूल आलंबन है। जिसके सम्यक्त्व हुआ उसके व्रत भो न हो तब भी वह तीर्थंकर प्रकृतिका बंध करता है और निकट कालमें ही निर्ग्रन्थ पद धारण कर तपश्चरण बलसे इस तीर्थंकर पदको साक्षात् प्राप्त कर लेता है। तीर्थंकर वास्तवमें १३वें गुणस्थानमें ही रहता है, इससे पहले वह परमार्थसे तीर्थंकर नहीं हैं, पर जो गर्भकल्याणक व जन्मकल्याणक आदिक मनाये जाते हैं सो तीर्थंकर प्रकृतिके उदयमें नहीं मनाये जाते, किन्तु जिस पुरुषने तीर्थंकर प्रकृतिका बंध किया है और तीर्थंकर होगा उसके इतना पुण्य विशेष है कि उस पुण्य विशेषके प्रतापसे कल्याणक आदिक उत्सव मनाये जाते हैं। तीर्थंकर अवस्थामें तो केवल दो ही कल्याणक मानते हैं—ज्ञानकल्याणक और निर्वाण कल्याणक। तीर्थंकरप्रकृतिका उदय १२वें गुणस्थान तक नहीं आता, किन्तु इस विशुद्ध तीर्थंकर प्रकृतिका बंध अव्रती सम्यग्दृष्टि भी कर लेता है। इस संसारमें जितनी भी विभूतियाँ हैं चाहे इन्द्रकी विभूति हो, चाहे धरणेन्द्रकी विभूति हो या चक्रवर्तीकी विभूति हो, संसारमें जितनी भी अलौकिक विभूतियाँ हैं उन सबमें महान् विभूति तीर्थंकरकी विभूति है। तीर्थंकर पदका प्राप्त करना बड़े ही उत्कृष्ट तपका फल है, परन्तु जो जीव विशुद्ध सम्यग्दृष्टि होता है उसे बिना व्रत आदिकके भी वह विभूति प्राप्त हो जाती है अर्थात् उसके लिए कोई विशेष प्रयत्न नहीं करना पड़ता। तो जब सम्यक्त्वके प्रतापसे तीर्थंकर जैसी विभूतियाँ प्राप्त हो सकें तो अन्य विभूतियोंकी तो बात ही क्या है? वह तो स्वयं ही अनायास मिल जातीं है। तो सम्यक्त्व जीवका उत्कृष्ट वैभव है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

दमो दया ध्यानमहिंसनं तपो जितेंद्रियत्वं विनयो नयस्तथा ।
ददाति नैतत्फलमंगधारिणां यदत्र सम्यक्त्वमनिंदितं धृतं ॥१६७॥

सम्यक्त्वकी दमदयातपसे भी अधिक फलदायिता—जो फल सम्यक्त्वके प्रतापसे प्राणियोंको प्राप्त होता है वह फल संसारमें अन्य बड़े-बड़े ध्यान आदिक कार्योंसे भी प्राप्त नहीं हो सकता। कोई पुरुष सम्यक्त्वसे हीन हो और क्षमाशील हो तो भी उसे वह पद प्राप्त नहीं हो सकता जो सम्यक्त्वका कारण हुआ करता है। दयालु पुरुष अनेक पाये जाते हैं। प्राणियोंपर दया करनेके लिए अपनी संपत्ति भी व्यय कर देता है, पर सम्यक्त्व नहीं है तो उनको वह फल प्राप्त नहीं हो सकता। जो सम्यक्त्वके होनेपर ही हुआ करता। ध्यान करने वाले अनेक लोग हैं, और ध्यानके बड़े योग आसन प्राणायाम आदिकमें निपुण लोग हैं, पर सम्यक्त्वहीन यदि हैं तो उनके ध्यानसे वह फल प्राप्त नहीं हो सकता, जो सम्यक्त्व होनेपर हुआ करता है। तपश्चरण करने वाले अनेक सन्यासी जन मिलते हैं और ऐसे-ऐसे दुर्धर तप करते हैं कि जो साधारण जनोंसे भी न किए जा सकें। जैसे जिन्दगीभर खड़े रहना, सोना भी [हो] तो पेड़के सहारे खड़े ही खड़े टिककर कुछ सो लेते। हाथको ऊँचा ही बनाये रहते, चाहे वह हाथ खूनसे रहित होकर अतीव दुर्बल हो जाय ऐसे-ऐसे अनेक तपश्चरण हैं जिसे बहुतसे संन्यासीजन करते हैं। करें, लेकिन यदि सम्यक्त्वहीन है तो उनको वह फल नहीं प्राप्त हो सकता जो सम्यग्दर्शनके होनेपर फल प्राप्त होता है।

सम्यक्त्वकी जितेन्द्रियता विनय आदिसे भी श्रेष्ठफलदायिता—जितेन्द्रियपना भी बहुतसे लोग आचरण करते हैं। जो नीरस ही खायें, शरीरका श्रृङ्गार भी न करें, न नहायें या अनेक प्रकारके विकट परिश्रम करें, पर इन्द्रियके विषयोंमें आसक्त न हों उन भोगोंकी ओर ध्यान भी न रखें ऐसे बहुतसे पुरुष मिलेंगे, पर उनके जितेन्द्रियपनाके कारण भले ही साधारणतया पुण्यबंध हो, पर वह विशिष्ट ध्यान नहीं बन पाता जो सम्यक्त्वके होनेपर बँधा करता है। विनयशील भी पुरुष अनेक मिलते हैं, बड़ी विनम्रता रखते हैं। वचनोंमें नम्रता, शरीरसे नम्रता, मन भी नम्र रखें, ऐसे विनयशील पुरुष भी सम्यक्त्वरहित है तो वह फल नहीं प्राप्त कर सकते जो सम्यक्त्वके होनेपर हुआ करता है। क्षमा आदिक धारण करनेसे तो साक्षात् स्वर्गादिक सांसारिक अनित्य सुखोंकी प्राप्ति हो जायगी, सो यह अनादिसे अनेकों को होती चली आयी, पर शुद्ध सम्यक्त्व धारण करनेसे पारमार्थिक अविनाशी मोक्षसुख प्राप्त होता है। वास्तविक आनन्द मुक्तिका ही आनन्द है, जहाँ केवल आत्माश्रयसे आनन्द झड़ रहा है, पराधीनताका रंच भी नाम नहीं है, जिसका ज्ञान सर्वज्ञ होता हुआ भी निश्चल स्थिर रहा करता है। जहाँ कोई शारीरिक व्याधि नहीं, शरीर नहीं, कर्म नहीं, केवल आत्म-

Version 1

मग्नता है तो ऐसा आनन्द सम्यक्त्वके प्रतापसे प्राप्त होता है। वह आनन्द अन्य गुण विकास से नहीं हो पाता। इस कारण अन्य शेष समस्त गुण मिलकर भी इस शुद्ध सम्यग्दर्शनकी बराबरी नहीं कर सकते। जीवोंका कल्याणरूप कोई प्रयत्न है तो वह है सम्यग्दर्शन। आगे जितनी भी चारित्ररूप प्रगति होती है उस सबका आधार है सम्यग्दर्शन। सम्यक्त्वके आधार पर ही चारित्रकी प्रगति बनती है। जहाँ कोई अपना उद्देश्य ही न बना पाये, फिर उपयोग को कहाँ रमाओगे? उपयोग वहाँ रमता है जिस प्रकारकी जीवोंको श्रद्धा होती है। जिनको भोगसाधनोंमें सुख पानेकी श्रद्धा है उनका उपयोग भोगसाधनोंमें रमता है। सम्यग्दृष्टिका श्रद्धान केवल आत्मस्वरूप ही हितमय है, आनन्दमय है ऐसा बना रहता है। तो उनका उपयोग उस ही आत्मस्वरूपमें मग्न रहता है। तो सम्यग्दर्शनमें जो आनन्द है वह तत्काल भी आनन्द है और इसके प्रतापसे कर्मोंका विध्वंस होकर सम्यक्चारित्रकी पूर्ण प्राप्ति होकर जो एक शुद्ध शाश्वत निरञ्जन सिद्ध अवस्था प्रकट होती है, फिर तो यह अनन्तकाल तकके लिए धर्मादिक द्रव्योंकी तरह शुद्ध पवित्र रहेगा। तो जीवोंका परम कल्याण हो उसका मूल साधन है सम्यग्दर्शन।

वरं निवासो नरकेऽपि देहिनां विशुद्ध सम्यक्त्वविभूषितात्मनां।
दुरंतमिथ्यात्वविषोपभोगिनां न देवलोके वसेतिर्विराजने ॥१६८॥

मिथ्यात्ववासित जीवके देवलोकमें निवासकी अपेक्षा सम्यक्त्वसहित जीवके नरकवासकी भी श्रेष्ठता—जिन जीवोंको शुद्ध सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है ऐसे विशुद्ध सम्यक्त्वसे विभूषित आत्माओंका नरकमें भी निवास हो तो भी वह अच्छा है, परन्तु जिनका परिणाम खोटा है ऐसे मिथ्यात्वविष भोगने वाले जीवोंका स्वर्गलोकमें भी निवास हो तो भी उत्तम नहीं है। सम्यग्दृष्टि जीव नरकोंमें भी पाये जाते हैं। कोई तो नरकोंमें सम्यक्त्व उत्पन्न कर लेते हैं और पहले नरकमें क्षायिक सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वके साथ उत्पन्न हो लेते हैं तो नरकमें सम्यग्दृष्टि जीव पाये जाते हैं, सो भले ही नरकमें उनका निवास है, लेकिन सम्यक्त्वकी ऐसी महिमा है कि जिसके प्रसादसे वह अन्तः व्याकुल नहीं रहता, किन्तु जो मिथ्यादृष्टि जीव हैं वे स्वर्गमें भी रहते, किन्तु ज्ञानप्रकाश न मिलनेके कारण उनका आत्मा बेचैन रहता है, तृष्णासे व्याकुल रहता है। तो सम्यग्दर्शनका ऐसा उत्कृष्ट माहात्म्य है कि जिसके कारण यह जीव संतुष्ट हो जाता है। इस सहज आत्मस्वरूपका अवलोकन करने वाले सहज आनन्दसे तृप्त हो जाते हैं, किन्तु सांसारिक विभूति भी विशेष मिली हो और वह मिथ्यादृष्टि हो तो वह तृष्णासे व्याकुल बना रहता है। तो सम्यक्त्व ही श्रेष्ठ चीज है और यही वास्तविक वैभव है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

अधस्तनश्वभ्रभुवो न याति षट् न सर्वनारीषु न संज्ञितोऽन्यतः ।
न जायते व्यंतरदेवजातिषु न भवनज्योतिषिकेषु सद्रुचिः ।।१६९।।

सम्यग्दृष्टिके दुर्गतिमें अनुत्पादका विवरण—जिन आत्मावोंको सम्यक्त्व उत्पन्न हो गया है वे पुरुष नीचेके ६ नरकोंमें उत्पन्न नहीं हो सकते । सम्यक्त्वमें मरण करने वाले जीव की बात कही जा रही है । जो सम्यक्त्वसहित मरेगा वह प्रथम नरकको छोड़कर शेष नरकों में उत्पन्न नहीं हो सकता, सो प्रथम नरकमें भी वह जीव उत्पन्न होगा जिस मनुष्यने पहले नरकायुका बंध किया हो पश्चात् विधिपूर्वक उसके क्षायिक सम्यक्त्व बन जाय । तो क्षायिक सम्यक्त्व तो कभी मिटता नहीं । और जो आयु बाँध ली वह भी टलती नहीं याने जिस भव की आयु बांधी है उस भवमें जाना ही पड़ता है । तो वह जीव पहले नरकमें जायगा, नीचे के नरकोंमें न जायगा । सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वमें मरण कर किसी भी स्त्री जातिमें उत्पन्न नहीं हो सकता । सम्यग्दृष्टि जीव सम्यक्त्वमें मरण कर केवल संज्ञी पंचेन्द्रियमें ही उत्पन्न होगा । असंज्ञी तक उत्पन्न न होगा । एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय व असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता । भवनवासी व्यन्तर व ज्योतिषी इन तीन प्रकारके देवोंमें भी सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता । संसारमें चार प्रकारकी जीवोंकी विभाव द्रव्य व्यञ्जन पर्यायें हैं—मनुष्य, तिर्यञ्च नारकी और देव । इन ही के अनेक उत्तरोत्तर भेद हैं । सो मनुष्योंमें स्त्री जाति और नपुंसकोंमें सम्यग्दृष्टि जीव उत्पन्न नहीं होता । पर्याप्त मनुष्य पुरुष ही होगा । तिर्यंचोंमें एकेन्द्रिय, दोइन्द्रिय, तीनइन्द्रिय, चारइन्द्रिय, असंज्ञी पञ्चेन्द्रियमें उत्पन्न न होगा । पर्याप्त संज्ञी पंचेन्द्रिय तिर्यंचोंमें ही वह उत्पन्न होगा जिसने पहले तिर्यंचायु बाँध ली हो, सो वह भोगभूमिमें उत्पन्न होगा । हाँ कोई नारकियोंमें केवल प्रथम नरकमें ही उत्पन्न हो सकेगा । सो वह भी जिसने पहले नरकायु बांधी हो, पश्चात् क्षायिक सम्यक्त्व उत्पन्न किया हो वह देवोंमें भवनत्रिकमें उत्पन्न न होगा और स्त्री जातिमें तो कहीं भी उत्पन्न न होगा, यह सब सम्यक्त्वका प्रताप है ।

न बांधवा नो सुहृदो न बल्लमा न देहजा नो धनधान्यसंचयः ।
तथा हिताः संति शरीरिणां जने यथात्र सम्यक्त्वमदूषितं हितं ।।१७०।।

निर्दोष सम्यक्त्वकी हितकारिता—इस अनादि अनन्त संसारमें जितना हितकारी जीवोंका शुद्ध सम्यग्दर्शन है उतना हितकारी अन्य कुछ भी नहीं है । दूसरे जीव मेरा क्या सुधार कर सकेंगे । समर्थ ही नहीं हैं । एक द्रव्य दूसरे द्रव्यकी परिणति नहीं कर सकता । हम ही अपनी अशुद्ध भावनाको छोड़कर शुद्ध भावनामें आयें, मिथ्यात्वको तजकर सम्यक्त्वमें आयें तो हम अपना स्वयं कल्याण कर पायेंगे । तो इस जीवका हितकारी केवल सम्यक्त्वभाव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

है । न बंधु, न मित्र, न वल्लभा, न पुत्र, न धन धान्य कोई भी इस जीवका हितकारी नहीं है । इस कारण यदि अपने आपपर दया हो तो निर्दोष सम्यक्त्व धारण करना चाहिये । यदि चित्तमें ठन जाय यह बात कि मुझको लोकके अन्य प्रलोभनोंसे कोई प्रयोजन नहीं, अणुमात्र से भी कोई प्रयोजन नहीं । मैं तो संसारसंकटोंसे छूटनेका उपाय चाहता हूं । ऐसा दिलमें ठन जाय तो उसको सम्यक्त्व उत्पन्न होगा और किसी भी प्रकारसे लालच, परवस्तुकी तृष्णा रखेगा तो उसको सम्यक्त्व न उत्पन्न होगा ।

तनोति धर्मं, विधुनोति पातकं, ददाति सौख्यं, विधुनोति बाधकं ।
चिनोति मुक्ति, विनिहंति संसृतिं, जनस्य सम्यक्त्वमनिंदितं धृतं ॥१७१॥

सम्यग्दर्शनधारीकी धर्मविस्तारकता व पापविध्वंसकता—जिस जीवने निर्दोष सम्यक्त्व पा लिया है वह जीव पापभावका विध्वंस कर देता है । पापकर्म उनकी दृष्टिसे न कट पायेंगे, पापकर्म कोई ग्रहण भी नहीं कर सकता, मरोड़ नहीं सकता, नष्ट क्या किया जायगा ? पर जीव यदि अपने भाव शुद्ध बना ले तो कर्म अपने आप दूर हो जाते हैं । कर्मोंके दूर करने का दूसरा कोई उपाय नहीं है । अपने आपको संभाल करें, अपनेको सहज चैतन्यस्वरूप अनुभवें, इस प्रकार स्वरूपमें मग्न हों तो कर्म अपने आप ही झड़ जाते हैं । तो सम्यक्त्वभाव ऐसा उत्कृष्ट भाव है कि जिसके होते ही पापकर्म ध्वस्त होने लगते हैं । जिस जीवने सम्यक्त्व धारण किया वह धर्मका विस्तार करता है । धर्म बताया गया है चारित्र को, चारित्तं खलु धम्मो, किन्तु सम्यक्त्वको कहा है धर्मकी जड़ । दंसण मूलो धम्मो, सम्यक्त्व जिसकी जड़ है वह धर्म है । जैसे—पक्की नींव किए बिना महल नहीं उठाया जा सकता, और कोई उठाये तो वह धंस जायगा । तो ऐसे ही निर्दोष सम्यक्त्व पाये बिना कोई चारित्र में न बढ़ सकेगा । कोई बनावटी चारित्र पाले तो उससे कहीं कर्म नहीं कटते । कर्म कटेंगे निश्चय चारित्र द्वारा । तो सम्यक्त्वभाव जिसके हुआ वह धर्मका विस्तार करता है अर्थात् चारित्र की प्रगति करता है ।

सम्यक्त्वकी सौख्यकारकता व बाधापहारकता—सम्यक्त्व भाव ही सौख्य प्रदान करता है । जब तक भ्रम था तब तक यह जीव कष्टमें रहा । जहां देहको माना कि यह मैं हूं तो देह तो वियुक्त होगा ही । जब मरण काल आता है तो विपरीत श्रद्धान वाले जीव बड़े दुःखी होते हैं । भ्रम निकल जानेपर फिर उनके दुःख नहीं रहता । जैसे कोई पड़ी तो हो रस्सी और कुछ अंधेरे उजेलेमें समझ लिया कि यह तो सांप है, तो वह बड़ा दुःखी होता है । और यदि उसका यह भ्रम दूर हो जाय, उसके पास जाकर, उसे छूकर, हाथसे उठाकर जान ले कि अरे यह तो कोरी रस्सी है, तो फिर उसको कोई भय नहीं रहता । तो ऐसे ही

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

संसारके इन समागमोंके प्रति जब तक भ्रम बना है कि ये मेरे हैं, ये मेरेको सुखदायी हैं, मेरे हितू हैं तब तक यह जीव कष्ट पाता है। क्योंकि जैसा सोचा वैसा परपदार्थोंमें होता नहीं और यह मानता है परपदार्थ पर अपना अधिकार तो यह दुःखी होता है। और जहाँ वस्तु-स्वातंत्र्यका परिचय हुआ वहाँ दुःख नहीं होता। तो सम्यक्त्व भाव सुख प्रदान करने वाला है। संसारकी जितनी भी बाधायें हैं उन सब बाधाओंको सम्यक्त्वभाव नष्ट कर देता है। बाधायें क्या हैं? परपदार्थोंसे स्नेह जो रखा है। उनकी शंका, उनका उपकार उनके मनके अनुसार न मिलना, ऐसी घटनायें होती हैं तो उन्हें यह जीव बाधा समझता है। बाधा किस बात की? जीवका स्वरूप अभेद्य है। इसमें किसी परका प्रवेश नहीं है। तो स्वयंमें तो कोई भी परपदार्थ कुछ भी गड़बड़ नहीं कर पाता है, फिर बाधा किस बात की? सम्यक्त्वका प्रकाश जिसके आ गया उसके बाधा नहीं रहती। मानें तो बाधा न मानें तो कुछ बाधा नहीं।

सम्यक्त्वके द्वारा संसारसे छुटकारा—सम्यक्त्व भाव संसारसे मुक्तिको दिलाता है। सम्यक्त्व ही तो वह जड़ है कि जिसके आधारपर चारित्रकी प्रगति हो तो कर्मोंका ध्वंस होता है और मोक्षका लाभ होता है। मोक्ष मायने है खालिस आत्माका रह जाना। भले ही आज आत्मा, कर्म और शरीर ये एक जगह पिण्डोले रूप बन रहे हैं लेकिन सत्ता तो अलग-अलग है। तो जैसी मेरी सत्ता है उस सत्ता रूप ही अपने को निरखें तो यह उपाय है शुद्ध होने का। जब मुक्तिमें अकेला रहना है तो यहाँ ही अपनेको अकेला देखिये ना तो अपने एकत्वका यह अभ्यास मोक्षलाभका कारण बनेगा। सम्यक्त्वभाव संसार प्रक्रियासे जन्म मरण से दूर कर देता है। संसार मायने जन्म लेना, मरण करना और जीवनका इष्टवियोग अनिष्ट संयोग आदिक दुःखोंसे दुःखी होना इसीका नाम संसार है। सो जब सम्यक्त्वभाव उत्पन्न हो गया तब परभावोंमें इसको अहंकार नहीं रहता। सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें ही आत्मत्वका अनुभव रहता है। सो जिस जीवके यह उत्कृष्ट भाव निर्दोष सम्यक्त्व प्राप्त हुआ है उसके सर्व श्रेय बन जाता है। तो सर्व अकल्याण उसका दूर हो जाता है।

मनोहरं सौख्यकरं शरीरिणां तदस्ति लोके सकले न किंचन।
यदत्र सम्यक्त्वधनस्य दुर्लभमिति प्रचिंत्यात्र भवंतु तत्पराः ॥१७२॥

सम्यक्त्वकी लोकोत्तरसौख्यकरता—तीन लोकमें ऐसा कोई सुख नहीं है जो सम्य-क्त्व धनके प्रतापसे प्राप्त न हो सके। लोकमें जितने बड़े-बड़े पदवियोंके सुख माने जाते हैं उन सुखोंके पाने लायक पुण्यका बंध सम्यग्दृष्टिके हो पाता है। तीर्थंकर हो सके, चक्री हो सके ऐसा पुण्य मिथ्यादृष्टिके नहीं बन पाता। बनता है रागभावसे, मगर सम्यक्त्वसे पुण्य नहीं बँधता। सम्यक्त्व तो संवर और निर्जराका कारण है, पर सम्यक्त्व होते हुए प्रभुभक्ति

http://sahjanandvarnishastra.org/

आदिक शुभ भावनायें हों तो उसे उत्कृष्ट सुख मिलता है और फिर आत्मानुभवसे बढ़कर आनन्द कहाँ रखा है? वह सम्यक्त्वसे ही प्राप्त होता है। तो सम्यक्त्वके प्रभावसे ही उत्तम आनन्द प्राप्त होता है। इस कारण जिनको सुखी होने की चाह है उनको सम्यक्त्व धारण करना चाहिए। सम्यक्त्व लाभ होने से हित अहित का विचार जगने लगेगा। ये रागद्वेष विकल्प मेरे लिए अहित है और यह सहज शुद्ध चैतन्यस्वरूप की उपासना मेरे लिए हितकर है। ऐसा हित अहितका विवेक करना और उसका पालन, अहितका छोड़ना, हितका ग्रहण करना यह सम्यक्त्व होने पर होता है। तो जहाँ हेयका त्याग किया, उपादेयका ग्रहण किया तो इससे बढ़कर आनन्द और कहाँ मिलेगा? तो सम्यक्त्वकी कृपासे ऊँचासे ऊँचा आनन्द सिद्ध होता है और यहाँ तक कि सम्यक्त्व मोक्षके आनन्दको प्रदान करता है। तो संसारमें कोई भी वस्तु दुर्लभ नहीं है। एक सम्यत्वभाव दुर्लभ है। अपने आपके सहज स्वरूपको पहचानें, जानें, यह ही बात दुर्लभ है जो कि सुगम होना चाहिए। जिस जीवका भवितव्य सुधरनेको है उसे अपने स्वरूपकी प्राप्ति हो जाती है।

विहाय दैवीं गतिमर्चितां सतां व्रजंति नान्यत्र विशुद्धदर्शनाः।
ततश्च्युताश्चक्रधरादिमानवा भवंति भव्या भवभीरवो भुवि ॥१७३॥

सम्यग्दृष्टिका सुगति लाभ—शुद्ध सम्यग्दृष्टि जीव जिसको संसार शरीर भोगोंसे सहज वैराग्य बना है वह मरकर अच्छी जाति के देवोंमें ही उत्पन्न होता है। या तो स्वर्गों में कल्पवासी देवं बनेगा या स्वर्गों से ऊपर के विमानोंमें कल्पातीत देव बनेगा। अन्य प्रकार के खोटे देव नहीं बन सकता और वह ऐसे उत्तम देव देवेन्द्रके भवों को पाकर उस जीवनमें भी धर्मचर्चासे अपने को सुवासित रखेगा और आयुके क्षयके समय विशुद्ध परिणाम रहेगा जिससे इस मध्यलोक में वह श्रेष्ठ मनुष्य बनेगा जिनको लोकोत्तम सुख प्राप्त होता है उन्होंने पूर्व भव में सम्यक्त्वके साथ धर्मसाधना की थो वहाँ भक्ति आदिकके कारण ऐसा ही पुण्यबंध हुआ था उसका ही यह फल है कि अच्छे फल भोग रहे हैं। लेकिन ये ज्ञानी जीव संसारके अनेक सुखोंको पाकर भी उनमें लीन नहीं होते। उनसे विरक्त ही रहते हैं तो मनुष्यका, जीवका जितना भी जो कुछ कल्याण है वह सम्यक्त्व धारण करने से ही प्राप्त होगा और सम्यक्त्व अपने आपके मननसे प्राप्त होता है। इसमें कोई कठिनाई और कोई बाधा नहीं आती। स्वयं अपनेमें अपनेको सहज स्वरूपमात्र अनुभव करे कि मैं तो यह अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मा हूँ। स्वयं आनन्दस्वरूप हूँ। यहाँ कोई कष्ट नहीं। ऐसा अन्तस्तत्त्व को निहारता रहे तो अलौकिक आनन्द प्राप्त होता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है। सो सब कल्याण सम्यक्त्व का प्रताप जानकर तत्त्वाभ्यास द्वारा आत्ममनन द्वारा सम्यक्त्व को पायें और इस सम्यक्त्वको स्थिर बनाये रहें, यह ही इस मनुष्यजीवनका सर्वश्रेष्ठ कार्य है।

प्रमाणसिद्धाः कथिता जिनेशिना व्ययोद्भव ध्रौव्ययुता विमोहिता।
समस्तभावा वितथा न वेति यः करोति शंकां स निहंति दर्शनं ॥१७४॥

सम्यग्दृष्टिके जिनोदित वचनोंमें व वस्तुस्वरूप में शंकाका अभाव—जिनेन्द्रदेवने वस्तुका स्वरूप उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्त बताया है जो वस्तुमें स्वभावतः सुक्तक्षयातः है ही क्योंकि प्रत्येक वस्तु नवीन पर्यायोंरूपसे उत्पन्न होती है, पुरानी पर्यायोंके रूपसे विलीन होती है और वह सद्भूत वस्तु शाश्वत रहती है। ऐसा ही वस्तुस्वरूप प्रमाण और युक्तियों से सिद्ध है। सो जो मोही पुरुष ऐसे वस्तुस्वरूप को वस्तुमें रहने वाले समस्त भावोंको नहीं जानता है अथवा उनके स्वरूपमें शंका करता है कि यह सत्य है अथवा नहीं है या इस प्रकार है, वह अपने विशुद्ध सम्यक्त्वका नाश करता है। जिसको वस्तुके मूल स्वरूपकी श्रद्धा ही नही वह न तो अपने आपको पहिचान सकता है और न मोक्ष मार्ग में गति कर सकता है। तथ्य यह है कि जीव हूँ, सदा रहने वाला हूँ, प्रतिक्षण नवीन-नवीन पर्यायों को उत्पन्न करता हूँ। आज तक उपाधिके सम्पर्कसे मैं विभावरूप परिणमता आया हूँ। आश्रयभूत पदार्थोंका आलम्बन लेकर विकार व्यक्त करता आया हूँ और यदि मैं अपने स्वरूपको सम्हालूं तो ये विकार भी दूर होंगे और आत्मामें शुद्धि प्रकट होगी। उपाधि दूर होनेका उपाय भी यही है कि अपने आपके सहज स्वरूपकी श्रद्धा करना और उस ही में रमना। तो जिस पुरुषको वस्तुके उत्पाद व्यय ध्रौव्य स्वरूपकी श्रद्धा नहीं है वह आत्मकल्याण नहीं कर सकता।

सुरासुराणामथ चक्रधारिणां निरीक्ष्य लक्ष्मीममलां मनोहरां।
अनेनशीलेन भवेन्ममेति यस्तनोति कांक्षां स धुनोति सद्रुचिं ॥१७५॥

सम्यग्दृष्टिके लोकवैभवकी कांक्षाका अभाव—पहले छंद में शंका नामक दोषकी दृष्टिकी प्रधानतासे वर्णन किया गया था, अब यहाँ कांक्षा अतीचार की प्रधानतासे वर्णन किया जा रहा है। यदि कोई सम्यग्दृष्टि पुरुष कभी शिथिलता में आकर जगतकी विभूतियोंको देखकर उनकी इच्छा करे तो वह अपने सम्यक्त्वको नष्ट कर सकता है। कभी देवों की विभूति देखे या सुन ले, असुर या चक्रवर्तीकी विभूतिको देखे या सुनें, उसे जानकर मनमें यदि यह इच्छा उत्पन्न हो कि मेरे भी ऐसी ही विभूति हो, मैं भी ऐसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सम्पत्ति वाला बनूं तो यह भाव आते ही वहाँ सम्यक्त्व कहाँ रहा ? सम्यक्त्वमें तो केवल आत्मस्वरूपकी भावना रहती है और कदाचित् इच्छा रूपकी बात कहे तो मोक्षकी इच्छा हो सकती है, पर संसारकी विभूतियोंकी इच्छा करनेके मायने यह हैं कि उसको संसार रुच गया है। संसार की विभूतिकी इच्छा कर रहा है, तो ऐसी स्थितिमें सम्यक्त्व मलिन होता है और मलिन होकर नष्ट भी हो जाता है, तो सम्यग्दृष्टि पुरुष कभी भी जगतकी विभूतिकी इच्छा नहीं करता। मेरा इस जगतमें नाम हो, जगतका ऐसा वैभव प्राप्त हो ऐसी कुछ भी चाह नहीं करता, सम्यग्दृष्टिकी धुन तो केवल सहज आत्मस्वरूप के अवलोकन की है। कदाचित् ज्ञानी गृहस्थ दुकान पर जाये तो इच्छा तो करेगा ही कि मेरा माल बिके, इस भाव में बिके, तो ऐसी इच्छा करने मात्रसे सम्यक्त्वका घात नहीं होता, पर निदान रूपमें इच्छा बने अथवा धर्मकार्य करके उसके एवज में लौकिक बात की इच्छा करे तो वहाँ सम्यक्त्वका घात हो जाता है।

मलेन दिग्धानवलोक्य संयतान्प्रपीडितान्वा तपसा महीयसा।
नरश्चिकित्सां विदधाति वः परां निहंति सम्यक्त्व मसावचेतनः ॥१७६॥

सम्यग्दृष्टिके विचिकित्साका अभाव—सम्यग्दृष्टि पुरुष तपस्वियोंके मलिन शरीर को देखकर या रोगादिक से पीड़ित शरीरको देखकर उसमें घृणा नहीं करता। वह जानता है कि तपस्वियों का शरीर रत्नत्रयधारी आत्माके सम्पर्क से पवित्र है मंगल है, तो वह रत्नत्रयसे पवित्र शरीरमें घृणा कैसे कर सकेगा ? जिसको अपने पुत्रके गुणोंसे प्रेम है या पुत्रसे ही प्रेम है वह पुत्र यदि मूत्र विष्टा करदे तो माँ उससे कभी ग्लानि नहीं करती, ऐसे ही समझिये कि सम्यग्दृष्टि जीवको रत्नत्रयधारी पुरुषोंके प्रति धर्मानुराग है, उसमें रत्नत्रयके भावोंका निरीक्षण है तो ऐसे आत्मासे अधिष्ठित शरीरको कभी रुग्ण मलयुक्त देखे तो सेवा करते हुए में उन्हें रंच घृणा नहीं होती। यह रत्नत्रय से पवित्र श्रमणका शरीर स्नान आदिकसे रहित है इसलिये मल भी चढ़ जाता है, श्रेष्ठ तपसे संयुक्त है इससे स्यामवर्ण हो जाना आदिक बातें भी हो जाती हैं। दुर्बल शरीर हो जाता है, हड्डियाँ भी निकल आतीं, ऐसा जीर्ण शरीर बन सकता है, पर सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र से उसकी कान्ति बढ़ी हुई रहती है। उन श्रमणोंका आत्मबल सहज बढ़ता रहता है, तो ऐसे तपस्वीजनोंके मलिन व रोगादिकसे पीड़ित शरीरको देखकर यदि कोई पुरुष घृणा करता है तो वह मूढ़ पुरुष अपने सम्यग्दर्शन में कलंक लगाता है और ऐसे कलंक के होते रहने से सम्यक्त्वका घात हो जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

विलोक्य रौद्रथतिनोऽन्यलिंगिनः प्रकुर्वतः कंदफलाशनादिकं ।
इमेऽपि कर्मक्षयकारकव्रता विचिन्वतेति प्रतिहन्यते रुचिः ॥१७७ ॥

मूढदृष्टित्वसे सम्यक्त्वका क्षय—यदि सम्यग्दृष्टि पुरुष शिथिलतावश अनेक प्रकार के आचरण रखनेवाले पाखण्डी जनोंको देखकर यह श्रद्धा कर ले कि ये भी सही हैं और अपने कर्मोंका क्षय कर रहे हैं, इनके इस तप, व्रत तपश्चरणसे भी कर्मोंका नाश हो जाता है, ऐसी श्रद्धा जगने पर बुद्धि होने पर वह अपने सम्यग्दर्शनको दूषित कर लेता है। कभी-कभी बड़ ऊंचे बाह्य तपश्चरणके धारी सन्यासी देखने को मिलते हैं। कोई पंचाग्नि तपको तप रहा है, गर्मी के दिनों में चारों तरफ अग्नि सुलगा रखी है तपश्चरण के वास्ते और ऊपरसे सूर्यका आताप है तो यों पाँचों ओर से तपन मिल रहा है, ऐसे तपन में तपने वाले पंचाग्नि तपके तपने वाले कहे जाते हैं, उसमें कष्ट तो प्रत्यक्ष दिख ही रहा है। उसे देखकर प्रशंसा करना कि यह भी बड़ धर्मात्मा है, तपस्वी हैं, कर्मोंका क्षय कर रहे हैं, तो इसमें सम्यग्दर्शनको दोष आता है क्योंकि सम्यग्दर्शन ज्ञान चारित्र ही मोक्ष मार्ग है और उस रत्नत्रय के अनुसार ही क्रिया बने तो वह व्यवहार धर्म में माना गया है, पंचाग्नि तपमें प्रथम तो अग्निका आरम्भ किया, चारों ओर अग्नि जल रही है और अग्नि जलने पर अनेक जीवोंका घात भी सम्भव है और यह जान बूझकर आरम्भ करे तो वह रत्नत्रयके मार्गसे विरुद्ध बात है। फिर भी उसके प्रति यह भाव रहना कि इससे कर्मोंका क्षय होता है तो वह सम्यक्त्वको दूषित कर रहा है, अनेक संन्यासीजन जगलमें रहते हैं और कंदमूल फल खाकर अपना पेट भरते हैं, यह देखकर भी प्रशंसाका भाव किसीके हो सकता है कि देखो ये कितना निरपेक्ष है, किसी मनुष्य से मतलब भी नहीं रखते हैं, जगलमें ही रहते हैं और कंदमूल फल खाकर अपना गुजारा कर लेते हैं यह बात तो जानी पर यह ध्यानमें न आया कि कितना स्वच्छंद वृत्ति है, रसना इन्द्रियका विषय स्वादने के लिये उनके कोई बाधा नहीं है। कैसा ही खाय, फलके तोड़ने में आरम्भ, कंदमूल के खोदनेमें आरम्भ, ऐसे षट्कायकी हिंसा भी चल रही है। इस ओर ध्यान नहीं किन्तु बाहरी निरपेक्षता देखकर किसी मनुष्य से सम्बन्ध नहीं है इतना ही मात्र देखकर प्रशंसा करना यह भी कर्मक्षयका मार्ग है ऐसी बुद्धि करना सम्यक्त्व में कलंक लगाना है। अनेक पाखण्डीजन चिलम, तम्बाकू, सुलफा, भाँग आदिक मादक चीजें पीते हैं और उसमें धर्मकी मुद्रा दिखाते हैं। ऐसे ही देवताओंको माना है और उन देवताओंका नाम लेकर सुलफा आदिक पीतेखाते हैं और भक्तजन भी चूँकि शिथिल हैं तो उनके प्रति

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

गुणका ही भाव बढ़ाते हैं कि जब ये इस नशे में होते हैं तो भगवान से साक्षात् मिलते हैं, ऐसी ही बातें सोचकर उनका समर्थन करते हैं, भक्तिपूजा करते हैं, ऐसी घटनाको देखकर यदि कोई ज्ञानी अपने ज्ञानभावमें शिथिल होकर उनकी अनुमोदना करे और ये भी कर्मक्षय कर रहे हैं ऐसी बुद्धि रखें तो वह ज्ञानी अपने सम्यग्दर्शनको दूषित करता है और ऐसे दूषण द्वारा सम्यक्त्वका घात कर लेता है।

कुदर्शनज्ञानचारित्रचिद्रजान् निरस्ततत्त्वर्थरुचीनसंयतान्।
निषेवमाणो मनसापि मानवो लुनाति सम्यक्त्वतरुं महाफलं ॥१७८॥

मिथ्यादर्शनज्ञानचारित्रवान्तोंकी मानसी सेवासे सम्यक्त्वका क्षय—जो पुरुष खोटे दर्शन, खोटे ज्ञान, खोटे चारित्ररूपी मैलसे मलिन जीवों के मन, वचन, कायसे किसी एक से भी सेवा सुश्रुषा करता है वह अपने सम्यक्त्वको काट डालता है, दूषित करता है, सम्यक्त्वका घात करता है। जो मिथ्यातत्त्वके श्रद्धानी हैं उनकी भक्ति, उनकी सेवासे कौनसा फल पा लिया जायेगा ? मिथ्यात्व ही तो संसारके जीवोंको अनादिसे रुलाता आया है. मिथ्यात्वके वश ही तो यह जीव सारे संकट सह रहा है और अब यह मिथ्यादृष्टियों को ही गुरु समझकर, शरण समझकर उनकी भक्ति श्रद्धा करे तो वह मिथ्यात्वको ही तो पुष्ट करता है। जिन लौकिक गुरुजनोंका दर्शन खोटा है, अनेकान्तके स्वरूपसे अपरिचित हैं आत्माके वास्तविक स्वरूपसे अनभिज्ञ हैं, उनको कर्मक्षयका रास्ता कैसे प्राप्त हो सकता है ? वस्तुकी स्वतन्त्र सत्ताका भान न होनेसे जिसका ज्ञान खोटा बना हुआ है और खोटा दर्शन ज्ञान होनेके कारण रागद्वेषमें ही पग रहे हैं, रागद्वेषमयी क्रियामें ही धर्म मानकर उनका ही आचरण कर रहे हैं, ऐसे पुरुषोंकी सेवा सुश्रुषा में यह पुरुष कैसे सम्यक्भाव प्राप्त कर सकता है ? जिस मिथ्यात्वभावको लिये हुए है उसी मिथ्याभावको और भी दृढ़ कर रहा है, तो मिथ्यादृष्टि, मिथ्याज्ञानी, मिथ्या आचरण वाले पुरुषोंकी कोई मनसे सेवा सुश्रुषा करे, वचनसे सेवा सुश्रुषा करे अथवा शरीरसे सेवा सुश्रुषा करे वह सम्यग्दर्शनरूपी वृक्षको जड़से उखाड़ डालता है। सम्यग्दर्शन ही तो संसार संकटोंसे छुटाने वाले मोक्ष रूप महाफलको देने वाला है, उसीका ही जिसने घात किया है वह अब कैसे आत्माकी प्रगतिके मार्गमें बढ सकता है ?

जिनेंद्रचंद्रमक्तभक्तिभाविना निरस्तमिथ्यात्वमलेन देहिना।
प्रधार्यते येन विशुद्धदर्शनमवाप्यते तेन विमुक्तिकामिनी ॥१७९॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निरतिचार सम्यक्त्वसे प्रगतिपूर्वक निर्वाणका लाभ—इस छंदसे पूर्वके ५ छंदोंमें सम्यग्दर्शनके ५ अतिचारोंका वर्णन किया, उन अतिचारोंसे रहित सम्यग्दर्शनको जो धारण करते हैं और साथ ही जिनेन्द्र भगवानके चरणोंमें अचल भक्ति भी रखते हैं वे जीव शीघ्र ही मुक्तिरूपी कामिनीको प्राप्त कर लेते हैं अर्थात् संसारके सर्व संकटों से सदाके लिये छुटकारा पा लेते हैं। संसार नाम है अपने रागद्वेष सुख दुःख आदिक विकारोंमें आत्मीयता मानकर भटकते रहना सो जब सम्यग्दृष्टिने इन रागादिक विकारोंको परभाव समझ लिया, ये मेरे स्वभावमें नहीं हैं किन्तु कर्मोदयकी छाया प्रतिफलन रूप जो नैमित्तिक है, औपाधिक है यह मेरा कैसे हो सकता है ? मैं तो इनसे निराला केवल चैतन्यवृत्ति मात्र हूँ, बस चेतता रहूँ, प्रतिभास होता रहे यह ही मेरा सीधा काम है और मैं प्रतिभास स्वरूप हूँ, यह श्रद्धा जिसके हो गई है वह पुरुष तो इस स्वतः सिद्ध चेतनामात्र सहज परमात्मतत्त्व की ही धुन रखेगा, उसका संसार फिर कैसे बढ़ सकता है ? कर्मभार उसके साथ लगता है जिसको कर्मके फल में आदर रहता है। सम्यग्दृष्टि जीव को कर्म के फल में आदर रंच नहीं है। यह समस्त कर्मफल विकृत हैं, संसार संकटों में फंसाने वाले हैं, ऐसा परभावोंकी असारता भिन्नता सम्यग्दृष्टि के निर्णीत हुई है, अब वह सम्यग्दृष्टि इन विकार भावोंसे तो उपेक्षा करता है और अपने सहज अविकार स्वभावकी आस्था रखता है और जिसने सहज स्वभाव प्रकट कर लिया है उन परमात्माओंकी अचल भक्ति करते हैं, अर्थात् यह सिद्ध स्वरूप ही परमात्मतत्त्व है। यही अवस्था जीवोंको कल्याणकारी है, ऐसी उस सिद्ध पर्यायके प्रति आस्था रहती है, तो जिसको निज सहज स्वरूपका भान है और सहज स्वभाव के अनुकूल जिनका विकास हुआ है उनके प्रति भक्ति जगती है वह पुरुष संसार संकटों से नियमसे छूट जाता है।

८ सम्यग्ज्ञाननिरूपण

अनेकपर्यायगुणैरुपेतं विलोक्यते येन समस्ततत्त्वं ।
तदिंद्रियानिंद्रियभेदभिन्नं ज्ञानं जिनेंद्रैर्गदितं हिताय ॥१८०॥

प्रत्यक्ष परोक्षरूप सम्यग्ज्ञान का स्वरूप व हित प्रयोजकत्व—इससे पूर्व परिच्छेद में सत् असत्का विवेक किया गया था, जिसके आधार पर सम्यक्त्व होता है जो कि मोक्षका

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

मूल है उसका वर्णन करके अब सम्यग्ज्ञानका वर्णन किया जा रहा है। ज्ञानका अर्थ है अनेक पर्याय और गुणोंसे युक्त जीवादिक पदार्थोंका जानना। जो पदार्थ जिस स्वरूप से अवस्थित है उस स्वरूप में उन पदार्थोंका परिज्ञान करना सम्यग्ज्ञान कहलाता है। सो ये सम्यग्ज्ञान दो प्रकार के हैं – परोक्ष और प्रत्यक्ष। जो इन्द्रिय मनके सहयोग से ज्ञान जगता है वहं तो परोक्षज्ञान है। जहाँ इन्द्रिय मनका माध्यम नहीं लेना पड़ता, केवल आत्मीय शक्तिसे ही ज्ञान जगता है उस ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। यद्यपि जाना जाता है वैसे मात्र ज्ञानके ही द्वारा, कहीं इन्द्रियके द्वारा नहीं जाना जाता पर जैसे कोई कमरे में बन्द हो तो वह पुरुष खिड़कियों के द्वार से ही देख सकता है, तो देखने वाला वह पुरुष हो है। खिड़कियाँ नहीं देखतीं। पर उस बंधनकी स्थितिमें यह ही चारा है कि वह खिड़कियों के द्वारसे बाहर की बात देख सके। तो ऐसे ही यह जीव कर्म और शरीर से बँधा हुआ है। छद्मस्थ है, इस स्थितिमें इन बाहरी पदार्थोंका ज्ञान इन्द्रियरूपी खिड़कियोंके द्वारा कर पाता है। सो जानने वाला तो आत्मा ही है, पर स्थिति ऐसी है कि इन्द्रिय और मनके निमित्तसे वह जान पाता है। तो ऐसे इन्द्रियज ज्ञानको परोक्षज्ञान कहते हैं और अतीन्द्रिय ज्ञानको प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं। ज्ञान शब्द ज्ञ अवबोधने धातुसे बना है। जिससे पदार्थ जाना जाय उसे ज्ञान कहते हैं। ज्ञानका स्वरूप जानना है। जैसे दीपकका स्वरूप ही प्रकाशमय है सो वह स्वयं प्रकाशित है और दूसरे पदार्थका भी प्रकाशक है, ऐसे ही यह आत्मज्ञान स्वयं जानन स्वरूप है, प्रतिभास स्वरूप होने से वह ज्ञान अपने को भी जानता है और पर पदार्थोंको भी जानना है। सो जहाँ इन्द्रियकी निरपेक्षता हो गयी, केवल आत्मीय शक्तिसे ही जानता चल रहा है उसे प्रत्यक्ष ज्ञान कहते हैं।

रत्नमयीं रक्षति येन जीवो विरज्यतेऽत्यंतशरीर सौख्यात्।
रुणद्धि पापं, कुरुते विशुद्धिं, ज्ञानं तदिष्टं सकलार्थविद्भिः ॥१८१॥

ज्ञानसे रत्नत्रयी रक्षा, विरक्ति, पापनिरोध, विशुद्धि एवं सकलार्थ सिद्धि—सर्वज्ञदेवने उस ज्ञान को श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, जिस ज्ञान की सहायतासे यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र की रक्षा करता है। यद्यपि यह भी बताया गया है कि सम्यग्दर्शन होते ही सम्यग्ज्ञान होता है। सम्यग्दर्शन से पहले वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं कहलाता, पर ज्ञान तो सही पहले था, पर अनुभूति सहित न था। सम्यग्दर्शन होने पर भी ज्ञानकी आराधना, ज्ञान का पौरुष आवश्यक है। यदि ज्ञानका पौरुष न रहे तो विषय कषायोंके अनुरागसे पाया हुआ सम्यग्दर्शन भी नष्ट कर सकता है तो वही ज्ञान प्रशंसनीय है जो सम्यग्दर्शन

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

को रक्षा करता है, सम्यग्ज्ञान की रक्षा करता है। ज्ञानमें समीचीनता आये, पर उसको बनाये रहे यह भी ज्ञानसे ही किया जायगा। अपना आचरण सही बनायें, ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्व में उपयोग जुटायें यह सब ज्ञानबलसे ही होता है। सम्यग्ज्ञान वही श्रेष्ठ बताया गया है जिसके प्रतापसे विनश्वर शारीरिक सुखोंसे वैराग्य जग जाय। विषयोंमें अनुराग बना रहे तो उसमें ज्ञानका प्रकाश नहीं है। सच्चा ज्ञान वही है जिसके होनेसे शारीरिक सुखोंसे वैराग्य बन जाता है। सम्यग्ज्ञान पापके आश्रवको रोकता है। पाप कर्मका बंध न होगा, जिसके सम्यग्ज्ञान है उसके पापका आश्रव रुक जायगा। ज्ञानी पुरुष धर्ममें अनुराग रखता है, धर्ममें प्रवृत्ति करता है। रागद्वेष न करके मात्र ज्ञाताद्रष्टा रहना यह कहलाता है धर्मपालन। यह धर्मपालन सम्यग्ज्ञानके प्रतापसे ही होता है। तो सर्वज्ञदेवने उसी ज्ञानको श्रेष्ठ ज्ञान कहा है, जिससे पाप कटें, धर्म बढ़े, रत्नत्रयकी रक्षा हो और उसकी विशुद्धि बढ़ती हो।

क्रोधं धुनीते, विदधाति शांतिं, तनोति मैत्रीं, विहिनस्ति मोहं, ।
पुनाति चित्तं, मदनं लुनीते, येनेह बोधं तमुशंति संतः ॥१८२॥

ज्ञानसे क्रोधध्वंस व शान्तिविधान—ऐसे ही ज्ञानको संत जन ज्ञान नामसे पुकारते हैं जो ज्ञान क्रोधको नष्ट कर देता है। जिसके ज्ञान जग रहा है उसके क्रोध कैसे होगा ? क्रोध तभी होता है जब अज्ञान बर्त रहा हो। किसी बाह्य पदार्थमें लगाव लग रहा हो, फिर कोई विघनकर्ता समझा जा रहा हो वहाँ क्रोध उत्पन्न होता है, पर जहाँ सम्यग्ज्ञान है, भिन्न-भिन्न सत्ताका स्पष्ट निर्णय है वहाँ क्रोधका क्या अवकाश ? तो वास्तवमें ज्ञान वही है जो क्रोधको नष्ट कर देता है। बड़े-बड़े ऋषी जो तपश्चरणके बलसे ऋद्धि को प्राप्त करलें और कदाचित् अज्ञान आ जाय, क्रोध आ जाय तो वह भी भस्म हो जाता है और दुनियाको भी भस्म कर देता है, तो जहाँ ज्ञान है वहाँ क्रोध नहीं रह सकता। ज्ञान वही है जो शान्तिको उत्पन्न करता है, जहाँ पदार्थका यथार्थ बोध है वहाँ रागद्वेष का क्या काम ? रागद्वेष होते हैं अज्ञान दशामें। ज्ञान जगने पर जहाँ यह प्रकाश जगा कि मैं तो अमूर्त ज्ञानमात्र हूँ। जगतमें सर्व पदार्थ मुझसे अत्यन्त भिन्न है, भिन्न इन समस्त पदार्थोंका कुछ भी परिणमन हो उससे मेरे में कोई सुधार बिगाड़ नहीं होता है। स्वतन्त्र सत्त्वका जहाँ भान हो गया, ऐसा ज्ञान जग गया वहाँ शान्तिका वातावरण छा जाता है, और उस ज्ञानीके सत्संग में जो लगे रहते हों, उन्हें शान्त देखकर अन्य लोगों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर भी शान्ति छा जाती है, ऐसी घटनायें हुई भी हैं। किसी जंगलमें कोई मुनिराज तपश्चरण कर रहे हैं, वहाँ सिंह और बैल दोनों ही मुनिराजके समीप खड़े हैं, उनमें परस्पर क्रोध नहीं आता, अशान्ति नहीं होती। शान्तिका वातावरण रहता, वह सब प्रताप है सम्यग्ज्ञान का। वहाँ जो उदारता जगी, शान्ति जगी वह ज्ञान के कारण ही तो जगी। तो वास्तविक ज्ञान वही है जिस ज्ञानके होनेसे शान्तिका साम्राज्य छा जाय, तो जहाँ क्रोध न हो और शान्तिका साम्राज्य छा जाय वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है।

सम्यग्ज्ञानसे मैत्री विस्तार और मोहविघात—सम्यग्ज्ञानके प्रताप से सर्व जीवोंकी मैत्रीका विस्तार हो जाता है। जिसने अपना सहज आत्मस्वरूप जाना वह सब जीवोंका सही स्वरूप समझता है। अपने ही स्वरूपके समान अन्यका स्वरूप है और जो अपने पर बीतती है वही उन पर बीतती है, सब कुछ जाननहार ज्ञानी मित्रताका विस्तार कर लेते हैं। किसी भी जीव को दु:ख उत्पन्न न हो ऐसी अभिलाषाको मित्रता कहते हैं, तो जहाँ सर्व जीवोंका स्वरूप अपने स्वरूपके समान निरखा वहाँ मित्रताका विस्तार हो ही जाता है, सो ज्ञान सम्यक वही है जिसके होने पर सर्व जीवोंमें मित्रताका वि तार हो. शत्रुताका भाव न रहे, ज्ञान सम्यक वही है जिसके होने से मोह नष्ट हो जाय। ज्ञान और मोह ये दो एक साथ कहाँ रह सकते। मोह का अर्थ है पर पदार्थोंमें और अपनेमें भेद न समझ सकना, परसे हित मानना, परसे अपना सुधार बिगाड़ समझना। यह सब मोह कहलाता है, तो जहाँ मोहभाव रहता है वहाँ ज्ञानभाव नहीं रहता। क्योंकि ज्ञानका विषय है यह कि जो पदार्थ जैसा है उसको वैसा जान ले। प्रत्येक पदार्थ अपने ही द्रव्य-क्षेत्र, काल भावसे है, परके द्रव्य-क्षेत्र काल भावसे नहीं। एक का दूसरे में प्रवेश नहीं, दखल नहीं, अधिकार नहीं, फिर भी जिसके ज्ञानभाव नहीं रहता, वह सबकुछ परके प्रति मान बैठता है। इन बच्चोंपर मेरा ही तो अधिकार है, इनका मैं ही तो मालिक हूँ, जो वैभव प्राप्त हुआ है वह मेरा ही तो है। तहसील में रजिस्ट्री मेरे नामसे ही तो है, यह मकान दूसरे का कैसे हो सकता। तो पर पदार्थमें आत्मीयताका कामोह रहना यह ही तो अज्ञानभाव है। जहाँ ज्ञान जगता है वहाँ अज्ञान नहीं ठहर सकता।

सम्यग्ज्ञानसे चित्तपवित्रता व कामखंडन—सम्यग्ज्ञान वही है जो चित्तको पवित्र कर दे। चित्त अपवित्र होता है रागद्वेष मोहसे, रागद्वेष मोह बनता है अज्ञानभाव से। जहाँ वस्तुके आवान्तर सत्त्वका ज्ञान जगा है वहाँ विकार न आ सकेगा, तो सम्यग्ज्ञानके होने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पर चित्त पवित्र हो जाता है। चित्तमें अपवित्रता नहीं ठहरती और जिनके पूर्ण सम्यग्ज्ञान है, केवल ज्ञान है, उनके चित्त ही नहीं, पर आत्मा उपयोग स्वरूप तो है, उनका वह उपयोग पवित्र हो जाता है, सम्यग्ज्ञान वही है जिसके होने पर कामदेवका प्रभाव घट जाता है। किसी स्त्री पुरुषको निरखकर उसके रूपका कोई महत्त्व दे, उसके प्रति ग्लानि न आये, हाड़, खून आदिक का ध्यान न जगे और केवल एक सौन्दर्य शोभा यही मात्र दिखे तो वह तो अज्ञानभाव है। जहाँ ज्ञान सही जग रहा है वहाँ कामदेवका प्रभाव नहीं ठहर सकता। यह शरीर जीव कर्म और आहार वर्गणायें इन तीनका पिण्ड है। जीव तो अमूर्त है, देह भी इस मलिन जीवकी संगति पानेसे पहले इसमें कोई खराबी न थी। जहाँ ही जीवका सम्बन्ध हुआ तो ये आहार वर्गणायें इस तरह परिणम गई कि कोई हड्डी बनी, कोई खून बनी, कोई चास बनीं, तो ये सब अपवित्र पदार्थ बन गए। तो जहाँ सही ज्ञान है, प्रत्येक वस्तुके स्वरूपका बोध है वहाँ देहको देखकर सत्य ही नजर आयेगा, असत्य माया दृष्टिमें न आयेगी। तब इस पर कामदेवका प्रभाव कैसे हो सकता ? तो जिसके होने पर इतना प्रभाव बने वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान है, ऐसा संत पुरुष कहते हैं।

ज्ञानेन बोधं कुरुते परेषां, कीर्तिस्ततश्चंद्रमरीचिगौरी।
ततोऽनुराग: सकलेऽत्रिलोके तत: फलं तस्य मनोनुकूलं ॥१८३॥

ज्ञानसे परबोध करानेके कारण कीर्तिविस्तार— ज्ञानके द्वारा यह जीव दूसरोंको बोध करा सकता है। दूसरोंको समझाना तब ही बनता है जब उस विषयमें खुदने भी बहुत कुछ समझा हो और स्पष्ट हो। तो जिस ज्ञान द्वारा दूसरे प्राणियोंको प्रतिबोध हो वह ज्ञान सही ज्ञान है, और ज्ञानका यही चिह्न है अर्थात् ज्ञानी पुरुष ज्ञान द्वारा कुमार्गपर जाते हुए लोगोंको कुमार्गसे हटाकर सुमार्गपर लगा सकता है, यह सामर्थ्य ज्ञानमें है। अन्य वैभव आदिकके द्वारा यह बात न बन पायेगी कि कुमार्गसे हटाकर सुमार्गमें लगा दे। ज्ञानमें ही यह कला है कि वह दूसरोंको बोध करा सकता है। दूसरोंको प्रतिबोध कराये उससे उसकी कीर्ति चंद्रकिरणोंकी तरह धवल विस्मित हो जाती है। जिन महापुरुषोंके आज नाम पाये जा रहे हैं उन्होंने यही तो किया था अपने समयमें कि कुमार्गपर जाते हुए लोगोंको सुमार्गपर लगाया था। तो जो पुरुष दूसरोंको प्रतिबोध करता है, कुमार्गसे हटाकर सुमार्गपर लगाता है उसकी कीर्ति चंद्रकिरणोंकी तरह स्वच्छ फैलती है। जहाँ लोगोंको प्रतिबोध प्राप्त हो और उसकी कीर्ति धवल स्वच्छ विस्मित

Version 1

हो तो उसके प्रति लोगोंका अनुराग बढ़ जाता है। अब यह ज्ञानी पुरुष दूसरोंका प्रेमपात्र बन जाता है। अनेक प्रयत्न करने पर भी कोई लोगोंका प्रेमपात्र बन सके यह बात नहीं हो पाती, क्योंकि ज्ञानातिरिक्त अन्य उपायोंमें निश्चलता नहीं है। ज्ञान ही एक ऐसा उपाय है कि जिसके प्रसारसे लोगोंका अनुराग बढ़ता है, जहाँ अनुराग प्राप्त हो तो उसका अभीष्ट शीघ्र ही सिद्ध हो जाता है।

ज्ञानाद्धितं वेत्ति ततः प्रवृत्ती रत्नत्रये संचितकर्ममोक्षः।
ततस्ततः सौख्यमबाधमुच्चैस्तेनात्र यत्नं विदधाति दक्षः ॥१८४॥

ज्ञानसे हितपरिचय, रत्नत्रयवृत्ति, संचितकर्ममोक्ष व अवाध आनन्द--ज्ञानसे यह जीवहित अहितको जानता है। जब ज्ञान प्रकाश जगता है तो वहाँ यह स्पष्ट रहता है कि यह भाव तो हितरूप है और यह भाव अहितरूप है, कुछ ज्ञान दृढ़ होने पर विशेष उच्च स्थितिमें अहित पदार्थोंका ध्यान नहीं रहता पर हितमय निज सहज स्वरूपका तो ध्यान रहता ही है, तो यह जीव ज्ञान द्वारा हितको समझता है। हित क्या है ? समता परिणाम। अज्ञान हटे, रागद्वेष भाव विकार दूर हों। केवल ज्ञाता द्रष्टा रहें, ऐसी जो अपनी स्थिति है वही हितरूप है। हितरूप परिणामके परखने पर फिर उसमें प्रवृत्ति हो जाती है। क्या है हितरूप ? वह सहजभाव, उसकी दृष्टि की मग्नता। यही सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र कहा जाता है। तो हितका परिचय होनेपर जीवकी प्रवृत्ति रत्नत्रयमें होती है और रत्नत्रयमें प्रवृत्ति होनेके कारण पूर्व संचित कर्मोंका क्षय हो जाता है। यह पूर्ण वैज्ञानिक बात है। आत्माके विकार भावका सान्निध्य पाकर कार्माण वर्गणामें कर्मत्व आ जाता है तो ऐसे भव भवके बाँधे कर्म आत्माके अविकार स्वभावकी दृष्टि होनेपर उनमें दुर्बलता आकर उन कर्मोंका क्षय हो जाता है। कर्मोंका क्षय होनेसे मोक्ष सुख प्राप्त होता है। यह मोक्षसुखभी धर्म है। कभी मिटने वाला नहीं है। इस मोक्षसुखमें बीच में कभी बाधा भी नहीं आ सकती और कभी उस सुखमें थोड़ी कमी हो जाय, जैसे केवल ज्ञानके द्वारा प्रभु निरन्तर समस्त पदार्थोंको जानते रहते हैं तो ऐसे ही इस आनन्द परिणमन के द्वारा निरन्तर निराकुल अखण्ड परम आल्हादका अनुभव होता रहता है। तो कर्मक्षयसे जो मोक्षसुख प्राप्त होता है। उसमें कभीभी बाधा नहीं आ सकती। ऐसा निराबाध नित्य मोक्ष सुख प्राप्त होता है कर्मोंके विध्वंससे। इस कारण जो विवेकीजन हैं वे आत्मीय पवित्रता पानेके लिए जैसा स्वयंका सहजस्वरूप है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उस प्रकार व्यक्त हो जाय वह धर्मपालन करके ज्ञानका उपार्जन करता है। ज्ञानसे भीतर प्रकाश मिला और सत्य प्रकाश मिलनेसे स्वभावाभिमुखता हुई। रागादिक विकार दूर हुए, तो ऐसा सुयोग होने पर पूर्वबद्धकर्म स्वयं क्षयको प्राप्त हो जाते हैं तो जिनको मोक्षसुखकी चाह है उनका कर्तव्य है कि वे अवश्य ही सवप्रयत्नपूर्वक वस्तुस्वरूप का ज्ञान प्राप्त करें।

यदज्ञजीवो विधुनोति कर्म तपोभिरुग्रैर्भवकोटिलक्षैः।
ज्ञानी तु चैकक्षणतो हिनस्ति तदत्र कर्मेति जिना वदंति ॥१८५॥

ज्ञानीका अल्प समय में कर्मप्रक्षय—अज्ञानीजन लाखों करोड़ों भवों में तपश्चरण कर करके जितने कर्म नष्ट कर पाते हैं उतने कर्म ज्ञानी जीव क्षणभर में नष्ट कर डालता है। यहाँ ज्ञानी और अज्ञानी के कर्मनाशकी तुलना की है उसका अर्थ इतना है कि इतना कर्म-भार एक क्षणमें दूर होता, पर अज्ञानी जीवने वास्तवमें कर्मोंका क्षय ही नहीं किया था। और इसीलिए लाखों करोड़ों भवोंके तपश्चरणकी बात कही गई है। सम्वरपूर्वक निर्जरण हो वह मोक्षमार्गमें उपयोगी कहा गया है। अज्ञानी के सम्बर कहाँ? भले ही थोड़े कर्म दूर हो जायें और वहाँ भी दूर हो रहे थे कुछ तपश्चरण आदिक विधानोंके कारण कुछ अधिक दूर हो गए, उदीर्णा हो गई, किसी भी प्रकार हटे तो हट गए, इतने कर्मभार की तुलना की है। पर वहाँ अज्ञान अवस्थामें तो कर्मों का क्षय नहीं होता किसी का। यह जीवके एक क्षणके स्वरूपानुभव से इतने कर्म दूर हो जाते हैं। ज्ञानीके जो कर्म दूर होते हैं उनमें पाप कर्मके दूर होने की संख्या अधिक रहती है। पाप भारसे रहित होकर उच्च दशा में यह ज्ञानी पुण्य भारको भी हटा देता है। पाप कहते हैं उसे जिसके उदय से जीवको अनिष्ट सामग्री मिले। मनके प्रतिकूल वातावरण मिले, जिसमें यह कष्ट मानता है। पुण्य कर्म उसे कहते हैं जिसके उदयसे जीवको इष्ट सामग्री मिले। जिससे यह सुख मानता है, पर वस्तुतः जो सुख मिला पुण्योदयसे वह क्षोभसे भरा हुआ है और जो कष्ट पापके उदयसे मिला उसमें तो क्षोभ स्पष्ट ही है। और फिर जैसे पापके उदयमें इस जीवको संसारमें ही रहना पड़ता तो ऐसे ही पुण्य के उदय में भी इस जीवको संसारमें ही रहना पड़ता। तो ज्ञानी जीवका ध्येय तो जैसा अपने आत्माका सहज स्वरूप है एक अकेला आत्मा ज्ञानमात्र, वैसा ही प्रकट होता, वही ध्यानमें रहता है। सो यह स्थिति पुण्य पाप दोनों से ही रहित होने पर होती है। तो यों पुण्य पाप दोनों हेय हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चौरादिदायादतनूजभूपैरहार्यमर्च्यं सकलेऽपि लोके ।
धनं परेषां नयनैरदृश्यं ज्ञान नरा धन्यतमा वहंति ।।१८६।।

ज्ञानकी परके द्वारा अहार्यता—यह ज्ञान ऐसा अद्भुत पदार्थ है, अलौकिक वैभव है कि जिसको चोर चुरा नहीं सकते। बाहर धन पुद्गल पड़े हों तो आँख बचाकर या जबरदस्ती चोर चुरा ले जायेंगे पर इसके ज्ञानको तो न ले जायेंगे। और ज्ञान भी यदि पाया है तो उसको न हरेंगे। और किसी ने परमार्थ ज्ञान प्राप्त किया है तो वह तो उसका अमिट वैभव है, तो चोर बाहरी पदार्थों को तो हर लें मगर ज्ञानको नहीं हर सकते। ज्ञान ऐसा विलक्षण अलौकिक पदार्थ है कि जिसको भाई-बंधु आदिक कोई बाँट नहीं सकते। हिस्सा बांट हो रहा हो और उनमें यदि कोई जबरदस्त हो तो वह कुछ अधिक धन भी ले सकता मगर ज्ञानको तो कोई नहीं बाँट सकता। सो ज्ञान एक अलौकिक वैभव है। वह यदि प्राप्त हो जाय तो न छिन सकता है न बंट सकता है। ज्ञान को राजा भी नहीं छुड़ा सकता। कोई अपराध बन जाने पर राजा धन भी ले सकता, राज्य से बाहर भी निकाल सकता मगर उसके ज्ञानको नहीं छीन सकता। वह ज्ञान आत्मा का आत्मा के पास ही रहेगा। बाहरी धन तो लोगोंके द्वारा आँखों से दिख जाने योग्य है, दिख गया, उसको पकड़ा भी जा सकता, पर ज्ञान तो आँखों से अदृश्य है। कोई ज्ञानको कैसे छुड़ा लेगा ? यह ज्ञानभाव जिसके पास है वह पुरुष धन्य है। सब कुछ लोकमें वैभव मिलना सुलभ है पर ज्ञानभावका पाना दुर्लभ है। ज्ञानही आत्माका स्वरूप है और आत्मा के इस सहज स्वरूपको ज्ञान पहिचान ले तो चूँकि ज्ञानमें ज्ञान स्वरूप आ गया तो उसकी पवित्रता बढ़ी और सारे संकट दूर हो गए। तो सर्व संकटों को दूर कर सकने वाला कोई मित्र है तो वह ज्ञान ही है। इसलिए बहुत पुरुषार्थ करके भी एक इस ज्ञानभावका अर्जन करना चाहिये।

विनश्वरं पाप समृद्धिदक्षं विपाकदुःखं बुधनिंदनीयं ।
तदन्यथाभूतगुणेन तुल्यं ज्ञानेन राज्यं न कदाचिदस्ति ।।१८७।।

ज्ञान की अतुलता—लोकमें सबसे बड़ी वस्तु लोग राज्य को समझते हैं, पर उस राज्यकी उपमा भी ज्ञानके लिए फेल हो जाती है। यदि ज्ञानसे राज्यकी उपमा दी जाय तो तुलना कैसे बन सकती है ? राज्य तो विनाशीक है। एक न एक दिन नष्ट हो जाने वाला है, किन्तु ज्ञान अविनाशी है, वह नष्ट होगा नहीं। जो सम्यग्ज्ञान की धारा है वह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बराबर चलती रहेगी। जो सहज आनन्दगुण है वह कभी नष्ट होगा नहीं। तो राज्यमें और ज्ञानमें कालकृत बड़ा अन्तर है। राज्यसे पाप की वृद्धि होती है और ज्ञानसे पापका नाश होता है। तो पापवर्द्धक और पापनाशक की तुलना कैसे जा सकती है? राज्यतो अन्तमें दुःखदायी है। या तो उसे कोई छीनता है या मरण होता है तो राज्य वैभव छूटा जा रहा है या कुछ भी हो अन्तमें दुःख ही प्राप्त होता है और यह ज्ञान सदा ही सुखका देने वाला है। तो दुःखदायक और सुखदायककी तुलमा कैसे कही जा सकती है। ज्ञानीजन, विद्वान लोग, संसारसे विरक्त महापुरुष राज्यकी तो वास्तवमें निन्दा करते हैं। राज्य तो निन्दनीय है और ज्ञानकी सब लोग प्रशंसा करते हैं तो निन्दनीय और प्रशंसनीय की परस्पर तुलना क्या? जो लोग ज्ञानकी राज्यके साथ तुलना करते हैं वे भूल करते हैं। राज्य और ज्ञान ये दोनों बराबर कभी नहीं हो सकते।

पूज्यं स्वदेशे भवतीह राज्यं ज्ञानं त्रिलोकेऽपि सदार्चनीयं।
ज्ञानं विवेकाय, मदाय राज्यं ततो न ते तुल्यगुणे भवेतां ॥१८८॥

ज्ञानकी सार्वभौमता—ज्ञान और राज्यमें बहुत अन्तर है। राज्यतो अपनेही देशमें पूज्य होता है, जो राज्य मिला है वह राजा अपने ही देशमें पूजा जायगा। दूसरे देश वाले उसकी आज्ञा न मानेंगे अथवा दूसरे देश पर उसका अधिकार और प्रवेश ही नहीं है। तो राजा अपने ही देशमें पूजा जाता है, पर ज्ञानतो तीनों लोकमें सभी जगह सदा पूज्य है। किसी भी देशके लोग हों किसी भी कालमें, सभी लोग सम्यग्ज्ञानका आदर करते हैं। सम्यग्ज्ञानको हितकारी सुखदायी समझते हैं। तो ज्ञानकी राज्यके साथ तुलना कैसे? राजा स्वयं ज्ञानकी पूजा करते हैं। बड़े-बड़े महाराजा चक्रवर्ती इन्द्र, धरणेन्द्र, योगीजन सभी ज्ञानकी पूजा करते हैं। तो ज्ञान ऐसा प्रधान हितकारी गुण है, ज्ञान तो विवेकके लिए होता है। परन्तु राज्यपद तो मद कराता है। विवेक कहते हैं उसे जहाँ हितका ग्रहण किया जा सके और अहितका त्याग किया जा सके। जो हित है उसका ग्रहण करलें, परन्तु राज्यका जब मद आ जाता है या राज्यके विधानका जहाँ सम्बन्ध होता है वहाँ हितका तो ग्रहण नहीं हो पाता और अहितका ही ग्रहण होता रहता है। तो ज्ञान और राज्य ये दोनों एक समान कैसे हो सकते हैं? सम्यग्ज्ञान तो स्वयंका स्वाभाविक गुण है। राज्य तो पराधीन बात है। ज्ञान और राज्यकी तुलना करना यह मोहियोंका ही काम हो सकता है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

तमो धुनीते, कुरुते प्रकाशं, शमं विधत्ते, विनिहंति कोपं ।
तनोति धर्मं, विधुनोति पापं, ज्ञानं न किं किं कुरुते नराणां ।।१८९।।

ज्ञानसे धर्मवृद्धि व पाप प्रक्षय—सम्यग्ज्ञान मनुष्यों को कौन-कौन सा लाभ नहीं पहुँचाता है, अज्ञानरूपी अंधकारका नाश हो जाना यह बहुत बड़ा लाभ है। जो प्राणी अज्ञान में डूबे हुए हैं उनका उपयोग स्वसे हटकर पर तत्त्वों में लिपट गया है। उन पर बड़ी विपदा है। अज्ञान की विपदा बहुत बड़ी विपदा होती है। तो ऐसे अज्ञान अंधकार को भी जो नष्ट कर दे वह ज्ञान बहुत ही श्रेष्ठ गुण है। ज्ञान अंतरंगमें विलक्षण रीतिका स्वानुभवका प्रकाश पैदा कर देता है। ज्ञानसे शान्ति का साम्राज्य छा जाता है, शान्तिका साम्राज्य छा देने वाले और कोई पदार्थ नहीं हो सकते। सम्यग्ज्ञान ही है एक ऐसा परमतत्त्व जो कि शान्तिका साम्राज्य बना देता है। ज्ञान प्रकाशके कारण क्रोधका नाम निशान तक नहीं रहता। ज्ञानमें ही वह महान बल है कि इस जीवकी विकार विपदाको मूलतः समाप्त कर दे। ज्ञानसे धर्मकी वृद्धि होती है और पापका विनाश हो जाता है और पापके नाश होनेसे ही लोकमें भी अद्‌भुत सम्पदायें प्राप्त होती हैं और फिर निष्पाप लोग ही मोक्ष मार्ग को प्राप्त करते हैं। तो ज्ञान से इस जीवको क्या-क्या लाभ नहीं होता। समस्त अद्‌भुत लाभ ज्ञान द्वारा प्राप्त होते हैं।

यथा यथा ज्ञानबलेन जीवो जानाति तत्त्वं जिननाथदृष्टं ।
तथा तथा धर्ममतिः प्रशस्ता प्रजायते पापविनाशशक्ता ।।१९०।।

ज्ञान बलसे आत्माकी उज्ज्वलता—जैसे जैसे इस ज्ञानबल के द्वारा यह जीव तत्त्वसे स्पष्ट मर्मसहित मनन करता चला जाता है वैसे ही वैसे इसकी बुद्धि समीचीन होकर धर्मकार्य में अग्रेसर होती चली जाती है। धर्म है आत्माके सहज स्वरूपमें उपयोग का मग्न होना। यह अद्‌भुत कार्य ज्ञान प्रकाश द्वारा ही सम्भव है। जब कोई जीव अपनेको सहज ज्ञानस्वरूप समझ ले तब ही तो वह निज सहज ज्ञानस्वरूपमें मग्न होगा। सो जैसे जैसे वास्तविक पदार्थोंके स्वरूपका ज्ञान होता चला जाता है वैसे ही वैसे धर्मभाव में बुद्धि स्थिर होती है और पापका विनाश होने लगता है। पापों में प्रधान पाप है अज्ञान, मिथ्यात्व, मोह। सो ज्ञान बल द्वारा उस पाप का तो तुरन्त नाश हो ही जाता है, फिर पूर्वबद्ध चारित्र मोहके विपाकमें जो अविरति भोगरति आदिक त्रुटियाँ रह जाती हैं उन पापों का विनाश भी सम्यग्ज्ञानके बलसे ही होता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आस्तां महाबोधबलेन साध्यो मोक्षो विबाधामलसौख्ययुक्तः ।
धर्मार्थकामा अपि नो भवति ज्ञानं बिना तेन तदर्चनीयं ॥१९१॥

ज्ञान के बिना पुरुषार्थ की असिद्धि—ज्ञानका महाफल है मोक्षका लाभ होना। जीव अनादि कालसे अज्ञानवश विषय भोगोंमें रति करता हुआ जन्म मरणकी परिपाटी बनाता चला आ रहा है, जिसमें सिवाय क्लेशके और कोई लाभ नहीं। उस क्लेशको नष्ट करने वाला है महाज्ञान बल। सो मोक्ष सुखके बारेमें अनेक लोग यह कह सकते हैं कि वह हमें कहाँ दिखता ? और इस तरह बहाना करके कि जो हमारी इन्द्रियके गोचर भी नहीं है, जिसे हम देख नहीं सकते तो वह हमारे लिए कुछ भी नहीं है। अतः उसके ज्ञानकी आराधना करना व्यर्थ है। ऐसा कहकर लोग इस ज्ञानको टाल सकते हैं और यह भी कह सकते हैं कि यदि वह मोक्ष है तो बड़े भारी ज्ञानसे ही मिल सकेगा, साधारण ज्ञानसे नहीं। जिस ज्ञानका उपार्जन करना बहुत कठिन है ऐसा कहकर मोक्ष सुख प्रदान करने वाले ज्ञानकी बातको टाल सकता है। तो सुनो उसे भी गौण कर दो परन्तु देखो कि वह ज्ञान के बिना इसके इन्द्रियगोचर धर्म अर्थ काम भी तो नहीं है। जो इन्द्रियसे यहाँ देखता है धर्म अर्थ काम वह ज्ञानके बिना नहीं हो सकता। ज्ञानके बिना तो उन कामोंको भी नहीं कर सकते जो कि हमारे लिए प्रतिदिनके काम हैं। इसलिए ज्ञान सम्माननीय है। इस लोकमें भी लाभ देने वाला है और परलोकमें भी लाभ देगा और उत्कृष्ट लोक जो मोक्ष है। उसकी भी प्राप्ति करायगा। तो ऐसा ज्ञान आदरके योग्य है और ऐसे ज्ञानका उपार्जन करना चाहिये।

सर्वेऽपि लोके विधयो हितार्था ज्ञानाहते नैव भवंति जंतोः ।
अनात्मनीयं परिहर्तुकामास्तदर्थिनो ज्ञानमतः श्रयंति ॥१९२॥

ज्ञानसे ही हितमें प्रवृत्ति—संसारमें जितने भी कार्य हैं, जितने भी व्यवहार हैं वे सब ज्ञानके बिना ठीक-ठीक नहीं चल सकते और ठीक-ठीक हितकारी भी नहीं हो सकते। ज्ञानी पुरुष जितना योग्य हितसम्पादन विधि से कार्य और व्यवहारको कर सकता है अज्ञानी नहीं कर सकता। इस लोकमें भी जिनका दिमाग सही नहीं है, कमजोर है, बुद्धि-हीन हैं, उनकी क्या प्रतिष्ठा देखी जाती ? सब लोग उसे तुच्छ देखते हैं। जो ज्ञानी हैं वे लोकके कार्योंको भी भली-भाँति सम्पादित करेंगे। तो ज्ञानके बिना संसारके कार्य और व्यवहार ठीक-ठीक हितकारी नहीं बन सकते हैं। इस कारण जो लोग अपना हित चाहते

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हैं उन्हें चाहिये कि अहित से तो दूर हटें और हितकारी ज्ञानका आश्रय लें। ज्ञानका अर्जन सम्पादन इस जीवके लिए कल्याणकारी है तथा यदि आत्माका जो सहज ज्ञान प्रकाश है तन्मात्र अपनेको अनुभव होने लगे तो इस ज्ञानका फल है मोक्ष का लाभ। जब तक इस जीवके साथ शरीर लगा है तब तक इस जीवको कष्ट ही कष्ट है। खुद अनुभव कर लीजिए–जितने रोग होते हैं वे शरीर के आधीन ही तो होते हैं जितने सम्मान अपमानके व्यवहार चलते हैं वे शरीरको ही यह मैं हूँ ऐसा मानकर ही तो चलते हैं। मानसिक दुःख, वाचनिक दुःख और शारीरिक दुःख ये सब इस जीवको शरीरके कारण प्राप्त होते हैं। सो उपाय यह होना चाहिये कि शरीरके साथ इस जीवका सम्बन्ध सदा के लिए छूट जाय। यह जीव अशरीर हो जाय, केवल आत्मा ही रह जाय तब तो इस जीवका कल्याण है और मानो कुछ दिन को शरीरका सुख है और इसी प्रसंग में भोगका सुख मान रहा है तो इससे जीवका कुछ पूरा तो नहीं पड़ सकता, ये तो मिट जाने वाले हैं। शरीर मिटा, दूसरा शरीर मिला, पता नहीं कैसा शरीर मिले। मगरमच्छ आदिक न जाने कैसे कैसे जीव हैं, कैसा उनका शरीर है। न जाने कैसे कैसे शरीरोंमें इस जीवको बसना पड़ता है। वास्तविक लाभ आत्माका यह है कि वह अपने इस ज्ञान-स्वभाव की आराधना करे और अन्य कुछ न चाहे। ऐसी धुनके साथ आत्माके ज्ञानस्वभाव की उपासना करें कि कर्म और देह ये सदा के लिए छूट जायें और केवल ज्ञान ज्योति ही आत्म-स्वरूप रह जाय। यही सर्वश्रेय की बात है, बाकी तो जगत में सब कुछ विडम्बना ही विडम्बना है।

शक्यो विजेतुं न मनः करींद्रो गंतुं प्रवृत्तः प्रविहाय मार्गं।
ज्ञानांकुशेनात्र बिना मनुष्यैर्विनांकुशं मत्तमहाकरीव ॥१९३॥

ज्ञानांकुश से मनमत्तकरीन्द्र पर विजय—यह मन मदोन्मत्त हाथीकी तरह है। जैसे उन्मत्त हाथी किसीके वश में नहीं आ पाता, जितने चाहे पुरुषोंका विघात करता है। किसी ओर से अपनी तीव्र गतिसे बाधा पहुँचाता रहता है, ऐसे ही यह मन वशमें किया जाना बड़ा कठिन है और यह कुछ से कुछ कल्पनायें करके अपने आपको दुखी करता रहता है। दुनियाके बड़े धन वाले, प्रतिष्ठा वाले, राज्याधिकार वाले दिखते हैं तो उन्हें देखकर मन तरस उठता है कि मेरेको भी ऐसी चीज प्राप्त हो। अरे अभी तक वह बड़े सुखमें था, अब तृष्णाका उदय आनेसे कष्ट में पड़ गया। तो यह मन मदोन्मत्त हाथी की तरह जीता जानेके लिए शक्य नहीं है। यह मन यह उन्मत्त हाथी मार्गको छोड़कर कुमार्ग पर चलने

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

के लिए उद्यमी रहता है। ऐसा यह मन ज्ञान अंकुशके द्वारा ही वश किया जा सकता है। जैसे उन्मत्त हाथी तीक्ष्ण अंकुशके द्वारा ही वशमें किया जा सकता। मनुष्यका मन बहुत चंचल है। मन तो चंचल होता ही है, पर पशु-पक्षियोंका मन उतना चंचल न होगा जितना कि मनुष्यों का है। पशु-पक्षियोंकी तो सीमित इच्छा है, रोजका वही वही कार्य है, पर यह मनुष्य तो मनके द्वारा न जाने क्या-क्या चीजें नहीं चाह डालता। तो मनुष्यका मन बहुत चंचल है। प्रयत्न करने पर भी यह कुमार्ग पर ही दौड़ता है। बुरी से बुरी वस्तुका अनुभव करनेमें पापके कार्य करके वह हिचकता नहीं है। ऐसा भी यह उन्मत्त मन तब तक ही स्वच्छंद रहता है जब तक कि ज्ञानरूपी अंकुशकी मार इस मन पर नहीं पड़ती। ज्ञान ही मनकी चंचल वृत्तिको रोकता है। ज्ञान द्वारा मनकी चंचल वृत्ति रोके जाने पर वह तत्काल वशमें हो जाता है।

ज्ञानं तृतीयं पुरुषस्य नेत्रं समस्ततत्त्वार्थ विलोकदक्षं।
तेजोऽनपेक्षं विगतांतरायं प्रवृत्तिमत्सर्वजगत्त्रयेपि ॥१६४॥

ज्ञान पुरुषका समस्ततत्त्वार्थ विलोकदक्ष तृतीय नेत्र – ज्ञान मनुष्यका तीसरा नेत्र है, दो नेत्र तो चामके हैं जिनसे रूपका देखना होता है मगर मनुष्यमें ज्ञानका ऐसा उत्कृष्ट बल है कि इस ज्ञानके द्वारा भूत, भविष्य, वर्तमानके सूक्ष्म स्थूल आदिक अनेक पदार्थोंको जानता है। हित अहितका ज्ञान करता है तो यह ज्ञान इन दोनों नेत्रोंसे बढ़कर नेत्र है और इसको विद्वानों ने तीसरा नेत्र कहा है। चर्मचक्षु तो समस्त पदार्थोंको नही देख सकते। ये तो सामने के मूर्तिक मोटे पदार्थ ही देख पायेंगे। ये नेत्र अमूर्तिकको नहीं देख सकते। सूर्यका प्रकाश, दीपकका प्रकाश ये हों तो इन नेत्रोंसे देख सकते हैं, अंधेरा हो तो ये नेत्र देख नहीं सकते। सो इनका देखना पराधीन भी है। प्रकाश आदिकके माध्यमसे ये नेत्र जान सकते हैं, इतने पर भी यदि कोई विघ्न न आये, बीचमें कोई आड़े न हो जाय तब ही सामनेकी वस्तु देख सकते हैं और ये नेत्र बहुत दूर तक भी नहीं देख सकते। भूत, भावी कालको नहीं जान सकते, किन्तु ज्ञानरूपी नेत्र समस्त मूर्तिक पदार्थोंको जानता है। अमूर्तिक पदार्थोंको जान सकता है। प्रकाशकी इसको जरूरत नहीं है, अंधेरेमें भी जान सकता है। हजारों प्रकारके विघ्न आयें तिसपर भी जान सकता है और जो प्रत्यक्ष ज्ञान है, प्रभुका ज्ञान है वह तो तीनों काल और तीनों लोकके पदार्थोंको जान रहा है, तो ज्ञान एक तृतीय नेत्र है। दो नेत्रोंके होने पर भी यदि तृतीय नेत्र न हो तो जान नहीं सकते। ऐसा अद्भुत ज्ञान आदर के योग्य है और इसकी उपासनासे मनुष्य अपना कल्याण करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

निःशेषलोकव्यवहारदक्षो ज्ञानेन मर्त्यो महनीयकीर्तिः ।
सेव्यः सतां संतमसेन हीनो विमुक्तिकृत्यं प्रति वद्धचित्तः ॥१९५॥

ज्ञानकी लोकव्यवहार दक्षता—इस परिच्छेदमें ज्ञानकी महिमा और ज्ञानका फल बताया है। ज्ञानसे ही मनुष्य लौकिक सारे व्यवहारोंमें चतुर होते हैं। लोक व्यवहारमें रहते हुए व्यवहारकी चतुराई भी वही पुरुष पा सकता है जिसको ज्ञान हो। तो ज्ञानसे लोकव्यवहारमें चतुर होते हैं। ज्ञानसे ही अपनी समस्त लौकिक आवश्यकताओंको सुगमतया उपलब्ध कर लेते हैं। ज्ञानका परमार्थ फल तो यह है कि कर्मोंका क्षय हो, मुक्तिका लाभ हो, सो तो वह होगा ही, पर इस समय भी लोकव्यवहारमें रहने वाले प्राणियों को ज्ञान ही मददगार होता है। लोग क्या-क्या चीजें चाहते आजीविकाके लिए, शरीर पोषणके लिए या देशकी भलाईके लिए जो जो वस्तुएँ पा लेना आवश्यक है उन वस्तुओंका संग्रह भी तो ज्ञानसे ही हो सकेगा, जिसको ज्ञान नहीं है वह संग्रह भी क्या करेगा ? लोक-व्यवहार भी क्या करेगा ? इस ज्ञानमें ही जैसे समस्त लोक-व्यवहारमें मनुष्य चतुर होते हैं। ऐसे ही ज्ञानसे अपनी समस्त आवश्यकताओंको सुगमतासे प्राप्त कर लेते हैं। मनुष्यकी निर्मल कीर्ति ज्ञानसे ही फैलती है। यह लौकिक लाभकी बात कही जा रही है क्योंकि लोगोंकी दृष्टि लौकिक लाभ पर अधिक होती है तो वह भी ज्ञान बिना नहीं हो पाती।

ज्ञानसे निर्मल कीर्तिका एवं वैराग्यका अभ्युदय—ज्ञानसे ही मनुष्यकी निर्मल कीर्ति फैलती है। जिस मनुष्यमें ज्ञान होगा वही ऐसे योग्य कार्य कर सकेगा कि जिससे लोगोंका उपकार हो और लोकोपकारके आधार पर ही उसकी कीर्ति विस्तृत होती है। तो जो पुरुष ज्ञानसे ज्ञान वाले काम करेगा उसकी कीर्ति फैलती है। ज्ञानसे ही मनुष्य सज्जनोंकी सेवाका पात्र बनता है। ज्ञान हो और उस ज्ञान द्वारा लोगोंको लाभ पहुँचा हो तो ऐसे पुरुषोंकी बड़े-बड़े सज्जन भी सेवा किया करते हैं। मनुष्यों में जो एकका दूसरे के प्रति उपग्रह चलता है वह जिसको जैसा ज्ञान हो उसके साथ वैसा ही सेवाभाव चलता है। शिष्यजन ज्ञानार्जनके अर्थ गुरुकी सेवा करते हैं। जो जिसका अर्थी है वह उसके लाभके लिए उस वस्तुके अधिकारीकी सेवा करता है। तो वह सब ज्ञानका ही तो फल है। ज्ञान बिना वह योग्यता नहीं आती जिस योग्यताके होने पर बड़े-बड़े धीमान श्रीमान भी उसकी सेवा सुश्रुषा करें। ज्ञानसे ही सांसारिक समस्त विषयोंसे वैराग्य जगता है। ये इन्द्रियके विषय ये बाहरी पदार्थ ये भोगने योग्य नहीं हैं। इनके भोगनेका परिणाम खोटा है। यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बात ज्ञानसे ही तो समझ सकेंगे । वैराग्यका आधार ज्ञान हुआ करता है । जो पुरुष ज्ञानके बिना वैराग्यकी मुद्रा ग्रहण कर लेते हैं उनका वैराग्य ठिक नहीं पाता अथवा वह सही दिशा में नहीं पहुँचता है, जिसको ज्ञान है जिससे कि वैराग्य जगा है उन वस्तुओं की असारता, भिन्नता, अहितकारिता का बोध है वह ही पुरुष उन विषयभोग साधनोंसे भली-भाँति विरक्त होगा ।

ज्ञानसे मोक्षमार्ग प्रगति––सांसारिक समस्त विषयोंसे वैराग्य ज्ञानसे ही जगता है और जब विषयोंसे वैराग्य जगेगा तो यह जीव मोक्षकी तरफ लगेगा । मोक्ष कहते हैं आत्माके अकेले रह जाने को । जहाँ शरीर, कर्म, विकार आदिक कोई भी पर तत्त्व न रहे, केवल आत्मा ही रहे उसीको सिद्ध अवस्था कहते हैं । तो ऐसी सिद्ध अवस्थाका लाभ उस ही पुरुषको होगा जो इस समय भी केवल ज्ञानमात्र आत्म-तत्त्वका परिज्ञान किए हुए हैं । जिसने वस्तु के बारे में सम्यक् निर्णय बनाया है कि प्रत्येक पदार्थ अपने द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे है, परके द्रव्य, क्षेत्र, काल, भावसे नहीं, वही पुरुष वस्तुओंकी स्वतन्त्रता का परिचय कर सकता है और केवल निज शुद्ध आत्मतत्त्वकी दृष्टि रख सकता है, जिसके फल में आगे बढ़-बढ़कर यह जीव मोक्ष प्राप्त कर सकता है । ज्ञानसे ही हित अहितका विचार होता है । यदि ज्ञान नहीं है तो कैसे समझें कि यह हितरूप है और यह अहितरूप है । वास्तव में हित रूप निज आत्मतत्त्व ही है । जो अपने आपका स्वत: सिद्धस्वरूप है उसही की दृष्टि होना, उसको ही आत्मस्वरूप मानना, यह ज्ञान वास्तवमें हित रूप है और इस शुद्ध अंतस्तत्व को छोड़कर विकार भावमें लगना उनको आत्म-स्वरूप मानना, उनसे ही अपना भला समझना, यह सब अहित रूप है । तो ऐसा हित और अहितका विचार ज्ञानसे ही होता है । सो यह ज्ञान इस जीवका बड़ा वैभव है । इस वैभवसे ही यह जीव अमीर कहलाता है । बाह्य पदार्थ तो जब कभी आये और कभी ही चले गए । उनका भी संयोग उनके ही कारण बना है । उस पर इस जीवका अधिकार नहीं है, क्योंकि परद्रव्य पर किसी भी जीवका अधिकार नहीं हो सकता । तो यों कोई भी परद्रव्य किसी भी परका सम्पर्क इस जीवके लिए हितकारी नहीं है । हितकारी है अपने आपके सहज चित् प्रभु आत्मस्वरूप की दृष्टि । जिन जीवों की दृष्टि इस निज सहजस्वरूप पर पहुँचती है, इसे ही आत्मस्वरूप मानते हैं । वे पुरुष सर्व आकुलताओं और बाधाओं से दूर हो जाते हैं क्योंकि अब उनके अशुभ संकल्प नहीं चलते ।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मार्थकामव्यवहारशून्यो विनष्टनिःशेषविचारबुद्धिः ।
रात्रिंदिवं भक्षणसक्तचित्तो ज्ञानेन हीनः पशुरेव शुद्धः ॥१९६॥

विचारहीन रातदिन भक्षणसक्तचित्त मनुष्यकी पशुतुल्यता—जो पुरुष ज्ञानसे रहित हैं, अज्ञानी हैं याने धर्म अर्थ कामके व्यवहार से बिल्कुल अपरिचित हैं, उन्हें हित और अहितका ज्ञान नहीं होता । जो पुरुष धर्म अर्थ कामकी विधिसे भी परिचित हैं, दया, पूजा, दान आदिक ये धार्मिक कर्तव्य हैं और गृहस्थजनोंका धन अर्जन करना भी उस पदवीमें कर्तव्य है और परिवार जनोंका पोषण करना, उनकी सेवा करना काम भी उस गृहस्थीमें कर्तव्य बन जाता है। तो ऐसे जो धर्म अर्थ कामके व्यवहारसे भी अपरिचित हैं वे पुरुष तो आगे कभी बढ़ ही नहीं सकते न तो अपने हितका ही विचार कर सकते और न अहितका त्याग कर सकते। तो ज्ञानकी तो आवश्यकता इस जीवको प्रत्येक भूमिकामें है। ऐसे अज्ञानी जीवोंका एक कर्तव्य यह ही बन जाता है कि वे रात-दिन खाते पीते रहते हैं और इसी कारण वे इस संसारमें पशु तुल्य गिने जाते हैं याने जिन लोगोंको धर्म कार्यका, दया, दान, पूजा भक्ति सेवा आदिक इनका भी ज्ञान नहीं है ऐसे जीव ज्ञानसे हीन होने के कारण आगे तो बढ़े हुए बन नहीं सकते । फल यह होता है कि स्वच्छंद मन हो जाने से रात दिन विषयभोग साधनों में इनका उपयोग लगता है, सो जो ऐसे ज्ञानसे हीन हैं और आचरणसे भी हीन हैं वे पुरुष तो कोरे पशु ही कहे गए हैं । मनुष्य और पशुमें अन्तर तो विशेष और अल्प ज्ञानका होता है । मनुष्योंमें ज्ञान विशेष है, पशुओं में ज्ञान अल्प है यही तो अन्तर है । यदि कोई पुरुष अल्पज्ञानी रहे और आचरण भी स्वच्छंद रहे तो उसे पशु ही तो कहा जायगा, क्योंकि विशेष ज्ञान न होने से पशु भी हित अहित का विचार नहीं करता । यह मनुष्य भी ज्ञान रहित होनेसे हित अहित का विचार न कर पाया। तो जो गृहस्थ हित अहित के विचारसे रहित है, धर्म, अर्थ, काम त्रिवर्ग भी सही समान सम्पादन नहीं करता है उस मनुष्यमें और पशुमें कोई भेद नहीं है।

तपोदयादानशमक्षमाद्याः सर्वेऽपि पुंसां महिता गुणा ये ।
भवंति सौख्याय न ते जनस्य ज्ञानं बिना तेन तदेषु पूज्यं ॥१९७॥

ज्ञानहीन मनुष्यके अन्य गुणोंकी असुखदायिता—इस संसारके जितने मुख्य गुण हैं जिनके धारण करने से लोगोंको सुख मिलता है, वह सब ज्ञानके बल से ही सुखकारी होता है। मनुष्योंमें तप ज्ञानकी मुख्यता है। जो मनुष्य इच्छारहित है, लौकिक आकांक्षायें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जिसके चित्तमें नहीं हैं वह पुरुष तपस्वी कहलाता है। शरीरसे चाहे ऊंचे तप करता रहे किन्तु मनमें लौकिक वस्तुओंकी इच्छी बनी रहे तो वहाँ तप नहीं होता क्योंकि कर्मोंका सम्वर, कर्मोंकी निर्जरा शरीरकी चेष्टाके कारण नहीं होती किन्तु आत्माके इस उपयोग के कारण होती है। सो इच्छाओंका रोकना तप कहलाता है। पाप कार्योंसे विरक्त होना व्रत कहलाता है, यह मनुष्यों का मुख्य गुण है। पाप कार्य हैं हिंसा, झूठ, चोरी, परिग्रह, दूसरों को सताना, किसी की झूठी बात कहना, किसी की चीज चुरा लेना, किसी नारी पर बुरी दृष्टि रखना, परिग्रह का लालच बनाये रखना, यह सब पाप है। इन पापों से विरक्त होना व्रत कहलाता है। तो व्रत भी मनुष्योंका मुख्य गुण है। दान—अपने पास वस्तु हो, धन हो, द्रव्य हो और आवश्यकतासे अधिक हो तो उसका उपयोग दूसरे जीवोंके हितमें करना दान कहलाता है। ऐसा ज्ञानी पुरुष अपनी आवश्यकताओं को बहुत कम रखता है और धन का उपयोग दूसरों के उपकार के लिए करता है। यह मनुष्यका मुख्य गुण है। सम-कषायें कम होना, शान्ति रखना, अभिमान न होना, मायाचार न होना, लालच न होना, ऐसा कषायोंके समनको सम कहते हैं। यह उपशम, मंदकषायपना मनुष्यका मुख्य गुण है। दया—प्राणियोंपर करुणा करना, कोई दुःखी जीव है उसका दुःख जैसे दूर हो उस प्रकारसे उसकी सेवा करना दया गुण है। यह मनुष्यका मुख्य गुण है। क्षमा भी मनुष्यका बड़ा हित-कारी गुण है। क्षमाशील पुरुष ही उदार कहलाता है। दूसरे लोग कुछ भी अपराध करें, अपनी निन्दा करें या किसी प्रकारकी बाधा दें तो उनपर क्षमाभाव रखना और यह समझ बनाये रहना कि ये जीव तो स्वरूपतः निरपराध हैं, पर ऐसा ही कर्मोंका उदय है कि जिससे इन्होंने ऐसा भाव बनाया है और ऐसी चेष्टा की है, इस आत्मद्रव्यका कुछ अपराध नहीं, ऐसा समझकर उस पर क्षमाभाव रखना यह भी मनुष्य का मुख्य गुण है। तो जो मनुष्यके मुख्य गुण हैं, जिनके धारण करनेसे स्वको परसे सुख मिलता है, वे सब गुण ज्ञानके द्वारा ही तो प्राप्त होते हैं। ज्ञान न हो तो ये मुख्य गुणोंके सुख भी नहीं प्राप्त हो सकते। इस कारण समस्त गुणोंमें भी ज्ञान गुण पूज्य है और मुख्य है।

ज्ञानं बिना नास्त्यहितान्निवृत्तिस्ततः प्रवृत्तिर्न हिते जनानां।
ततो न पूर्वार्जितकर्मनाशस्ततो न सौख्यं लभतेऽप्यभीष्टं ॥१९८॥

ज्ञानके बिना सौख्य लाभकी असम्भवता—ज्ञानके बिना मनुष्यके अहितकी निवृत्ति नहीं होती। जो पदार्थ अहितकारी है उससे हटने की बात कैसे बनेगी जिसको उस पदार्थके

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

विषयमें अहितकर्ताका भी ज्ञान नहीं है। तो ज्ञानके बिना मनुष्योंके अहित कार्योंसे निवृत्ति कैसे बनेगी ? और जब अहित कार्योंसे निवृत्ति नहीं होती तो हित कार्योंमें प्रवृत्ति नहीं हो सकती। ये मनुष्य अहित को छोड़ें और हितमें लगें। यह बात ज्ञानसे ही तो सम्भव है। तो जिसको ज्ञान नहीं है वह अहितको छोड़ नहीं सकता और हित कार्योंमें लग नहीं सकता। इसलिए इस आत्माके उपयोग में ज्ञानका बड़ा भारी सहयोग है। जिस जीवके अहितसे निवृत्ति नहीं, हितमें प्रवृत्ति नहीं, उसके पूर्व उपार्जित कर्मोंका नाश नहीं हो सकता। कर्मोंका नाश ज्ञान द्वारा ही होता है। कहीं कर्मोंको देख-देखकर पकड़-पकड़कर उन्हें मसोला जाय, रगड़ा जाय ऐसा तो नहीं हो सकता। एक आत्मा अपने ज्ञानस्वरूप की सम्हाल करले तो स्वयं ही ऐसा नियोग है, निमित्त नैमित्तिक योग है कि ये कर्म अपने आप दूर हो जायेंगे। तो ज्ञानके ही कारण अहितमें प्रवृत्ति होनेसे पूर्व अर्जित कर्मोंका नाश होता है। यदि ज्ञान नहीं है तो कर्म क्षय नहीं हो सकता और जब कर्मोंका क्षय नहीं हो पाता तो उसे मोक्षसुख भी प्राप्त नहीं हो सकता, क्योंकि मोक्ष होता है समस्त कर्मोंके विनाश से। कर्मों का विनाश होता है आत्माके अपने आपके ज्ञानस्वरूप की सम्हाल से। तो लोकमें जीवोंका सर्वोत्कृष्ट वैभव ज्ञान है। जिसने अपने ज्ञानस्वरूपकी सम्हाल कर ली है वह पुरुष कृतकृत्य हो गया। अब उसको संसारमें किसी भी प्रकारका संकट नहीं रहता। जो पुरुष ज्ञानदृष्टिसे दूर है वह बाह्य पदार्थोंमें प्रवृत्ति करता है और बाह्य पदार्थोंमें लगाव रखने का फल है कर्मबंधन, जिसके उदयमें संसारमें रुलना पड़ता है। तो समस्त संकटोंका विनाश ज्ञान द्वारा ही हो सकता है। दूसरा कोई उपाय ऐसा नहीं है कि जिससे इस जीवके संकट दूर हो सकें।

क्षेत्रे प्रकाशं नियतं करोति रविर्दिनेऽस्तं पुनरेव रात्रौ।
ज्ञानं त्रिलोके सकले प्रकाशं करोति नाच्छादनमस्ति किंचित्॥१९९॥

ज्ञानका सर्वत्र प्रकाश—ज्ञानका प्रकाश सूर्यसे भी अधिक प्रकाश है। वैसे लोग कहावत में भी कहते हैं कि जहाँ न जाय रवि, वहाँ जाय कवि। जैसे अंधकारवाली गुफायें, महलका आन्तरिक भाग यहाँ रविका प्रकाश नहीं होता। सूर्यका उजाला भी नहीं है मगर उनका वर्णन कवि लोग बड़ी विधिपूर्वक किया करते हैं। तो देखो वहाँ कवि की गति हो गई, पर सूर्य की गति नहीं है तो कविकी गतिके मायने ज्ञानकी गति। यह तो एक लौकिक ज्ञानकी बात कहा है, पर जिन पुरुषोंके आत्माके सहजस्वरूप का ज्ञान है उनके ज्ञानका प्रकाश तो करोड़ों सूर्यसे भी अधिक है। सूरज तो सब जगह प्रकाश नहीं कर पाता मगर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञान सब पदार्थोंका प्रकाश करता है। ज्ञान करता है सूक्ष्म हो, गुप्त हो, भूतका हो, भविष्यका हो, सबका ज्ञान ज्ञान कर लेता है तो सूर्यमें और ज्ञानमें एक तो अन्तर यही बहुत है कि सूर्य सर्वत्र प्रकाश नहीं कर पाता, ज्ञान सर्वत्र प्रकाश करता है। तो अन्तर यह है कि सूर्य जिस क्षेत्रमें प्रकाश कर पाता है उस क्षेत्रमें भी सदा नहीं करता, रात्रिको नहीं करता, दिनमें करता है, पर ज्ञान तो सदैव ज्ञान करता रहता है। इसका प्रकाश सतत् चलता है। तीसरी बात यह है कि सूर्यके आड़े यदि मेघ आ जाय तो सूर्य का प्रकाश बंद हो जाता है पर जिस पुरुषके ज्ञान प्रकट हुआ है वह तीन लोक और तीन कालके समस्त पदार्थोंको बेरोकटोक जानता है। उस पर अब किसीका आवरण नहीं चल सकता। इस अन्तरके बाबजूद महान अन्तर तो यह है कि यह प्रकाश तो पौद्गलिक है किन्तु ज्ञान चैतन्यतत्त्व है और जिसको यह ज्ञान पूर्णतया विकसित है, जहाँ पर उपाधि साथ न रही, शुद्ध आत्मा हो गया है उसका ज्ञान बेरोक-टोक तीन लोक तीन कालके समस्त पदार्थोंमें पहुँचता है अर्थात् सबको जानता है। तो यह जो ज्ञानकी महिमा कही जा रही यह दूसरे की बात नहीं कही जा रही यह खुद अपनी बात कही जा रही। प्रत्येक जीव ऐसे ज्ञान-स्वरूपका धनी है। सबमें यह सहज अनन्त ज्ञान अन्तः विकसित है। जो पुरुष इस ज्ञान-स्वरूपकी दृष्टि कर लेता है और अपने आपको ज्ञानमात्र अनुभव लेता है उन पुरुषोंका प्रकाश अतुल है, वे सदा तृप्त रहते हैं। सहज आनन्द रससे विभोर रहते हैं। तो इस लोकमें जो बाह्य दृश्य पुद्गल पदार्थ हैं उनका संग्रह करना बिल्कुल व्यर्थ है, व्यर्थ ही नहीं, अनर्थ हैं, क्योंकि बाह्य वस्तुके लगावसे इस जीवके मोह कलंककी वृद्धि ही होती है इसलिए बाह्य पुद्गलका या मायामय जगतमें कीर्तिके सम्पादनका जो आशय लगा हुआ है यह आत्माका कलंक है, आत्माके लिए लाभकारी नहीं है और ज्ञान-स्वभाव निज अन्तस्तत्त्वका मनन, दर्शन, अनुभवन हो तो यह इस जीवका अलौकिक वैभव है। जो जीवका स्वयं स्वाधीनतया अपने ही ज्ञान-बलसे उपार्जित किया है ऐसी समग्र बाह्य वस्तुओं में हितकी बुद्धि छोड़कर एक इस निज चैतन्य स्वरूपमें ही हित बुद्धि करना सुखार्थीका मुख्य कर्तव्य है। अपने आपको शुद्ध ज्ञानमात्र अमूर्त अविकार स्वरूपका ही मनन रखना और इस ही रूप अपनेको मानना यह बहुत बड़ी वीरताका कार्य है, जिसके प्रतापसे संसारकी व्याधियाँ, संसारके सर्व संकट समाप्त हो जाते हैं।

भवार्णवोत्तारणपूतनावं निःशेषदुःखेंधनदाववह्निं ।
दशांगधर्मं न करोति येन ज्ञानं तदिष्टं न जिनेंद्रचन्द्रैः ।।२००।।

http://sahjanandvarnishastra.org/

दशाङ्गधर्ममय न करने वाले ज्ञानकी ज्ञानरूपसे इष्टताका अभाव— इस परिच्छेदमें ज्ञानकी महिमा और ज्ञानका फल बताया जा रहा है। ज्ञान कौनसा सही कहा जाय इस विषयमें वर्णन हुआ है। अब बतला रहे हैं कि जिस ज्ञानके बलसे दस अंग वाले धर्म न बोले जा सकें वह सम्यग्ज्ञान जिनेन्द्र देवने इष्ट नहीं माना। याने ज्ञानबल करता है तो उत्तम क्षमा मार्दव आदिक रूप प्रवृत्ति होनी ही चाहिए। कोई क्रोध अधिक करे और कहे कि मुझे सम्यग्ज्ञान है, घमंड मायाचार बहुत करे और कहे कि सम्यग्ज्ञान है तो यह नहीं हो सकता। सम्यग्ज्ञान वास्तवमें यह है कि जिसके बलसे क्षमा आदिक धर्मोंका पालन हो सके। परमार्थतः देखा जाय तो क्षमा आदिकमें ज्ञानका प्रकाश ही मिल रहा है, ज्ञान विकार न करे, केवल ज्ञातादृष्टा रहे तो उसमें क्षमा, मार्दव, आर्जव आदिक सभी धर्म आ गए। प्रवृत्ति की दृष्टि से १० प्रकार बताये गये हैं, पर उनमें जो मौलिक प्रभाव है, बल है वह एक ही है कि विकार रहित ज्ञानका प्रकाश बना रहे यह ही वास्तवमें धर्म पालन है, एक क्षमा आदिक दशांग धर्म संसार समुद्र से पार कर देने के लिए नौकाके समान है। जैसे नौकाके द्वारा नदी और समुद्र पार कर लिये जाते हैं ऐसे ही दशांग धर्म के द्वारा संसार समुद्र पार कर लिया जाता है। यह दशांग धर्म समस्त जन्म मरणके दुःखों को जलानेके लिए बनकी अग्निकी तरह है। जैसे बनकी आग सारे वृक्षोंको जला देती है ऐसी ही दशांग धर्म ये जन्म मरण आदिक सब दुःखोंको भस्म कर देता है। तो जिसे ज्ञानबल से उत्तम क्षमा आदिक १० प्रकार के धर्मोंका पालन न हो वह वास्तवमें ज्ञान नहीं कहलाता। ज्ञानका फल है अहितसे अलग होना और हित में लग जाना। वह दशांग धर्म हितरूप है और उसके विरुद्ध क्रोधादिक भाव ये अहित रूप हैं। तो अहितसे हटें और हितमें लगें, यह ही ज्ञानका फल है। सो यदि यह फल नहीं प्राप्त होता तो वह ज्ञान वास्तवमें ज्ञान नहीं है।

गंतुं समुल्लंघ्य भवाटवीं यो ज्ञानं बिना मुक्तिपरीं समिच्छेत्।
सोंऽधोऽधकारेषु विलंघ्य दुर्गं बनं पुरं प्राप्तुमना विचक्षुः ॥ २०१ ॥

ज्ञानके बिना मुक्तिकी असंभवता—कोई पुरुष चाहे कि ज्ञानके बिना इस संसार रूपी अटवीका उल्लंघन करके मुक्ति पुरीमें पहुँच जायें तो यह बात बिल्कुल असम्भव है। ज्ञानमें बहुत ज्ञान न हो, जैसे आगमका बहुत बड़ा ज्ञान है तो इतना तो ज्ञान हो कि जिसमें स्वपर भेद विज्ञान जग रहा हो और आत्माका जो सहज स्वरूप है वह उसकी दृष्टि में आ गया हो, इतना भी अगर नहीं है तो वह ज्ञान सम्यग्ज्ञान नहीं है। और वह चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कि मैं मुक्तिपुरी पहुँच जाऊँ तो वह बहुत असम्भव है। जैसे उदाहरण दिया है कि कोई पुरुष अंधा है और अंधकार में ही सघन बन पार करके, किलेको पार करके नगरमें पहुँचना चाहता है तो वह एक कल्पना भर करता है, पहुँच कैसे सकता ? एक तो वह अंधा है, दूसरे अंधेरी रात है। अगर सूर्यका उजेला भी हो तो कुछ न कुछ धुँधला सा नजर भी आ सकता, उससे नगरमें पहुँचनेमें घबड़ाहट कम हो सकती, पर एक तो वह अंधा और दूसरे अंधेरी रात तो उसका विकट जंगलका पार करना, किलेका पार करना और नगरीमें प्रवेश कर जाना असम्भव है, ऐसे ही कोई पुरुष ज्ञानके बिना केवल बाहरी आचरणसे चाहे कि मैं इस संसार समुद्रको पार करके मुक्तिनगरीमें पहुँच जाऊँगा तो यह उसके लिए असम्भव बात है। अब इस मनुष्यके सामने अंधेरा क्या आता है कि नाना तरहके मत हैं, उन मतोंमें किसीने किसी तरह धर्मका रास्ता बताया है किसीने किसी तरह तो वह एक बड़ा अंधकार है कि जहाँ कुछ निर्णय ही नहीं हो पाता कि वास्तव में तथ्य क्या है ? तो ऐसी अवस्थामें भी जो पुरुष सम्यग्ज्ञानके बिना ही इन अनिष्ट गलियोंको त्यागकर मोक्षमें पहुँचना चाहता है तो उसका यह प्रयास सफल नहीं हो सकता।

ज्ञानेन पुंसां सकलार्थसिद्धिर्ज्ञानादृते काचन नार्थसिद्धिः।
ज्ञानस्य मत्वेति गुणान् कदाचिज्ज्ञानं न मुंचंति महानुभावाः॥ २०२॥

ज्ञानसे सकलार्थसिद्धि — ज्ञानके माहात्म्यके सम्बंधमें अधिक क्या कहें, सबका सारभूत यही तथ्य निकला कि ज्ञानसे ही समस्त प्रयोजनोंकी सिद्धि होती है। अज्ञानसे कुछ भी सिद्धि नहीं होती। देखिये धर्मपंथमें इतना तो कम से कम चाहिए हो कि स्वपर का भेदविज्ञान बने, शरीर न्यारा, कर्म न्यारा, विकार जुदे और उन सबसे न्यारा मैं ज्ञानमात्र स्वरूप हूँ। अब इतनी बात समझने के लिए द्रव्य, गुण, पर्यायका परिचय करना चाहिए। शरीर पुद्गल द्रव्यका ढेर है। इसमें पुद्गल द्रव्य जैसा ही परिचय करना चाहिए। मेरी सत्ता चैतन्यमात्र है, मेरा शरीरसे क्या सम्बंध ? कर्म भी सूक्ष्म पौद्गलिक ढेर हैं। उसमें पौद्गलिक जैसा ही परिणमन चलता है। मैं चेतना मात्र हूँ। मेरा कर्मोंसे क्या सम्बंध ? जो रागादिक विकार जगते हैं तो है तो आत्माकी परिणति, जब कि यह अशुद्ध अवस्थामें है मगर ये विकार आत्माके स्वभावसे तो नहीं उत्पन्न हुए। ये कर्मोदय का निमित्त पाकर हुए। तो जो आत्माके स्वभावमें न हो तो ये मेरे नहीं हैं विकार क्योंकि ये पराधीन हैं, नैमित्तिक हैं, मेरे स्वरूपमात्र नहीं हैं, इनसे मैं निराला हूँ। तो जो अपनेको सर्वपर और

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पर भावोंसे विविक्त निरख लेगा उसका मोक्षमार्गके योग्य ज्ञान उत्पन्न हुआ समझियेगा। ऐसा ज्ञान प्राप्त हुए बिना उपयोगमें यह सहज परमात्मस्वरूप आ जाय, स्वानुभव बन जाय सो बात नहीं हो सकती। तो जितना भी हमारा इष्ट है, मोक्षमार्गका प्रयोजन है वह ज्ञानसे ही सिद्ध होता है। इसके अतिरिक्त लौकिक प्रयोजन भी ज्ञानसे सिद्ध होते हैं। लौकिक दृष्टिसे भी देखें तो जो व्यापारी, सेठ, दूकानदार अपने व्यापारमें सफल हो रहा है तो ज्ञान तो मलिन कर रहा, कैसी चीज लेना देना व्यवहार करना, तो लौकिक काम भी ज्ञान बिना नहीं बनते, फिर मोक्षका मार्ग और रत्नमयका कार्य यह ज्ञान बिना कैसे हो सकता ? तो जो लोग सम्यग्ज्ञानके बिना इस संसाररूपी अटवीको पार करना चाहते हैं वे असफल प्रयास चाह रहे हैं, उनको सफलता नहीं मिलती है और अन्तमें वे संसारमें ही भ्रमण करते हैं।

वरं विषं भक्षितमुग्रदोषं वरं प्रविष्टं ज्वलनेऽतिरौद्रे।
वरं कृतांताय निवेदितं स्वं न जीवितं तत्त्वविवेकमुक्तं ॥२०३॥

तत्त्वज्ञानरहित जीवनकी व्यर्थता—तत्त्वज्ञानसे रहित होकर जीना इस संसारमें भला नहीं है। यह जीव अनादिकालसे अनेक भवोंमें, अनन्त भवोंमें जीता ही तो चला आया है, पर वह जीवन किस कामका रहा कि जहाँ दुःखोंसे छूटने का उपाय न बना सके। यही बात अपने लिए कह रहे कि तत्काल प्राणोंके हरने वाले विषका खा लेना तो भला है मगर तत्त्वज्ञान से रहित जीवन संसारमें भला नहीं। अन्तर क्या आया कि विष खा लेने से तो वह एक ही भवमें अपने प्राण गवा सका, इस भवके खाये विषका फल अगले भवमें तो नहीं मिलता। तो एक ही बार मरण हुआ, मगर तत्त्वज्ञानसे रहित जीवन रहे तो वहाँ विषय कषायोंके प्रसंग आयेंगे ही। अज्ञानमें विषय कषायकी भावना होती ही है। तो उस अज्ञान भावमें जो विषय कषाय सेये गए उनके फलमें अनेक भवोंमें मरण करना पड़ेगा, जन्म लेना होगा, मरण करना होगा, तो विष खा लेना उतना बुरा नहीं रहा जितना बुरा तत्त्वज्ञानसे रहित जीवन है। दूसरा उदाहरण दे रहा तुलनात्मक कि भयंकर जल रही हुई अग्निमें प्रविष्ट होकर जलकर राख हो जाना भला है परन्तु तत्त्वज्ञानसे रहित होकर जीना इस संसारमें भला नहीं है। अन्तर यही आयेगा कि अग्निमें प्रविष्ट होकर जल जाय तो एक ही बार तो मरण हुआ मगर अज्ञान और मोहमें रहकर जीने से अनेक भवोंमें मरण होगा। इसी प्रकार लोकदृष्टि के अनुसार यमराजकी गोदमें चले जाना भला है याने मरण कर जाना भला है, परन्तु तत्त्वज्ञान से रहित होना जीना भला

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नहीं है। आज यह दुर्लभ मानव जीवन पाया तो यह मानव जीवन बड़ा दुर्लभ है। पुरुषोंमें भी उच्च कुलमें जन्म लेना दुर्लभ है और वहाँ भी जैन शासनका मिलना दुर्लभ है और उसमें भी विद्वान गुरुजन इनका समागम मिलना दुर्लभ है। उपदेश मिलना दुर्लभ है। इतने सब योग होने पर भी यदि मोह न छोड़ा, विषय कषायोंमें ही लीन रहे, इन्हीं में ही जिन्दगी गुजारी तो समझो कि एक बड़ा सुन्दर अवसर खोया और मर कर कीड़ा-मकोड़ा, पेड़-पौधा आदि कुछ भी बनना पड़ेगा। फिर वह कुछ वश न चलेगा। इस कारण तत्त्वज्ञानसे रहित होकर जीवन भला नहीं है।

शौचक्षमासत्यतपोदमाद्या गुणाः समस्ताः क्षणतश्चलंति ।
ज्ञानेन हीनस्य नरस्य लोके वात्याहता वा तरवोऽपि मूलात् ॥२०४॥

ज्ञानहीन पुरुषके अन्य गुणोंका भी शीघ्र विनाश—जैसे आंधीका तेज वेग आये तो पेड़ धड़ाधड़ गिर पड़ते हैं ऐसे ही जो पुरुष ज्ञानसे हीन हैं, अज्ञान और मोहका वेग जिन पर आया है उनके शौच, क्षमा, तप, दमन आदिक गुण क्षण भरमें विलीन हो जाते हैं। अज्ञानी पुरुष शौचादिक गुणोंको निश्चल रीतिसे दृढ़ प्रतिज्ञ हो पालन नहीं कर सकते। समय पड़ने पर वे शौचादिक गुणोंको छोड़ बैठते हैं, किन्तु जो ज्ञानी है, जिसने अन्दरमें ज्ञानका प्रकाश पाया है वह शौचादिक गुणोंको नहीं छोड़ सकता। निर्लोभता होना, क्षमा आना, सरलता आना, यह सब ज्ञानप्रकाशमें ही हो सकता है। मोह और अज्ञानमें ये गुण नहीं आया करते, क्योंकि निज सहज स्वरूपका ज्ञान होने पर उसको समस्त परकीय घटनाओंसे उपेक्षा हो जाती है। वह जानता है कि पर पदार्थोंकी कैसी भी परिणति हो, उन परिणतियोंसे मेरेमें कुछ भी सुधार बिगाड़ नहीं होता है। मैं ही अज्ञान दशामें रहूँ तो मेरा बिगाड़ है, तत्त्वज्ञानमें आऊँ तो मेरा सुधार है। इस प्रकार वह अपने सहज ज्ञानस्वभाव की धुन में रहता है और इसी कारण उसमें गुणोंका विकास होता चला जाता है।

माता पिता बंधुजनः कलत्रं पुत्रः सुहृद् भूमिपतिश्च तुष्टः ।
न तत्सुखं कर्तुमलं नराणां ज्ञानं यदेव स्थितमस्तदोषं ॥ २०५ ॥

ज्ञानकी अलौकिकसुखकारिता—निर्दोष पवित्रज्ञान जिस सुखको उत्पन्न कर सकता है उस सुखको बड़े प्रेमी संतुष्ट माता-पिता स्त्री पुत्र मित्र राजा आदिक कोई भी प्रदान नहीं कर सकते। प्रत्येक जीव अपने अपने ज्ञानके अनुसार ही सुख दुःख पाया करता है। जैसा आत्म-स्वरूप है वैसा ही अपनेको जाने और सहज ज्ञाता मात्रकी स्थिति बनाये तो उसको अनुपम सुख प्राप्त होता है। इस सुखको कोई दूसरा दे सकता क्या ? ज्ञान ज्ञान-स्वभावमें रहे, यह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

स्थिति दूसरोंके द्वारा नहीं दी जा सकती। यह खुद ही खुदमें की जाने की बात है, और जिसको यह ज्ञानदृष्टि नहीं मिली, देहमें ही आत्मबुद्धि रही आयी तो वह पुरुष दूसरे जीवों से प्रेम रखेगा तो सीमा तोड़ कर रखेगा अर्थात् कल्पनामें कितना ही बखेड़ा बुनकर लोगों में मोह रखेगा और कदाचित लोगोंका पालन प्यार करते हुए भी और उनसे कोई बड़ी चोट वाली घटना मिल जाय तो यह अज्ञानी जीव और को तो बात क्या, किसी भी विधिसे आत्महत्या तक कर डालता है। तो जो पुरुष आत्मघात करते हैं उनको अपने ज्ञानस्वरूप का पता नहीं है। बाहरी घटनाओंसे सुख दु:खकी श्रद्धाकी है, उनका मोह बड़ा प्रबल है। अपने प्राण गवां कर भी अपने को सुख शान्ति मिलेगी, ऐसी उनके आस्था बनी है। तो यह संक्लिष्ट होकर, दु:खी होकर जो आत्मघात किया जाता है वह केवल पापबंधका कारण बना। ज्ञानी होने पर भी थोड़ा बहुत भय तो शेष रहता है और वह गृहस्थोंके किसी कठिन उपद्रवोंके कारण हो जाता है पर साधुजन कोई प्रकार का भय नहीं करते। कैसे ही उपद्रव आयें यहाँ तक कि प्राणघात भी हो रहा हो फिर भी रंच भय नहीं मानते, वे अपने ज्ञानस्वरूप की सम्हाल बनाये रहते हैं। पर जब तक गृहस्थ जीवन है, चारित्रमोहका उदय छाया है तब तक वे यथा समय कुछ विचलित होते हैं, मगर स्वयं आत्महत्या कर लें, इतनी बात ज्ञानीजनों के नहीं होती। श्रेणिक राजाका जो उदाहरण है तो उनके लड़के कुणिक ने अपनी आत्महत्या नहीं की, किन्तु वह स्थान ही ऐसा था जहाँ पर उनका लड़का कुणिक उनको रोज पीटता था। शारीरिक बहुत कष्ट देता था। तो एक बार जब उसने असमय में आते हुए देखा तो वह कुणिक तो बेचारा आया पछताता हुआ पिता को जेल से निकालने के लिए, मगर श्रेणिकने देखा कि यह कुसमयमें आया है, अभी तो यह पीटकर गया था, कुछ और पिटाई करने आया है, सो इस डरके मारे श्रेणिकका शरीर कँप गया, उछल गया और ऐसी ही स्थितिमें ऊपर जो कीला था उसका चोट लग गया जिससे उसका प्राणघात हो गया। मैं इस कीलेमें सिर मारकर मरूँ, ऐसी बुद्धि श्रेणिकने नहीं की किन्तु डरके मारे उसका शरीर ही कँप गया। ज्ञानी पुरुष तो अपने आपके ज्ञानस्वरुपको निरखकर तृप्त रहा करते हैं। उनके तो स्वयं ही आनन्द बना हुआ है। पर कितने ही गृहस्थोंकी घटनायें हैं ऐसी कि जिनमें शारीरिक वेदनावोंके कारण चित्त बाहर डगमगाता रहता है पर प्राय: इन ज्ञानियोंके यह ही होता कि अपने सहज ज्ञानस्वरूपको निहारते हैं और अनुपम अतुल सुख प्राप्त करते हैं। उस सुखको कितने ही प्रेमी कुटुम्बीजन हों, मित्रजन हों, वे कोई नहीं प्रदान कर सकते।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

शक्यो वशीकर्तु मिभोऽतिमत्तः सिंहः कणीद्रंः कुमितो नरेंद्रः ।
ज्ञानेन हीनो न पुनः कथंचिदित्यस्य दूरे न भवंति संतः ॥२०६॥

ज्ञानके बिना सन्मार्गपर चलने चलानेकी दुष्करता—लोग ऐसे ऐसे बलवान हैं कि बड़े बड़े मस्त हाथियोंको वशमें कर सकते हैं, कुमार्गपर जा रहे हाथियोंको सुमार्गपर ला सकते हैं और क्रुद्ध हुए सिंह, सर्प, राजा आदिक जो बड़े ही कठिन होते हैं उनको अपनी कलासे समझा सकते हैं, पर मूढ़ अज्ञानी पुरुषोंको किसी भी प्रकार सुमार्गपर नहीं लगा सकते। तब यह पुरुषार्थ करना होगा कि ज्ञानका अर्जन करें और अपने आत्मस्वरूप की दृष्टि रखें। सबको यह समझना चाहिये कि हमारा ज्ञानके बिना सुमार्गपर आना नहीं बन सकता और ज्ञानके बिना दूसरोंको सुमार्गपर लाना नहीं बन सकता, अतएव तत्त्वज्ञान का अर्जन करना चाहिए। ऐसा निर्णय कर तत्त्वज्ञानके अभ्यासमें अपनेको लगा देना उचित है।

करोति संसारशरीर भोगविरागभावं विदधाति रागं ।
शीलव्रतध्यानतपः कृपालु ज्ञानी विमोक्षाय कृतप्रयासः ॥ २०७ ॥

ज्ञानी जनोंकी सुमार्गमें प्रगति—ज्ञानी पुरुषका जितना पौरुष होता है वह सब मोक्षके लिए होता है। मोक्षके अतिरिक्त अन्य कोई लक्ष्य ज्ञानीका नहीं होता। तो मोक्षके लिए ही ज्ञानी संसार शरीर और भोगोंसे वैराग्य भावको धारण करता है। संसार तो हुआ रागादिक विकार जन्म-मरण सो इनसे विरक्त रहता है। रागद्वेष विकारको नैमित्तिक जानता है, परभाव भिन्न जानता है इसलिए उसमें ज्ञानीको राग नहीं रहता, बल्कि हेय-बुद्धि रहती है। ये ही विकार तो दुःखके कारण हैं, अशुचि हैं, उनमें ज्ञानीको वैराग्य रहता है। शरीर सर्व दुःखोंकी जड़ है, जितनी शारीरिक वेदनायें होती हैं, भूख प्यासकी पीड़ायें, सम्मान अपमान आदिककी कल्पनायें वे सब इस शरीरके माध्यमसे ही होती हैं। सो ज्ञानी जानता है कि यह शरीर भिन्न पदार्थ है, आत्माके साथ लग गया है। जब तक इसका सम्पर्क है तब तक इसको कष्ट है, ऐसी ज्ञानीकी भावना रहती है कि मैं शरीर रहित अवस्थाको प्राप्त करूँ। इन्द्रियके भोग जिनमें कल्पित मौज है और आत्माकी सुधसे च्युत करने वाले हैं उन भोगोमें ज्ञानीजनोंको राग नहीं होता। ज्ञानीने तो अलौकिक आनन्दका अनुभव किया है, जो आधीन है और निर्वाध है उस आनन्दके अनुभव की इन्द्रियके विषयोंमें सुख बुद्धि कैसे हो सकती है। सो जीव संसार, शरीर, भोगोंसे वैराग्यको धारण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

करता है। ज्ञानीका कोई अनुराग होता है तो धर्म विषयक ही अनुराग होता है, यह अनुराग भी मोक्षके लिए है। अनुरागके लिए अनुराग नहीं है। ज्ञानीका शीलपालनमें अनुराग है, शीलके विरुद्ध चलनेमें उपयोगका जो भटकना होता है, उसमें स्वभाव दर्शनकी पात्रता नष्ट हो सकती है। ज्ञानीको स्वभावदृष्टि चाहिए जिसके बलपर मोक्षका लाभ होता है। तो ज्ञानीको शीलमें अनुराग है। ज्ञानीको पाँचों पापोंसे जुदे रहनेमें अनुराग है। इसीको ही व्रत कहते हैं। हिंसारूप प्रवृत्ति ज्ञानीके नहीं होती। दयारूप प्रवृत्ति होती है। असत्य सम्भाषण न करके यह ज्ञानी सत्य ही बोलता है। किसी पराये द्रव्यको हरनेका ज्ञानीके मनमें कभी भाव नहीं उठता। शीलपालनके बड़े दृढ़ प्रतिज्ञ होते हैं। किसी परि-ग्रहकी तृष्णा ज्ञानीको नहीं सताती। तो यों पापोंसे विरक्त रहने रूप व्रतोंसे अनुराग होता है। ध्यानका अनुराग ज्ञानीको होता ही है क्योंकि ध्यान कल्पवृक्ष है। जो उत्तम से उत्तम अभीष्ट पद है, मोक्ष पद है उसका भी लाभ ध्यानके द्वारा होता है। जहाँ ज्ञानमें ज्ञान-स्वरूप ही पाया जा रहा हो वह ध्यान परम ध्यान है और ऐसे ध्यानकी भावना ज्ञानी संतोंके रहा करती है। तपका अनुराग ज्ञानीको होता है। अनशन अनोदर आदिक १२ प्रकारके तप कहे गए हैं। जिनमें इच्छाओंको दूर करके अविकार ज्ञानस्वभावकी उपासना की जाती है। ज्ञानी जीवको दयाका भाव विशेषतया बरतता है। कोई दुःखी प्राणी हो तो अपनी सामर्थ्यके अनुसार तन, मन, धन, वचनसे उसके दुःख दूर करनेका प्रयत्न रहता है और विशेषतया अपने आपके सहज परमात्मतत्त्व पर बहुत सही दृष्टि रहती है, यह ही अपने आपपर कृपा करना कहलाता है। तो इन गुणोंमें ज्ञानी जीवका धर्मानुराग रहता है।

परोपदेशं स्वहितोपकारं ज्ञानेन देही वितनोति लोके।
जहाति दोषं श्रयते गुणं च ज्ञानं जनैस्तेन समर्चनीयं ॥२०८॥

ज्ञानबलसे ही स्वहितगमन व दोषनिवृत्ति—यह जीव अपना हित और पराया हित परोपदेश देकर करता है तो वह सब ज्ञानके बल पर ही तो कर पाता है। वस्तुस्वरूपका जब स्पष्ट बोध है तब वह दूसरोंको सही उपदेश देता है और अपने आपको भी सन्मार्गमें लगाये रहता है। ज्ञानके द्वारा ही यह जीव स्वयं अपने हित अहितका विचार कर गुणोंकी ओर ही अभिमुखता करता है। आत्माका जो सहजस्वरूप है वही इसका सहज गुण है और जैसा कि सहज चैतन्यस्वरूप है उस रूपमें अपने आपको अनुभवता है तो यह सब ज्ञानबल द्वारा ही तो हो रहा है। यह ज्ञानी दोषोंसे सर्वथा बचने का उपाय करता है। वह भी

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ज्ञानबलसे ही तो करता है, जिसके ज्ञान है वही दोषोंसे हटनेका और सन्मार्गमें लगनेका प्रयास करता है। तो समस्त अभ्युदयोंका उपाय ज्ञानभाव ही है अतः यह ज्ञान प्रशंसनीय तत्त्व है। आत्माका धन ज्ञानके सिवाय और है ही क्या? स्वरूप ही ज्ञान है और ज्ञान-स्वरूपका विकास ही भगवंत अवस्था है। वही परम कल्याण है। तो जिस ज्ञानके बलसे यह जीव लोकमें भी सही प्रवृत्तियाँ सुख शान्तिके लिए कर पाता है और ज्ञानके ही द्वारा समस्त अज्ञान जंजालोंको त्यागकर अपने ही ज्ञानस्वरूप में रुचि और धुन बनाये रहता है वही वास्तविक कमायी है। अपना ज्ञानस्वरूप अपने ज्ञानमें बना रहे जिसके प्रतापसे कर्मोंका क्षय होता है, मोक्ष मार्गमें प्रगति होती है और निर्वाणपदको प्राप्त करता है।

एवं विलोक्यास्य गुणाननेकान् समस्तपापारि निरासदक्षान् ।
विशुद्धबोधा न कदाचनापि ज्ञानस्य पूजां पूजां महतीं त्यजंति ॥२०९॥

विवेकीजनोंका ज्ञानार्जनमें प्रयास—ज्ञानी पुरुष सदा ज्ञानके उपार्जनमें ही प्रयत्नशील रहा करता है, क्योंकि जितने भी समीचीन अभ्युदय हैं वे ज्ञानके द्वारा ही प्राप्त होते हैं। ज्ञानी पुरुषको धर्मानुरागके कारण पुण्यानुबंधी पुण्य प्राप्त होता है जिसके उदयमें सन्मार्गकी ओर गति रहती है और उस भूमिकाके अनुसार लौकिक सुखोंको प्राप्त करता है। पापको नष्ट करने वाला ज्ञान ही है, क्योंकि पाप भी आया था ज्ञानकी खोंटी प्रवृत्ति से, रागद्वेष विकारभाव जगनेसे कर्मोंका आश्रव हुआ था। तो अब रागादिक विकार न हों, अविकार ज्ञानस्वरूपकी उपासना रहे तो पूर्वबद्ध पाप भी खिर जायेंगे। नवीन पाप भी न बंधेंगे। तो यह ज्ञान समस्त पापोंको नष्ट करने वाला है। सो ज्ञानके ऐसे प्रभाव हैं। उनको विचार कर बुद्धिमान पुरुष ज्ञानकी पूजा कभी नहीं छोड़ते। ज्ञानके अर्जनमें, ज्ञानकी प्रभावनामें ज्ञानीजन अपना सर्वस्व समर्पण कर देते हैं। संसारमें सारभूत बात और है ही क्या? ज्ञानमय आत्मा अपने शुद्ध ज्ञानस्वरूपमें अनुभवा जाय तो वहाँ संसारका कोई संकट नहीं रहता। तो ज्ञानमें ही ऐसा प्रभाव है कि जो सर्व अभीष्ट सुखोंको भी प्राप्त करे और कर्मोंका क्षय करके मुक्तिधाममें भी पहुँचा दे। ऐसा विशुद्ध ज्ञानी जीवको स्पष्ट निर्णय है, इसी कारण वह कभी भी ज्ञानकी पूजाको नहीं छोड़ता।

(DR. N. C. JAIN'S HOME LIBRARY)

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

६. सम्यक्चारित्र

सद्दर्शनज्ञानबलेन भूता पापक्रियाया विरतिस्त्रिधा या ।
जिनेश्वरैस्तद्वदितं चरित्रं समस्तकर्मक्षयहेतुभूतं ॥२१०॥

सम्यक्चारित्रके स्वरूपका संकेत—सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानके बलसे जो पाप क्रियावोंसे विरक्ति जगती है वही चारित्र कहलाता है। ज्ञानीजन पापक्रियावोंमें न मनसे संकल्प करते हैं न वचनसे समर्थन करते हैं और न कायचेष्टासे पापक्रियावोंका आरम्भ करते हैं किन्तु मन, वचन, कायसे ज्ञानी जीवके पापक्रियावोंसे विरक्तिभाव रहता है। इसीका नाम सम्यक्चारित्र है। इस सम्यक्चारित्रसे ही समस्त कर्मोंका विनाश होता है। सम्यग्दर्शन नाम है सर्वज्ञदेव द्वारा प्रतिपादित तत्त्वोंका श्रद्धान होना और सम्यग्ज्ञान नाम है वस्तुस्वरूप सहित पदार्थोंका बोध होना। जब इस मनुष्यको हित अहितका विचार जगने लगता है तो वह अतीतकालमें सब भूलोंको भूल समझने लगता है और पर-पदार्थोंकी ओर इस जीवने एकता कर रखी थी उस एकताको अब यह धीरे-धीरे दुःख-दायी समझने लगता है। सो ऐसे सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानके बलसे सर्व बाह्य प्रवृत्तियोंसे उपेक्षा हो जाती है। और अपने शरणभूत इस अंतस्तत्व को अपनाने लगता है। संसारमें परिभ्रमण करने वाले, कराने वाले आठों प्रकारके कर्म हैं, इन सबका विनाश हो, अभाव हो ऐसी सद्भावना ज्ञानी पुरुषके अन्तःकरणमें होती है। बस ऐसे हित अहितके विवेकके समय जो पापक्रियावोंसे, मन, वचन, कायसे विरक्त रहता है, उसहींको सम्यक्चारित्र कहते हैं।

शमं क्षयं मिश्रमुपागतायां तन्नाशिकर्मप्रकृतौ त्रिधातौ ।
द्विधा सरागेतरभेदतश्च प्रजायते साधनसाध्यरूपं ॥२११॥

चारित्रकी त्रिविधता—सम्यक्चारित्रका घात करने वाला कर्म चारित्रमोहनीय कर्म कहलाता है। मोहनीय कर्मकी २८ प्रकृतियाँ होती हैं। जो दर्शनमोहनीय और चारित्र-मोहनीयके प्रभेदरूप हैं सो दर्शनमोहनीय इस सम्यग्दर्शनका घात करता है और चारित्र-मोहनीयकी प्रथम अननानुबंधी चार प्रकृतियाँ दोनों प्रकारके स्वभाव रखती हैं, सो इनके उदयमें सम्यक्त्वका भी घात होता है और चारित्रका भी घात रहता है। सो सम्यक्त्व घातक ७ प्रकृतियाँ हैं, उनका उपशम होने पर ही उपशम सम्यक्त्व होता, क्षयोपशम होने पर क्षायोपशमिक सम्यक्त्व होता और क्षय होनेपर क्षायिक सम्यक्त्व होता। चारित्र-

Report any errors at vikasnd@gmail.com

मोहनीय कर्म आत्माके चारित्रगुणका घात करता है। उसके क्षय, उपशम या क्षयोपशमसे आत्मामें चारित्रगुण प्रकट होता है। चारित्रमोहका उपशम होने पर यथाख्यात चारित्र होता है, पर उपशमसे हुआ चारित्र अन्तर्मुहूर्तसे अधिक नहीं टिकता। चारित्रमोहनीयका क्षय होनेसे जो चारित्र होता है वह प्रगतिशील होकर निर्वाणको प्राप्त कराता है। उस चारित्रका कभी विघात नहीं होता। ऊँचा चारित्र प्रकट होने पर आंशिक चारित्र नहीं रहता किन्तु पूर्णचारित्र हो जाता है। चारित्र मोहनीय कर्मके क्षयोपशमसे चारित्र पूर्ण प्रकट नहीं होता किन्तु आंशिक प्रकट होता है जैसे अप्रत्याख्यानावरण कषायका उदयाभावी क्षय और उपशम हो तो प्रत्याख्यानावरण कषायका उदय हो तो ऐसे क्षयोपशमकी स्थिति होने पर अणुव्रत प्रकट होता है। अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण इन ८ कषायोंका उदयाभावी क्षय हो और इन्हींका उपशम हो और संज्वलनकषायका उदय हो तो मुनिव्रत प्रकट होता है। सो मुनिव्रत भी पूर्ण चारित्र समस्त कषायोंके अभावमें प्रकट होता है जिसका नाम है यथाख्यात चारित्र। चारित्रके पात्रकी दृष्टिसे दो भेद हैं—(१) सराग चारित्र और (२) वीतराग चारित्र। जिसके सराग चारित्र तो साधन है जिसकी प्रगतिसे वीतराग चारित्र प्रकट होगा। विराग चारित्र साध्य है, जो सराग चारित्रके द्वारा शुद्ध भाव प्रकट होता है। तो इस जीवका चारित्रमोहका उपशम, क्षय, क्षयोपशम होने पर अलग जातिके परिणाम हो जाते हैं। इस ज्ञानीको सांसारिक समस्त अशुभ पापक्रियावोंसे घृणा होने लगती है और व्रत चारित्र आदिक शुभ क्रियायें करनेसे अनुराग बन जाता है। तो प्रारम्भिक लोगोंका कर्तव्य है कि वीतराग चारित्रकी प्राप्तिके ध्येयमें सराग चारित्रसे प्रारम्भ कर अपने आपके चारित्रको दृढ़ बनायें।

हिंसानृतस्तेयजनीविसंगनिवृत्तिरुक्तं व्रतमंगभाजां।
पंचप्रकारं शुभसूतिहेतुहेतुर्जिनश्वरैर्ज्ञातसमस्ततत्त्वैः ॥२१२॥

चारित्रकी पञ्चरूपता—५ प्रकारके पापोंके त्यागसे ५ प्रकारके व्रत बनते हैं। हिंसाके त्यागसे अहिंसा व्रत, झूठके त्यागसे सत्यव्रत, चोरीके त्यागसे अचौर्यव्रत, कुशीलके त्यागसे ब्रह्मचर्य व्रत और परिग्रहके त्यागसे अपरिग्रह व्रत बनता है। इन व्रतोंमें केवल निवृत्ति अंश ही हो, ऐसा नहीं है। वह तो भूमिकानुसार है ही, पर इसके साथ ही धर्मानुराग विषयक प्रीति भी रहती है और इस धर्मानुराग मूलक प्रवृत्ति होनेके कारण व्रतोंको शुभ आश्रवका कारण बताया गया है। यदि केवल निवृत्ति अंश ही होता है तो आश्रवका कारण नहीं कहा जा सकता। यह धर्मानुराग भी उच्च स्थिति पा लेने पर त्याज्य हो

http://sahjanandvarnishastra.org/

जाता है, किन्तु प्रारम्भिक दशामें तो इस जीवको व्रत तप आदिक शुभोपयोग ही हस्तावलम्बन है। यदि ज्ञानी गृहस्थ शुभोपयोगको छोड़ दे और शुद्धोपयोग को छोड़ दे और शुद्धोपयोग बन नहीं पा रहा तो अशुभोपयोगमें ही आयेगा। जिसका फल अनन्त संसार परिभ्रमण है। तो ज्ञानी पुरुष ५ पापोंका त्याग करके ५ व्रतोंरूप अपनी चेष्टायें बनाये रखते हैं और साधक दशामें ये निरारम्भ और निष्परिग्रह हो जाते है। निरारम्भ निष्परिग्रह होने पर ही स्वभावदृष्टि बनाये रहने के ध्यानकी पूर्ति होने लगती है। तो चारित्रका अद्भुत माहात्म्य है। इसके ही प्रतापसे जीवोंने मुक्ति प्राप्त की है। ऐसा सम्यक्चारित्र हम आप सबके लिए आदर्श तथ्य है, सो अपनी शक्तिमाफिक सम्यक्चारित्रका पालन करना चाहिये।

जीवास्त्रसस्थावरभेदभिन्नास्त्रसाश्चतुर्धात्र भवेयुरन्ये।
पंचप्रकारास्त्रिविधेन तेषां रक्षा अहिंसाव्रतमस्ति पूतं ।।२१३।।

छह जीवनिकायोंकी रक्षामें अहिंसाव्रतकी क्षमता—संसारी जीव त्रस और स्थावर दो जातियोंमें पाये जाते हैं। त्रस जीव तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय और पञ्चेन्द्रियका नाम है जिनके त्रस नामकर्मका उदय है और स्थावर जीव पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति ये ५ प्रकारके कहे गए हैं। इन सब ६ कायके जीवोंकी मन, वचन, कायसे जो रक्षा करना है उसका नाम अहिंसा व्रत है। ६ कायके ५ तो स्थावर जीव लिए गए हैं और एक त्रस जीव। इन्द्रियाँ ५ होती हैं—स्पर्शन, रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण। जिन जीवोंके केवल स्पर्शन ही इन्द्रिय हैं वे एकेन्द्रिय कहलाते हैं। पृथ्वी, जल आदिक ५ स्थावरोंके अंग उपांग नहीं हैं, रसना इन्द्रिय नहीं है, केवल स्पर्शन इन्द्रिय है। रसना इन्द्रिय जिह्वाको कहते हैं। जिस जीवके जीभ है उसके स्पर्शन इन्द्रिय अवश्य होती है। तो ये दो इन्द्रियाँ जिनके हैं वे दो इन्द्रिय जीव कहलाते हैं। रसना इन्द्रियसे खट्टा, मीठा आदिक रसोंका स्वाद जाना जाता है। घ्राणेन्द्रिय नासिकाको कहते हैं। इसके द्वारा सुगंध दुर्गंधका ज्ञान होता है। जिसके घ्राणेन्द्रिय पायी जाती है उसके स्पर्शन और रसना इन्द्रिय अवश्य होती है। सो जिन जीवोंके तीन इन्द्रिय हैं वे तीन इन्द्रिय जीव कहलाते हैं। जैसे खटमल, चींटी, जूँ आदिक। चक्षुइन्द्रिय आँखको कहते हैं। इसके द्वारा काला, पीला, नीला, लाल, सफेद इन ५ प्रकारके वर्णोंका और इनमें किसीके संयोगसे हुए वर्णोंका ज्ञान होता है। जिसके चक्षु इन्द्रिय है उसके स्पर्शन, रसना और घ्राण अवश्य होते हैं। सो जिन जीवोंके चार इन्द्रियाँ पायी जायें उन्हें चौइन्द्रिय जीव कहते हैं। कर्णेन्द्रियसे शब्द जाने जाते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

हैं, जिनके कर्णेन्द्रिय हैं उनके शेष सभी इन्द्रियाँ हैं। यों पाँचों इन्द्रियाँ जिन जीवोंके हैं उन्हें पञ्चेन्द्रिय कहते हैं। जीवशास्त्रका जिन्हें बोध है वे ही जीव तो भले प्रकार जीवकी रक्षा कर सकते हैं। जिनको ज्ञान नहीं कि जल खुद जीव है और जलमें सूक्ष्म त्रस जीव भी रहते हैं, वे लोग संन्यासके नाम पर ऊँचा तप करके भी जल छानकर ही पीना, या स्वयं न छानना, आरम्भ न करना आदिक भाव कहाँ जग सकते हैं। तो जीव दयाका पालन वही पुरुष भली-भाँति कर सकता है जिसको जीव देहोंका, उनकी योनियोंका, उत्पत्ति स्थानोंका बोध होता है। तो इस षट्कायके जीवोंकी विराधना न करना यह अहिंसा व्रत कहलाता है।

स्पर्शेन वर्णेन रसेन गंधाद्यदन्यथा वारि गतं स्वभाव।
तत्प्रासुकं साधुजनस्य योग्यं पातुं मुनींद्रा निगदंति जैना: ॥२१४॥

साधुजनों द्वारा प्रासुक जलकी पेयता—जल कैसा पीने योग्य है साधु पुरुषोंको इसका वर्णन इस छंदमें किया है। जैसे जलका स्पर्श, रस, गंध और वर्णके चार स्वाभाविक गुण बदल जायें ऐसे जलको पेय बताया गया है। जैसा जलका अपने आप रूप है स्पर्श आदिक है उससे यह परिचय होता है कि इसमें जीव है। जैसे ताजा ठंडा निकला हुआ पानी शीतल है तो सहसा बोध हो जाता है कि अभी यह जल जीवसहित है, पर जो जल गरम है या लौंग आदिकसे प्रासुप किया गया है जिससे कि रस, गंध आदिक भी बदल गए हैं तो उस जलमें यह निश्चय रहता है कि यह जल अचित्त है। सो साधुजन सचित्त जलका सेवन नहीं करते, क्योंकि उसमें अहिंसा व्रतका पालन नहीं होता और स्वयं आरम्भ भी नहीं करते कि जलको गर्म करें या प्रासुप करें। उनको कहीं भक्तजनोके घर विनयपूर्वक गृहस्थ बुलाये और विधिपूर्वक दे तो ऐसा अचित्त जल साधुजन ग्रहण कर लेते हैं।

उष्णोदकं साधुजना: पिबंति मनोवच: कायविशुद्धिलब्धं।
एकांततस्तत्पिवतां मुनीनां षड्जीवघातं कथयंति संत: ॥२१५॥

मनोवच: कायविशुद्ध उष्णोदककी ग्राह्यता—साधु पुरुष सर्व प्रकारकी हिंसाके त्यागी होते हैं। वे मन, वचन, कायकी विशुद्धिको प्राप्त हुए उष्ण जलको पीते हैं और जो उष्ण जलको न पीकर अचित्त जलसे विपरीत जलको ग्रहण करते हैं उस साधुजनोंके ६ कायके जीवों के घातका पाप लगता है। वे ६ कायके जीवोंके हिंसक कहे जाते हैं। सचित्त जलका जल स्वयं जीव है और उसमें त्रस जीव भी रह रहे इस कारण सचित्त जलके उपभोगमें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

दयाका पालन नहीं कहा जा सकता है। सो ऐसे जलको भी साधुजन आरम्भ कराकर या उसकी अनुमोदना करके प्राप्त करते हैं। नवकोटि विशुद्ध जलको ग्रहण करते हैं, अर्थात् जिसमें न मनसे संकल्प किया हो कि यह मुझे दे और न वचनसे कोई प्रयोग कराया गया हो, न शरीरसे अनुमोदनाकी हो या करायी गई हो। मन, वचन, कायसे न कृत हो, न कारित हो, न अनुमोदित हो, ऐसा जलही साधुजनोंके ग्रहणके योग्य कहा गया है।

हतं घटीयंत्रचतुष्पदादि सूर्येंदुवाताग्नि करैर्मुनींद्राः।
प्रत्यंतवातेन हतं वहच्च यत्प्राशुकं तन्निगदंति वारि ॥२१६॥

प्रासुक जलका स्वरूप—कौनसा जल प्रासुप कहा गया है इसका वर्णन इस छंदमें किया गया है। जो जल घटी यंत्रका हो यानि जिस जलको अरहटके द्वारा निकाला जा रहा है यानि पानी को गड़बड़ा करके उन घटियोंमें डालते हैं जिस विदोलनके कारण वह जल अचित्त हो जाया करता है। जो जल गाय, भैंस आदिक जानवरोंके आवागमनसे ताड़ित हो गया हो। जैसे अनेक जलाशयोंके ऐसे स्थान होते कि जहाँ बहुतसे गाय, भैंस आदिक पशु आते जाते हैं, यानि जिस जलका काफी विडोलन हो गया हो वह जल प्रासुप है। जिस जलपर सूर्यकी तीव्र किरणें पड़ती हैं, जिसके कारण वह जल प्रासुप हो गया है। रूप, रस आदिक भो बदल गये हैं ऐसा जल प्रासुप कहा गया है। चन्द्रकिरणोंसे भी जल प्रासुप हो जाता है। किसी भी प्रकारका परिवर्तन हो जाय वह सूचक है कि यह जल अचित्त हो गया। कोई जल वायुकी ताड़नासे ही अचित्त हो जाता है। जहाँ तीव्र लहर उठती है। वायुका बहुत प्रताड़न होता है वह जल अपने स्वाभाविक वर्ण गंध रस, स्पर्शको छोड़ देता है। अचित्त जलकी पहिचान यह है कि उसका जो स्वाभाविक रूप है वह रूप न रहे, बदलकर अन्य प्रकार हो जाय तो वह जल अचित्त हो जाता है। अग्निसे तपाया गया जल अचित्त होता ही है। ऐसा जल जैनागममें प्रासुप माना गया है और बड़े-बड़े आचार्योंने इस प्रकार का उपदेश किया है।

भवत्यवश्यायहि मांशधूसरी घनांबुशुद्धोदकबिंदुसीकरान्।
विहाय शेष व्यवहारकारणं मनीषिणां वारि विशुद्धिमिच्छतां ॥२१७॥

अपेय जलका संक्षिप्त विवरण—जो जल पाला रूप है, ओला, मेघ और छाने हुए जलके बचे हुए शुद्धोदक बिन्दुके कणोंसे भिन्न हो वह सब जल अहिंसा व्रतके पालनेवाले मुनियोंको व्यवहारमें लाने योग्य होता है। जलकी प्रासुपताका कारण है या परिचायक है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

तो उनका स्पर्शादिक बदल जाना। वह जिन-जिन घटनाओंके प्रसंगसे बदल होता है उन सब घटनाओंका जिक्र किया गया है। सो ऐसे सब जल साधुजनोंके व्यवहारके कारण हैं। यहाँ इतनी बात समझना कि प्रासुप जल ये सब बताये गए हैं, मगर पीनेके लिए ही सब योग्य हों यह नहीं कहा गया। जरूरत पड़ने पर उनका उपयोग कर सकें, हाथ पैर धो सकें, शुद्धि कर सकें, इन सब कामोंमें वे आते हैं। जैसे कि जंगलमें प्रायः होता है। कोई पानी ऊपर पहाड़ोंसे गिर रहा है। पत्थरोंकी ठोकर खा रहा है, ऐसी जगहका जल इस्तेमालमें ले लिया जाता है, पर पीने योग्य जल तो जो श्रावकके यहाँ है, श्रावकके द्वारा प्रदत्त जलही पेय होता है, क्योंकि ऐसे जलके ग्रहण करनेमें ही वह निरारम्भ होता है और इच्छाका निरोधक होता है, सो अहिंसाव्रत पालन करने वाले मुनियोंके व्यवहारमें लेने योग्य जलका इस छंदमें वर्णन किया गया है।

उष्णोदकं प्रतिगृहं यदकारि लोकैस्तच्छ्रावकैः पिबति नान्यजनैः कदाचित्।
तत्केवलं मुनिजनाय विधीयमानं षड्जीवसंततिविराधन साधनाय ॥२१८॥

श्रावकोंके गृहपर लब्ध प्रासुक जलकी पेयता—जो जल श्रावक द्वारा अपने घर पर, अपने कामके लिए उष्ण किया जाता है वह जल पीने योग्य है। श्रावकजन शुद्ध भोजन करने वाले होते हैं और जल छना हुआ हो, वह ४८ मिनटके अन्दर ही उपयोगके योग्य होता है, उसके बाद फिर वह त्रस जीवोंकी उत्पत्तिका स्थान बन जाता है। जो श्रावकजन उस जलमें संदेह न रहे या बार-बार छाननेका कार्य न करना पड़े अथवा ध्यानसे चूक गए तो उसका दोष न आये, इन सब अपराधोंसे बचनेके लिए श्रावक उष्ण जल करके रखता है, तो ऐसा अपने घर अपने लिए जो उष्ण जल किया जाता है वह मुनिजनोंके पीने योग्य है किन्तु इसके सिवाय जो जल केवल मुनियोंके उद्देश्यसे उष्ण किया गया है। जो क्रिया विधि न जानने वाले पुरुषोंसे गरम कराया गया है वह सब जल अपेय है। वह षट्कायके जीवोंकी हिंसाका साधन भूत है। मुनिजन जल क्या, भोजनमें भी नवकोटि विशुद्धिसे रहते हैं। मन, वचन, काय, कृतकारित अनुमोदना उसके साथ नहीं रहती है। इसी कारण श्रावकजनों द्वारा उष्ण किया जाने वाला जल साधुजनोंके योग्य समयपर मिले तो वह पेय कहा गया है।

यथार्थवाक्यं रहितं कषायैरपीडनं प्राणिगणस्य पूतं।
गृहस्थभाषाविकलं यथार्थं सत्यं व्रतं स्याद्वदतां यतीनां ॥२१९॥

http://sahjanandvarnishastra.org/

सत्यमहाव्रत—इस छंदमें सत्य व्रतका वर्णन किया गया है। जिन मुनियोंके वचन सार्थक होते हैं, जैसा पदार्थ है उसके अनुरूप होते हैं वे वचन सत्य कहलाते हैं। और पदार्थ उस अनुरूप होने पर भी कषायरहित होकर प्रयुक्त किए गए हों तो वह सत्यव्रत कहलाता है। यथार्थ भी बात हो और कषायवश प्रयोग किया गया हो तो इससे उसने भावहिंसा कर ही लिया। तो जो हिंसामूलक प्रवृत्ति है वह व्रतमें कैसे आ सकती है? सो कषायोंसे रहित वचन सत्यव्रतमें शामिल हैं, और वे वचन भी प्राणियोंको पीड़ा न पहुँचाने वाले हों। साधु-संतोंको क्या आवश्यक है कि ऐसे वचन बोलें कि जिससे दूसरे जीवोंका प्राणघात न हो जाय। प्रथम तो बोलना ही उन्हें पसंद नहीं होता। मुनिजन मौनपूर्वक अपना ध्यान किया करते हैं। पर किसी प्रसंगमें धर्मके सम्बन्धमें कुछ वचन बोलना ही पड़े तो वे दूसरों को पीड़ा करने वाले वचन नहीं बोलते। साधुओंके ऐसे वचन जो पवित्र हैं और दूसरोंको हितकारी हैं वे वचन ही बोलने योग्य कहा गया है। साधु वचन गृहकार्योंके पोषण करनेसे रहित होते हैं। आरम्भ रोजिगार अन्य गृहस्थीकी बातें इन सब दोषोंसे शून्य उनके वचन होते हैं। सारांश यह है कि हित मित प्रिय वचन बोलनेको सत्यव्रत कहते हैं। सो मुनिजनोंका यह कर्तव्य है कि वे कभी व्यर्थ वचन न बोलें अधिक शब्द न बोलें। थोड़े शब्दोंकी आवश्यकता है। कुछ ही शब्द बोलकर अपने आपमें विश्राम करें।

ग्रामादिनष्टादि धनं परेषामगृह्णतोऽल्पादि मुनेस्त्रिधापि।
भवत्यदत्तग्रहवर्जनाख्यं व्रतं मुनीनांगदितं हि लोके ॥२२०॥

अचौर्य महाव्रत—कोई ग्राम आदिक नष्ट हो गए हों, वहाँ कोई धन पड़ा हो वह धन भी साधुजनोंके ग्रहणके योग्य नहीं है। कहीं भी रखा हुआ, गिरा हुआ, खोया हुआ, किसीका भूला हुआ, कैसा ही हो बिना दी हुई दूसरेकी वस्तुका मन, वचन, कायसे ग्रहण न करना अचौर्य व्रत है। सो साधुजनोंके निरपेक्ष कोई व्रत नहीं होता। जैसे मानो किसी साधु पुरुषको किसी धनिकने कोई धन जेवर आदि भेंट किया और उसे साधु ग्रहण कर ले परिग्रह त्याग महाव्रतका पालन करते हुए भी तो वह साधु कहाँ रहा? हाँ साधुजनोंको योग्य कोई वस्तु हो जैसे पिछी, कमण्डल, शास्त्र या कोई औषधि आदिक जो कि संयमके लिए साधन हैं उन्हें कोई दे तो उन्हें साधुजन ग्रहण कर सकते हैं। बिना दी हुई कोई चीज ग्रहण नहीं कर सकते। तो बिना दी हुई वस्तुको ग्रहण न करना अचौर्य व्रत है।

विलोक्य माहस्वसृदेहजावत्स्त्रीणां त्रिकं रागवशेन यासां।
विलोकन स्पर्शनसंकथाभ्यो निवृत्तिरुक्तं तदमैथुनत्वं ॥२२१॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

ब्रह्मचर्य महाव्रत—जो महानुभाव वृद्ध स्त्रीको तो माँ, बराबरकी आयु वाली स्त्रीको बहिन और छोटी आयु वालीको पुत्रीके समान मानता है और सभी प्रकारकी स्त्रियोंका मन, वचन, कायसे त्याग कर देता है उसके ब्रह्मचर्य व्रत होता है। ब्रह्मचर्य व्रतका धारी न तो स्त्रीजनोंको रागबुद्धिसे देखता है न उनके साथ रागकी बातें करता है न कभी उनका स्पर्श करता है, उसके ब्रह्मचर्यकी सिद्धि होती है। राग बुद्धि करना, संकल्प करना ये सब मनकी चेष्टायें हैं। वचनालाप करना यह वचनका व्यवहार है। कोई अंग आदिकका स्पर्श करना या उनके छुवे हुए कपड़े आदिकका स्पर्श करना जिनमें वाचनाका सम्बन्ध चलता है वे सब कायकी चेष्टायें हैं। साधुजन मन, वचन, काय तीनों योगोंको सम्हाले रहते हैं और वे ब्रह्मचर्यके विरुद्ध इन योगोंका प्रयोग नहीं करते हैं। ब्रह्मचर्यका परमार्थ अर्थ तो यह है कि ब्रह्म मायने आत्मा, उसमें चर्य मायने लीन होना। सो काम विषयक चेष्टायें आत्मामें लीन होनेकी साक्षात् बाधक हैं। इस कारण कुशीलके त्यागको ब्रह्मचर्य शब्दसे कहा गया है। इस प्रकार साधुजन ब्रह्मचर्य महाव्रतका पालन किया करते हैं।

सचेतनाचेतनभेदतोत्थाः परिग्रहाः संति विचित्ररूपाः।
तेभ्यो निवृत्तिस्त्रिविधेन यत्र नैसंग्यमुक्तं तदपास्तसंगैः ॥२२२॥

परिग्रहत्याग महाव्रत—लोकमें समस्त पदार्थ चेतन या अचेतन दो प्रकारके हैं, जिन पदार्थोंमें चेतना हो, जानने देखनेकी शक्ति हो वे पदार्थ चेतन हैं और जिनमें चेतना नहीं है, जानने देखनेकी शक्ति नहीं है वे पदार्थ अचेतन हैं। सो दोनों प्रकारके पदार्थोंका मन, वचन, कायसे त्यागकर देना अपरिग्रह है। परिग्रह त्यागी पुरुष बाह्य पदार्थोंको न मनसे अपना समझते हैं, न वचनसे अपना कहते हैं और न इस शरीरके साथ किसी प्रकारका सम्बन्ध रखते हैं, श्रवण निसंग कहे जाते हैं। संग मायने परिग्रह, निः मायने निर्गत, परिग्रहसे दूर हो गए अथवा संग मायने प्रसंग सम्पर्क उसके दूर हो गये हैं ऐसे निसंगको श्रवण बताया है। सो जैसे मूढ़ पुरुषोंकी बुद्धि अचेतन पदार्थोंमें रमी रहती है। अचेतन पदार्थोंमें अपनी एकता मान लेते हैं, ज्ञानी पुरुषोंको वहाँ स्पष्ट दृष्टिमें रहता है कि इन सब पदार्थोंका द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव भी जुदा है, मेरा द्रव्य, क्षेत्र, काल, भाव जुदा है। एकका दूसरेके साथ कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। चेतन पदार्थ जो उसके प्रसंगमें रहते हों, जैसे गृहस्थ है तो स्त्री, पुत्र, मित्रादिक उसके चेतन संग बन सकते हैं और मुनि हैं तो उनके साथ शिष्यजन होते हैं। वे सब उनके प्रसंगके सचेतन पदार्थ हैं, किन्तु ज्ञानीजन चाहे गृहस्थ हों या मुनि हों, उन सचेतन परिग्रहोंसे भी अपना स्वरूप निराला समझते हैं

http://sahjanandvarnishastra.org/

और चूँकि चारित्र मोहका उदय है सो गृहस्थ उसका परित्याग नहीं कर सकते, किन्तु मुनिजन उन सचेतन पदार्थोंका भी परिग्रह नहीं रखते। तो ऐसे मन, वचन, कायसे सचेतन अचेतन परिग्रहोंके त्यागको बेसंग कहा है।

युगांतरप्रेक्षणतः स्वकार्याद्दिवा पथा जन्तुविवर्जितेन ।
यतो मुनेर्जीवविराधहान्या गतिर्वरेर्यासमितिः समुक्ता ॥२२३॥

साधुवोंकी ईर्यासमिति—इस छंदमें श्रवणकी ईर्यासमितिका वर्णन किया है। ईर्याका अर्थ गमन है और समितिका अर्थ सावधानी सहित समताकी सम्हाल रखते हुए प्रवृत्ति होना है। तो जिन श्रवणोंके श्रामण्य है, मुनिव्रत है उनका यह भाव रहता है कि किसी जीवकी हिंसा न हो, और हमको विहार करना पड़ रहा, वहाँ हमारे सम्बन्धसे मार्गमें आये हुए किसी भी जीवको रंच भी दुःख न हो, यह तो उन मुनिजनोंका अभिप्राय रहता है। और वे इस अभिप्रायके कारण चार हाथ आगे पृथ्वी देखकर गमन करते हैं। सो वह गमनभी दिनमें ही किया जाता है। रात्रिमें नहीं, और ऐसा गमन भी किस प्रयोजनके लिए होता है कि जिसमें आत्माके विकासका कोई प्रसंग हो। तो इस छंदमें ईर्यासमितिके लिए चार बातें कही गई हैं। भावशुद्धि होना, चार हाथ आगे जमीन देखकर चलना, दिनमें ही चलना और किसी भले कार्यके लिए ही चलना। ऐसी चार बातोंका योग जिस गमनमें रहता है उस गमनकी वृत्तिको ईर्यासमिति कहते हैं। निश्चयसे तो श्रवणकी ईर्या अपने आपके स्वरूपमें अन्तरंग ज्ञानके बलसे गमन होना कहलाता है और इसही ईर्याकी सिद्धिके लिए व्यवहार ईर्यासमितिका पालन किया जाता है। सो मुनिजन अन्तरंगमें तो सावधान होते ही हैं। सतत उनका ध्येय सहज चैतन्यस्वरूप आत्मतत्त्वकी प्रतीत और लीनता है। पर एकही जगह रहकर रागद्वेषके प्रसंग आ जाते हैं, इसलिए कहीं अधिक दिन नहीं ठहरते, ऐसा प्रभुका आदेश है। कोई कठिन स्थितिमें अत्यन्त वृद्ध हो जाये, समाधिमरणकी प्रतिज्ञा करले या कोई विशेष ज्ञानार्जनका लाभ होता हो तो ऐसेही कुछ कारणोंसे ये कुछ दिन ठहरते हैं एक जगह लेकिन आम आदेश है कि छोटे गाँवमें एक दिन, कुछ बड़े में तीन दिन और बहुत बड़े में ५ दिन, इससे अधिक नहीं ठहरते। तो विहार करना आवश्यक हो गया। तो उनका विहार किस प्रकार होता है वह सब ईर्यासमितिमें बताया गया है।

आत्मप्रशंसा परदोषहासपैशून्यकार्कश्यविरुद्ध वाक्यं ।
विवर्ज्य भाषां बदतां मुनीनां बदंति भाषासमिति जिनेन्द्राः ॥२२४॥

साधुवोंकी भाषासमिति—इस छंदमें श्रवणकी भाषासमितिका वर्णन किया गया है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जो मुनि आत्मप्रशंसा नहीं करते वे ही योग्य वचनकी वृत्ति रखते हैं और भाषा समितिका पालन कर सकते हैं, जिसको अपने आपकी प्रशंसामें रुचि है, व्यामोह है तो उस प्रशंसाके लाभके कारण कोई प्रसंग ऐसा भी बन जाता है कि जहाँ तक कुछ अंशमें असत्य बोलना पड़ जाता है। फिर भाषा समिति कहाँ रही ? तो जो भाषा समितिके पालनेके इच्छुक हैं उनका कर्तव्य है कि वे आत्मप्रशंसासे अति दूर रहें। परनिन्दा, दूसरे जीवोंकी निन्दा, करनेका जिनका व्यापार है, ऐसी आदत बनाली गई है तो परनिन्दाकी धुन रखने वालेके इतनी स्वयंमें छुद्रता आती है और हठवाद हो जाता है कि कभी किसी प्रसंगमें उसे झूठ बोलनेका भी प्रसंग बन जाता है, परनिन्दा करनेसे अनेक आपत्तियाँ खुदके सिरपर आ जाती हैं। क्योंकि जिसकी निन्दा की गई वह तो बरदास्त करेगा नहीं, वह तो कुछ न कुछ उपद्रव ढायेगा। तो ऐसी अनेक विकट स्थितियाँ होती हैं, उन परिस्थितियोंमें यह असत्य बोल सकता है अपने बचावके लिए या अपने हठकी रक्षाके लिए। तो परनिन्दाकी प्रकृति रखने वाले पुरुषके भाषा समितिका पालन नहीं बन सकता। जो मुनि दूसरोंका उपहास करते हैं, वचनोंसे कोई हँसी करते हैं, कुछ नीचा दिखानेकी बात करते हैं तो ऐसे उपहासका जो मनमें आशय रख रहा है वह पुरुष छुद्र आशयका है। गम्भीर पुरुष है और ऐसे पुरुषोंके वचन असत्य भी निकला करते हैं। तो भाषा समितिका पालनहार पुरुष उपहासमें चुगली करनेकी प्रकृति जिन श्रवणोंके पड़ जाती है, एककी बात दूसरेसे कुछ कहा, तीसरेसे कुछ कहा, यों एककी बात दूसरेसे चोरीसे कहना यह चुगली कहलाता है। तो चुगलीकी प्रकृति वालेका चित्त स्थिर नहीं रहता और उस प्रसंगमें कोई बात खुलनेका भय होता है या खुल जाता है तो उस प्रसंगसे यह ऐसी प्रवृत्ति करता, वचन बोलता जो दूसरेका बिगाड़ करने वाला हो या वस्तुके यथार्थ स्वरूपसे विपरीत हो। तो चुगली करने वाले श्रवणके सत्य बोलनेकी भाषा समिति नहीं बन सकती। जो पुरुष कर्कश वचन बोलता है और शास्त्रके विरुद्ध वचन बोलता है वह भाषा समितिका पालन नहीं कर सकता, क्योंकि कर्कश वचन किसी वेदनासे या खोटे अभिप्रायसे होता है। तो जहाँ दूषित आशय रहा वहाँ भाषासमिति कैसे पल सकती है ? तो श्रवण न आत्मप्रशंसा करते हैं, न किसी पर जीवकी निन्दा करते हैं, न किसीका उपहास करते हैं और न चुगली की प्रवृत्ति करते हैं। तो इस आत्मप्रशंसादि दोषसे रहित शास्त्रसम्मत वचन बोलनेको भाषा समिति कहते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

अनुद्गमोत्पादनबल्भदोषा मनोवचः कायविकल्पशुद्धा ।
स्वकारणा या मुनिपस्य भुक्तिस्तामेषणाख्यं समितिं वदंति ।।२२५।।

साधुवोंकी एषणा समिति—इस छंदमें श्रवणके एषणा समितिका वर्णन किया गया है। उद्गम आदिक ४६ दोष होते हैं जिनमें १६ दोष तो श्रावक दाताके द्वारा बनते हैं और १६ दोष साधु पात्रके द्वारा बन सकते हैं। १० दोष आहार सम्बन्धी होते हैं और ४ दोष भाव खोटे विषयक हैं। जैसे गुस्सासे खाना, निन्दा करते हुए खाना। अनिष्ट भोजनमें द्वेष और इष्ट भोजनमें राग रखकर खाना आदि भावकृत दोष हैं। ऐसे ४६ दोषोंसे रहित और ३२ अन्तराय टालकर मन, वचन, कायकी शुद्धिसे शुद्ध शरीरकी स्थितिके लिए जो आहार ग्रहण करता है वह मुनिकी एषणा समिति कहलाती है। एषणाका अर्थ है खोजना। शरीर है संयमका बहिरंग साधन। शरीरकी स्थिति रहे तो यह पुरुष धर्मका पालन सुगमतया कर सकता है। कहीं कोई रोग व्याधि हो जाये अथवा क्षुधा तृषाकी तीव्र वेदना जगें तो उस समय यह अपने समाधिभावमें नहीं ठहर पाता। अतएव आहार करना आवश्यक हो जाता है। सो शुद्ध आहारकी खोज करना एषणा समिति है। जहाँ श्रावकने शुद्ध होकर पड़गाहा और विधि मिलनेपर मुनिजन वहाँ निर्दोष आहार ग्रहण करते हैं, आहारचर्याके बाद और आहार कर चुकने तक अंतरायोंको टालकर ही चर्या करते हैं। वे अन्तराय ३२ हैं जो भिन्न-भिन्न स्थितियोंके हैं। सो ३२ अंतरायोंसे रहित होकर मुनिजनोंका आहार करना एषणा समिति कहलाता है। मुनिजन मन, वचन, कायकी शुद्धिसे शुद्ध रहते हैं और न वे आहारका निर्माण करते हैं, न कराते हैं और न करानेकी अनुमोदना करते हैं। नवकोटि विशुद्ध आहारका करना एषणा समिति कहलाता है।

आदाननिक्षेपविधेर्विधाने द्रव्यस्य योग्यस्य मुनेः स यत्नः ।
आदाननिक्षेपण नामधेयां वदंति संतः समितिं पवित्रा ।।२२६।।

साधुवोंकी आदाननिक्षेपण समिति—मुनिजनोंके रखने योग्य जो उपकरण हैं उन उपकरणोंके रखने और उठानेका कार्य तो पड़ता ही है, सो उन उपकरणोंके धरने उठानेमें सावधानी रखना, जीवहिंसा टालकर प्रवृत्ति करना वह आदान निक्षेपण समिति है। मुनिजनोंके रखने योग्य उपकरण तीन कहे गए हैं। संयमका उपकरण पिछी है। शुद्धिका उपकरण कमण्डल है और ज्ञानका उपकरण शास्त्र है। सो इन उपकरणोंके धरनेके समय पहले उस भूमिको शोधलें कि कोई जीव-जंतु तो नहीं है। पीछे धरे जाने वाले उपकरणोंको शोधलें, यों शोधन करते हुए धरना, ऐसे इन उपकरणोंको उठाते हुए पिछीसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

पोंछना और उठाना, फिर उस उपकरणको नीचेसे भी पोंछना ताकि कोई जीव यदि चींटी आदिक चढ़ गई हो तो उसे समितिपूर्वक उसका बचाव कर दें, ऐसी वृत्तिको आदान निक्षेपण समिति कहते हैं। आदानका अर्थ है ग्रहण करना और निक्षेपणका अर्थ है धरना। इन दोनों प्रकारकी वृत्तियोंमें मुनिजन पवित्र समितिका प्रयोग करते हैं।

दूरे विशाले जनजंतुमुक्ते गूढे विरुद्धे त्यजतो मलानि।
पूतां प्रतिष्ठापननामधेयां वदंति साधोः समितिं जिनेन्द्राः ॥२२७॥

साधुवोंकी उत्सर्गसमिति—साधुके जब शरीर लगा है और उस शरीर रक्षाके लिए आहार वे करते हैं तो नीहार भी करना हो जाता है। मल मूत्रका क्षेपण करना पड़ता है, तो उसका क्षेपण कहाँ करे और कैसे करे, ऐसी इस प्रतिष्ठापन समितिका वर्णन इस छंदमें किया है। मल मूत्रका त्याग दूरवर्ती प्रदेशोंमें करें, क्योंकि जो उनके ठहरनेका जो स्थान है वहीं यदि करें तो निकट रहने वाले पुरुषोंको बाधा उत्पन्न होती है। और मुनिजन कभी किसीकी बाधको नहीं स्वीकार करते, अतएव दूरवर्ती प्रदेशोंमें ही मुनिजन मल मूत्र क्षेपण किया करते हैं। दूरवर्ती प्रदेश हो और वह भी विशाल हो, जैसे मैदान पड़ा है, खेत पड़ा है, जहाँ शोधन भली-भाँति होता है और आमतौरसे सबके लिए वह प्रदेश खुला हुआ है, ऐसे विशाल प्रदेशमें मल मूत्र क्षेपण करे तो यों दूरवर्ती प्रदेश हो और विशाल प्रदेश हो, तिसपर भी वह कुछ ओटसा लिए हुए हो, यानि कुछ छिपा हुआ सा हो। जैसे मनुष्योंकी प्रवृत्ति है कि कुछ ओट लेकर ही मल मूत्रका क्षेपण करते हैं। यद्यपि सब जानते हैं कि प्रत्येक मनुष्य मल मूत्रका क्षेपण करता है तिसपर कोई मनुष्य सबको दिखाकर मल मूत्रका क्षेपण नहीं करता। यह एक सभ्यताकी बात है और इसमें दूसरोंको कष्ट न पहुँचे, इसकी भी बात है। और साधुजनोंको तो देखिये, वे तो निरन्तर नग्न रहते हैं, गृहस्थजन तो कपड़ेसे अपने गूढ़ि अंगको ढाके रहते हैं तो उसे खुला दिखानेमें संकोच हो जाता है, पर मुनि तो सतत् नग्न रहते हैं, तिसपर भी मल मूत्रके क्षेपणके समय वे भी गूढ़ स्थानमें मल मूत्रका क्षेपण करते हैं। तो जहां मल मूत्रका क्षेपण किया जाना चाहिए वह प्रदेश दूरवर्ती हो, विशाल हो, गूढ़ हो, इतने पर भी जन जंतुरहित हो। जन जंतुरहित प्रदेशमें ही मुनि-जन मल मूत्रादिका क्षेपण किया करते हैं, किन्तु जो समितिका मुख्य ध्येय है जीवहिंसाका बचाना, सो जहाँ जीव न हो। ऐसे स्थान पर ही मल मूत्रका क्षेपण करना समिति है और कदाचित् दो एक छोटे जीवजंतु दीख जायें तो कभी अपहृत संयम धारणा करके भी उस स्थानका प्रयोग कर सकते हैं। संयम दो प्रकारके होते हैं—(१) उपेक्षा संयम और

http://sahjanandvarnishastra.org/

(२) अपहृत संयम। उपेक्षा संयमके मायने यह हैं कि जिस प्रदेशपर जंतु बहुत हों या कुछ भी हों तो उस प्रदेशको छोड़कर अन्य प्रदेशोंमें गमन करना मल मूत्र क्षेपण करना आदिक बताया गया है और अपहृत संयममें यदि दो एकही जंतु हों तो उन्हें कोमल पिछीसे एक ओर करके शोधकर उस भूमिमें मल मूत्र क्षेपण कर सकता है। सो जीव जंतुरहित प्रदेश होना चाहिए, प्रतिष्ठापना समितिका पालन करनेके लिए।

समस्त जंतुप्रतिपालनार्थाः कर्माश्रवद्वारनिरोधदक्षाः।
इमा मुनीनां निगदंति पंच पंचत्वमुक्ताः समितीर्जिनेंद्राः ॥२२८॥

समितियोंकी संवरकारिता—जो जन्म मरणसे अतीत हो गए हैं ऐसे प्रभु जिनेन्द्रदेवने ५ समितियोंका श्रमणोंके श्रावण्यमें प्रयोग बताया है। इन समितियोंसे सब जीवोंकी रक्षा होती है। सो ये पाँचोंहीं समितियाँ कर्मोंके आश्रवका द्वार रोकनेमें सक्षम हैं अर्थात् ये सम्वरका कारण बनती हैं। बताया ही गया है कि गुप्ति, समिति, धर्म, अनुप्रेक्षा, परीषह विजय एवं चारित्र इनमें जीवोंके शुभ अशुभ कर्मोंका सम्वर होता है। सो तीन गुप्ति तो उत्कृष्ट वृत्ति हैं। यदि कोई गुप्तिमें न रह सके, कुछ प्रवृत्तिमें आता है तो उसे समितिका पालन करना चाहिये। यह समिति आश्रवनिरोधके कारणभूत है। यद्यपि समितियोंमें प्रवृत्ति अंश भी पड़ा है पर यहाँ इन्द्रियकी प्रधानता है। सो यह सब जगह अलग-अलग बात है। वैसे तो ५ महाव्रतोंमें भी निवृत्ति बतायी गई है और प्रवृत्ति बतायी गई है पर वहाँ प्रवृत्तिपर दृष्टि है, इस कारण व्रतोंको आश्रवका कारण बताया है। भलेही वह शुभ आश्रवोंका ही कारण है, पर है तो आश्रवोंका हेतु। लेकिन समितिसे चलने, बोलने आदिककी प्रवृत्ति होनेपर भी निवृत्तिका ही लक्षण है, निवृत्तिका ही प्रयोजन है। सो निवृत्तिकी प्रधानता होनेसे इसको सम्वरका कारणभूत कहा गया है।

प्रवृत्तयः स्वांतवचनस्तनूनां सूत्रानुसारेण निवृत्तयो वा।
यास्ता जिनेशाः कथयंति तिस्रो गुप्तीर्विधूताखिलकर्मबंधाः ॥२२९॥

साधुवोंकी गुप्तियाँ—जैसा सर्वज्ञ देवने प्रतिपादित किया है उस आगमके अनुसार मन, वचन, कायकी जो प्रवृत्ति है और इसकी जो निवृत्ति है वही गुप्ति कहलाती है। गुप्ति तीन प्रकारकी कही गई है—(१) मनोगुप्ति, वचनगुप्ति एवं कायगुप्ति। जैन शासनके अनुसार मनकी प्रवृत्ति हो या मनकी निवृत्ति हो उसे मनोगुप्ति कहते हैं। जिस सहज सिद्ध स्वभाव अंतस्तत्त्वमें मनकी प्रवृत्ति हो, विचार, चिन्तन सहज स्वरूप में चले,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यह मनोगुप्ति है और वही मनोगुप्ति विषय कषायोंसे निवृत्तिरूप है। इसीलिए प्रवृत्ति और निवृत्ति दोनों ही बातें गुप्तिमें कही गई हैं। वचनकी प्रवृत्ति ऐसी करना कि जिसमें आत्मध्यान बने, आत्माकी अभिमुखता रहे उस प्रवृत्तिको वचनगुप्ति कहते हैं और जिसके स्वात्माभिमुखता परक वचन हो रहे हैं उसके अन्य प्रकारके वचनोंसे निवृत्ति है, इस कारण वह निवृत्ति भी हो गई। तो यह कहलायी वचनगुप्ति। शरीरका जैनागम चरणानुयोगकी विधिके अनुसार शरीरका प्रवर्तना, शरीर चेष्टायें होना, पद्मासनसे ध्यान लगाकर बैठकर शरीरको निश्चल बनाना आदिक जो शारीरिक पौरुष हैं, चेष्टायें हैं वह कायकी प्रवृत्ति है और वही स्थिति अन्य प्रकारकी काय चेष्टावोंकी निवृत्तिरूप है, सो यह कायगुप्ति कहलाती है। इस प्रकार इस छंदमें मुनियोंकी गुप्तियोंका वर्णन किया गया।

एवं चरित्रस्य चरित्रयुक्तैस्त्रयोदशांगस्य निवेदितस्य।
व्रतादिभेदेन भवंति भेदाः सामायिकाद्याः पुनरेव पंच ॥२३०॥

सम्यक्चारित्रकी त्रयोदशाङ्गता—इस परिच्छेदमें अब तक ५ व्रत, ५ समिति और ३ गुप्तियोंका वर्णन किया गया। इनके मिलनेसे चारित्र १३ प्रकारका हो जाता है। तो यह प्रकार नहीं है किन्तु अंग है। जैसे शरीरके ८ अंग कहना तो उचित है मगर शरीरके ८ प्रकार कहना यह उचित नहीं है, क्योंकि अंगोंके समुदायका नाम शरीर है। ऐसेही १३ प्रकारके जो आचरण हैं इनके समूहका ही नाम सम्यक्चारित्र है। सो ५ व्रत, ५ समिति और ३ गुप्तियोंके मिलनेसे चारित्र त्रयोदशांग हो जाता है और इस ही त्रयोदशांग चारित्रके ५ भेद अन्य प्रकारसे कहे गए हैं—सामायिक, छेदोपस्थापना, परिहार विशुद्धि, सूक्ष्मसाम्पराय और यथाख्यात चारित्र।

पंचाधिका विंशतिरस्तदोषैरुक्ताः कषायाः क्षयतः शमाद्वा।
तेषां यथाख्यातचरित्रमुक्तं तन्मिश्रतायामितरं चतुष्कं ॥२३१॥

सामायिकादि यथाख्यातान्त चारित्रोंकी विशेषताका संक्षिप्त दिग्दर्शन—सामायिक आदिक ५ भेदोंमें से जो यथाख्यात चारित्र है वह तो इन २५ कषाय दोषोके क्षयसे हुआ। किसीके उपशम होनेसे हुआ। तो यथाख्यातचारित्र कषायरहित आत्मवृत्तिका नाम है और शेषके जो चार चारित्र हैं वे कषायके क्षयोपशम होनेसे होते हैं। यथाख्यातचारित्र उपशम श्रेणीमें रहने वाले मुनिजनोंके औपशमिक होता है और क्षयक श्रेणीमें रहने वाले श्रवणके क्षायक होता है, पर शेष बचे हुए चार चारित्र कषायके क्षयोपशम होनेसे होते हैं। इस

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीवमें अनन्त गुण विद्यमान हैं, जैसे जाननेकी शक्ति, देखनेकी शक्ति, फिर अनुभवनेकी शक्ति। इस प्रकार शक्तिके निरखनेसे आत्मामें अनन्त गुण विदित होते हैं, परन्तु वे अनन्त गुण ज्ञानावरणादिक कर्मोंके आवरणको ढक रहे हैं। तो अब जैसे उन कर्मोंका क्षयोपशम हो तो वे गुण प्रकट हों, क्षय हो तो प्रकट हों, क्षयोपशम हो तो प्रकट हों। तो चारित्र भी आत्माका एक गुण है और उस चारित्र गुणका घात करने वाला चारित्र मोहनीय कर्म है, जिसके २५ भेद होते हैं। अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ, जिसके उदयमें सम्यक्त्वका घात और चारित्रका घात होता है। अप्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ जिसके उदयमें इस जीवके व्रतरूप भाव नहीं हो पाते। प्रत्याख्यानावरण क्रोध, मान, माया, लोभ जिसके उदयसे जीवके सकल व्रतके भाव नहीं हो पाते। संज्वलन क्रोध, मान, माया, लोभ जिसके उदयसे जीवके यथाख्यात चारित्र प्रकट नहीं हो पाता। ये १६ तो कषायें हैं और ९ नोकषायें हैं। नोकषायका अर्थ है ईसत कषाय हास्य, रति, अरति, शोक, भय, जुगुप्सा, स्त्री वेद, पुरुष वेद, नपुंसक वेद। तो इन २५ भेदोंके क्षयसे क्षायक-यथाख्यात चारित्र होता है और उपशमसे औपशमिक यथाख्यात चारित्र होता है, पर प्रकृतियोंके क्षयोपशमसे सामायिक आदिक चार प्रकारके चारित्र प्रकट होते हैं। जिसके अनन्तानुबंधीका उपशम हो, क्षय हो या क्षयोपशमकी विधिमें हो, सम्यक्त्व हो गया है अब अप्रत्याख्यानावरण और प्रत्याख्यानावरण कषाय इन ८ का क्षयोपशम हो मायने उदयाभावी क्षय और उपशम हो और संज्वलनका उदय हो, ऐसी स्थितिमें अभेद रूप सामायिक चारित्र होता है और अभेद पद्धतिसे उपयोग हो तो छेदोपस्थापना चारित्र होता है। परिहार विशुद्धिके साथ परिहार विशुद्धि चारित्र होता है और एक संज्वलन लोभ शेष रह गया और शेष कषायोंका उपशम या क्षय हो गया तो वहाँ सूक्ष्मसाम्पराय चारित्र होता है। तो सूक्ष्मसाम्पराय चारित्रमें उपशम या क्षयकी बात है, पर संज्वलन लोभ कषायका उदय आनेसे वह विधि तो क्षायोपशमिक जैसी बनी। यों शेष चार प्रकारके चारित्रको क्षायोपशमिक कहा गया है।

सद्दर्शनज्ञानफलं चरित्रं ते तेन हीने भवतो वृथैव।
सूर्यादिसंगेन दिवेव नेत्रे नैतत्फलं येन वदंति संतः ॥२३२॥

चारित्रसे सम्यक्त्वलाभ व ज्ञानलाभकी सफलता—सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्रके विषयमें उनकी एकताका दृष्टान्तपूर्वक समर्थन करते हैं। जैसे सूर्यादिकके प्रकाशके बिना नेत्रोंका धारण करना व्यर्थ है, नेत्र तो हैं देखनेका समर्थन तो है पर है अंधेरा, न सूर्यका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्रकाश है न दीपक आदिकका प्रकाश है तो नेत्र तो कुछ काम न कर सके, कुछ दीखा ही नहीं। तो प्रकाशके बिना नेत्रोंका धारण करना व्यर्थ है। वहाँ अभीष्ट पदार्थोंका देखना और अभीष्ट स्थान पर पहुँचना नहीं हो सकता। इसी तरह चारित्रके बिना सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानका भी धारण करना व्यर्थ है। व्यर्थ इस दृष्टिसे है कि केवल सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञानसे कभी अभीष्टकी प्राप्ति नहीं हो पाती। जब चारित्रगुणका विकास हो, जैसा जाना और श्रद्धान किया उस प्रकारसे उपयोग रम जाय निज स्वरूपमें, तो यह स्थिति ही तो सार्थक स्थिति कहलाती है। इसमें किसीको सम्यग्दर्शन और सम्यग्ज्ञान तो हुआ और सम्यक्चारित्र न हुआ तो अभीष्ट अंतस्तत्त्व में रमने और पहुँचनेकी सम्भावना न हुई, इस कारक इसको व्यर्थ कहा गया है। सारांश यह है कि चारित्रको अवश्य धारण करना चाहिये क्योंकि सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञानसे जो प्रकाश पाया है उसकी सफलता सम्यक्चारित्रसे है। जैसे कि कोई औषधिकी श्रद्धा करे और औषधिका खूब ज्ञान भी रखे कि यह अच्छी औषधि है, इससे रोग दूर होगा तो भी जब तक औषधिको न पीवे तब तक उसका औषधियोंका जानना, श्रद्धान करना किस काम का ? ऐसे ही यदि सम्यक्चारित्रकी बात न बने तो कहा गया है कि फिर श्रद्धान और ज्ञान करना व्यर्थ है याने फलवान न हो सका।

कषायमुक्तं कथितं चरित्रं कषायवृद्धावपघातमेति।
यदा कषायः शममेति पुंसस्तदा चरित्रं पुनरेति पूतं ॥२३३॥

कषायवृद्धिसे चारित्रविनाश व कषायशमनसे चारित्रविकास—चारित्र कहते हैं कषायके अभावको। आत्मामें कषायें न जगें और अपने सहज ज्ञानस्वरूप अंतस्तत्त्वमें रमे वह चारित्र कहलाता है। तो चारित्र कषायके अभाव बिना सम्भव नहीं है। तो जिस जीवके कषायोंका अभाव नहीं हो पाता उस जीवके कषायोंकी वृद्धि होने लगती है, और जब कषायें बढ़ती हैं, कषायोंपर दृष्टि है, लगाव है तो इसका चारित्रगुण भी नष्ट होने लगता है। सो कषायोंका अभाव होनेसे उपयोग शान्त अपने स्वरूपके अनुसार हो जाता है। बस यही आत्माकी पवित्रता है कि इसके कषायभाव न रहे और अपने सहज अन्तस्तत्त्वमें यह मैं परम पदार्थ हूँ, ऐसी भावना बने यह ही वास्तवमें चारित्र कहलाता है।

कषायसंगौ सहते न वृत्तं समार्द्रचक्षुर्न दिनं च रेणुं।
कषायसंगौ विधुनंति तेन चारित्रवंतो मुनयः सदापि ॥२३४॥

चारित्रपालनके लिये कषायन्यावृत्तिकी अनिवार्यता—जहाँ सम्यक्चारित्र होता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

वहाँ क्रोधादिक कषायें या धनधान्यादिक बाह्य परिग्रहकी स्थितिको यह ज्ञानी नहीं सह सकता। जैसे कि किसीकी आँख दुःखती है, ललाई आदिक होने लगती है तो वह दुःखित आँखोंसे सूर्यका प्रकाश या धूलके कणोंको नहीं सह सकता, ऐसे ही चारित्रभाव भी क्रोधादिक कषायोंको और धन-धान्यादिक परिग्रहके कणोंको नहीं सह सकता। यदि कषायभाव आ जाय तो चारित्रमें दोष आयगा। कहो कभी चारित्रका घात भी हो जाय। इसी प्रकार धन-धान्यादिक बाह्य परिग्रहोंकी मौजूदगी रहे तो वहाँ भी चारित्र नहीं टिक पाता। इस कारण जो सम्यक्चारित्रको निर्दोष रीतिसे पालना चाहते हों वे मुनिजन कषायोंको और परिग्रहोंको अपने पास न फटकने दें, क्योंकि कषाय होनेसे चारित्रका घात है और परिग्रह होनेसे कषायभाव होनेका साधन है। अतः कल्याणार्थी पुरुषोंका कर्तव्य है कि वे अन्तरंग और बहिरंग दोनों प्रकारके परिग्रहोंसे दूर रहें।

निःशेषकल्याणविधौ समर्थं यस्यास्ति वृत्तं शशिकांतिकांतं।
मर्त्यस्य तस्य द्वितयेऽपि लोके न विद्यते काचन जातु भीतिः ॥२३५॥

चारित्रसे सकलकल्याणलाभ—निर्दोष चारित्र पालन करनेसे समस्त कल्याणकी प्राप्ति होती है। संसारमें ऐसा कोई भी दुर्लभ पदार्थ नहीं है जो चारित्रके पालनसे न मिलता हो। बात यहाँ यह समझना कि जिस जीवने अविकार स्वभाव सहज चैतन्य तत्त्वको जाना, उस ही तत्त्वका श्रद्धान किया, उस ही सहज अंतस्तत्त्वमें उपयोगको रमाया तो अब उसे चाहिए क्या? संसारका कोई भी बाह्य परिग्रह कण उनकी चाह कोटिसे बाहर है। तो जहाँ कुछ भी चाह नहीं है वहाँ सब कुछ ही मिला समझियेगा। तो सब कुछ चारित्रभावसे ही प्राप्त होता है, यह जानकर चन्द्रज्योत्सनाके समान स्वच्छ चारित्रको धारण करने वाले जो लोग होते हैं वे ही इहलोक और परलोक दोनोंमें निर्भय सुखको प्राप्त करते हैं। आत्मा पर विपत्ति है तो यही है कि अपने स्वभावमें नहीं रम पाते। सो स्वभावमें जो रम सके उसके लिए कोई कष्ट और संकट होते ही नहीं हैं। सो चारित्रधारी इहलोक और परलोक दोनोंमें भयरहित, बाधारहित आत्मीय आनन्दको प्राप्त करते हैं।

न चक्रनाथस्य न नाकिराजो न भोगभूजस्य न नागराजः।
आत्मस्थितं शाश्वतमस्तदोषं यत्संयतस्यास्ति सुखं विबाधं ॥२३६॥

चारित्रसे अलौकिक आनन्दका अनुभव—संयमी पुरुषके जो आनन्द उत्पन्न होता है वह आनन्द चक्रवर्तीको प्राप्त नहीं है क्योंकि चक्रवर्तीकी दृष्टि तो बाह्य पदार्थोंमें चाहे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितना ही संयोग मिला हो, छह खण्डका राज्य मिला है मगर जिसकी दृष्टि परकी ओर है उसको आनन्द कैसे कहा जा सकता है ? वहाँ तो क्षोभ ही है। तो संयमी जीवके जो आनन्द होता है उसके सामने नागेन्द्र या स्वर्गोंके इन्द्रकी सम्पत्ति भी तुच्छ है। आखिर वह पौद्गलिक ढेर ही तो है। किसी भी बाह्य पदार्थसे आत्मतत्त्वमें कुछ कष्टकी बात नहीं हो सकती। सो इन्द्रके वैभवमें भी वह आनन्द नहीं है जो संयमी जीवोंमें पाया जाता है। संयमी जीवोंके आनन्दको कोई भोग भूमिया जीव पा नहीं सकता। भोग भूमिया मनुष्य भोगकी स्थितिमें ही तो रमा करते हैं। सुख पा रहे मगर उस सुखकी कीमत क्या ? पीछे भी क्षोभ हो रहा है और उसके फलमें संसारके दुःख ही भोगने पड़ेंगे। तो भोग भूमिके सुख संयमी जनोंके आनन्दकी तुलना नहीं कर सकते। क्योंकि अन्य सुख इस आनन्दकी तुलना नहीं कर पाते कि यह आनन्द स्वमें स्वके उपयुक्त रहनेसे प्रकट होता है, पराधीन नहीं है यह आनन्द। जब ही दृष्टिकी, जब ही अपने स्वरूपको देखा तब ही वह आनन्द इस संयमीको प्राप्त होता है। कल्याणार्थी जीवका कर्तव्य है कि बाह्य पदार्थोंको तुच्छ समझे और अपने आपकी दृष्टिसे बने तब वह आनन्द प्राप्त हो। आत्मा पवित्र बने तो यह उनके कल्याणकी बात है। ये मायामयी जगतके मायामयी लोग मेरा क्या सुधार कर सकेंगे जिनके लिए यश चाहने वाले लोग नाना प्रकारकी कीर्तिकी चेष्टायें करते हैं। कोई दूसरा इस आत्माको कुछ भी देनेमें समर्थ नहीं है। यह ही आत्मा अपने सहज स्वरूपको सम्हाले तो उसे आनन्द प्राप्त होता है।

निवृत्तलोकव्यवहारवृत्तिः सन्तोषवानस्तसमस्तदोषः।
यत्सौख्यमाप्नोति गतांतरायं किं तस्य लेशोऽपि सरागचित्तः॥२३७॥

चारित्रलभ्य आनन्दकी सरागचित्त द्वारा अलभ्यता—जो पुरुष जो साधक सांसारिक समस्त व्यवहारोंसे अपनी वृत्ति हटा लेता है, व्यवहारमें नहीं जगता, व्यवहारमें दृष्टि होने पर केवल आकुलता और भावोंकी परतंत्रता ही चलती है। साधक वही है, मुनि वही है जो सांसारिक समस्त व्यवहारोंसे अपनी वृत्ति हटा लेता है। कल्याणार्थी पुरुष ज्ञानीजन ऐसे ही साधकोंकी उपासनामें रहते हैं। जो लोग जगतके व्यवहारमें ही प्रेम किए हुए हैं उन साधक जनोंसे ज्ञानीजन क्या बोलेंगे ? संसारकी निवृत्तिका कोई दूसरा आदर्श न मिलेगा। वास्तविक आदर्श वही है जो सांसारिक व्यवहारोंसे अपनी दृष्टि हटा लेता है और इस कारण जो संतुष्ट रहता है, जिसने समस्त दोषोंको नष्ट कर संतोष प्राप्त कर लिया है वह पुरुष जितना निराबाध सुख प्राप्त करता है उसका हजारवाँ हिस्सा भी रागी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पुरुष प्राप्त नहीं कर सकता। आत्मदृष्टिसे, आत्माश्रयसे स्वाधीन होने वाला आनन्द वास्तविक आनन्द है, और जिन सुखोंमें अनेक बाह्य पदार्थोंकी अपेक्षा रखनी पड़ती है, वे सुख वास्तवमें सुख ही नहीं हैं।

ससंशयं नश्वरमंतदुःखं सरागचित्तस्य जनस्य सौख्यं।
तदन्यथा रागविवर्जितस्य तेनेह संतो न भजंति रागं ॥२३८॥

सरागके सुखमें और विरागके सुखमें अन्तर—जो मनुष्य ज्ञान सहित हैं वे विनाशीक सुखका अनुभव करते हैं, जिनका चित्त रागमें ही है, राग ही जिनको सुहाता है, रागमें ही जो विश्राम पाते हैं वे पुरुष राग रहित आत्माके स्वभावको क्या जानेंगे ? जब राग रहित आत्माके स्वभावको जान न सके तो वास्तविक आनन्दका अनुभव क्या करेंगे ? वे तो कल्पनाजन्य इन्द्रिय सुखोंमें ही सुख पानेका अनुभव करते हैं। ये इन्द्रिय सुख विनाशीक हैं, क्योंकि सुखके आधारभूत, आश्रयभूत बाह्य पदार्थ सदा नहीं रहते, इनका चित्त भी स्थिर नहीं रहता, इस कारण ये सब विनाशीक हैं। इन्द्रिय सुख अन्तमें नियमसे फल देने वाले हैं। जैसे कि यही अनुभव होता है कि विषय सुखोंको भोगना है तो उसके फलमें पछतावा होता है, निर्बलता होती है, शारीरिक संकट आते हैं, व्याधियाँ होती हैं, कोई अच्छा फल नहीं निकलता। फिर पापका जो बंध किया उसके फलमें अगले भवमें खोटी दशायें पाते हैं। ये इन्द्रिय सुख अन्तराय सहित हैं। जिस वस्तुको भोग रहे हैं वह वस्तु बिगड़ जाय, न रहे, उसे कोई छीन ले यह भी अन्तराय है अथवा भोगने वाली इन्द्रिय बिगड़ जाय वह भी अन्तराय है, या चित्त उस ओर न रहे, बिगड़ जाय तो वह भी अन्तराय है। पापका उदय आनेसे अनेक ऐसे अन्तराय आते हैं, तो इन्द्रिय सुखमें अन्तराय बहुत पड़े हुए हैं। ऐसे सुखोंका अनुभव रागी जीव किया करते हैं, किन्तु जो विरागी पुरुष हैं, जिनका रागमें चित्त नहीं है वे अविनाशी सुखका भोग करते हैं। आत्मा स्वयं सुखमय है और सुख स्वरूप आत्मा दृष्टिमें आये, अन्य कोई दृष्टिमें न रहे तो वहाँ जो आनन्द मिलता है वह अविनाशी आनन्द है, खुद सदा रहता है तो आश्रयभूत स्व कहीं जा नहीं सकता। अतएव इस ओरसे देखें तो आनन्द सदा रहना चाहिये। आत्माकी दृष्टि शुद्ध होने पर, राग रहित होने पर स्थिर ही रहता है। अस्थिरताका कारण तो रागद्वेष मोह है। तो विराग पुरुषकी दृष्टिमें स्थिरता रहती है, इस कारण आत्मीय सुख अविनाशी सुख है। यह आत्मीय आनन्द स्वभावतः उत्पन्न होता है। इसमें कर्मोदय आदिककी आवश्यकता नहीं होती है। अनैमित्तिक आनन्द है, इस कारण सदैव रहा करता है। तो आत्मीय आनन्द

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नित्य है और सदा मधुर है। जिस समय आनन्द भोग रहे उस समय भी अलौकिक आनन्द आ रहा, परम आह्लाद भी अनुभव हो रहा और उसके फलमें यही आनन्द मिलेगा। कोई कर्मबंध न होगा, कोई अंतरायकी बात नहीं आ सकती। ये सदा मधुर हैं और आत्मीय आनन्दमें कोई अन्तराय भी नहीं आता। अन्तराय उसे कहेंगे कि जो पराधीन सुख है और परका वियोग हुआ तो वह अन्तराय वाला बन गया। अब यहाँ स्वका ही तो आनन्द अनुभव रहा। स्वकी दृष्टि ही आनन्दको भोगती है और यह सब स्वाभाविक है। सदैव रहता है तो इस आनन्दमें क्या अन्तराय आयगा। इस कारण जो श्रेष्ठ पुरुष हैं, हित अहितके जानकर हैं वे रागद्वेष मोहसे सदैव दूर रहा करते हैं।

विनिर्मलं पार्वणचंद्रकांतं यस्मास्ति चारित्रमसौ गुणज्ञः।
मानी कुलीनो जगतोऽभिगम्यः कृतार्थजन्मा महनीयबुद्धिः ॥२३६॥

निर्मल चारित्रवान पुरुषकी सम्माननीयता—जिस पुरुषका चरित्र पूर्णमासीके चन्द्रकी तरह कान्त है, निर्मल है वही वास्तवमें मानी पुरुष है। यहाँ मानीका अर्थ घमंड करने वाला नहीं किन्तु जगतके द्वारा मान्य है। जिसको लोग गौरवके साथ देखते हैं, जिसका नाम गौरवके साथ लेते हैं ऐसा श्रेष्ठ पुरुष है वह जिसका चरित्र निर्मल है। चारित्रकी निर्मलता रागद्वेषके दूर होनेसे होती है, क्योंकि जो भी पाप बँधते हैं या इन्द्रिय विषयोंमें कुछ भी प्रवृत्ति जगती है तो उसका कारण है राग और द्वेष। तो जहाँ राग और द्वेष नहीं रहा, वहाँ चारित्र निर्मल होता है। तो ऐसा निर्दोष चारित्र वाला पुरुष ही इस जगतमें मान्य है और वही कुलीन है। श्रेष्ठ कुलमें उत्पन्न होनेको कुलीन कहते हैं। आत्माका श्रेष्ठ कुल है चेतन। अरहंत भगवान इस विशुद्ध चैतन्यस्वरूपमें ही रम रहे हैं, इसी कारण ही तो सर्वोत्कृष्ट हैं। तो वही वास्तवमें कुलीन पुरुष है जिसका चारित्र निर्मल होता है, श्रेष्ठ पुरुष भी वही है जिसका चारित्र निर्दोष है। लोग श्रेष्ठ चारित्र वाले पुरुषकी ही प्रशंसा करते हैं और वही वास्तवमें श्रेष्ठ समझा जाता है। तो निर्मल चारित्र वाला पुरुष जगतमें श्रेष्ठ है और उस ही का जन्म कृतार्थ है याने जन्म सफल होगा। जगतमें ये जीव अनादि कालसे रागद्वेषवश परवस्तुवोंमें ही रमते चले आये हैं। यह जीवके लिए बड़ा कलंक है। जीव स्वयं तो ज्ञानानन्दस्वरूप है और परवस्तुमें बुद्धि अटकनेसे न ज्ञानका विकास चल रहा, न आनन्दगुणका शुद्ध परिणमन चल रहा। तो जो भी इस रागद्वेषमें जानकारी है, प्रवृत्ति है वह सब इस जीवके लिए कलंक है। तो ऐसा कलंक भव भवमें लगाता चला आया है। आहार, निद्रा, भय, मैथुन चार संज्ञावोंके वश होकर दुःखी होता चला आया है तो उस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जन्मकी क्या कृतार्थता है ? उस जन्मकी कृतार्थता है जिसमें यह जीव समस्त बाह्य पदार्थोंसे चित्त हटाकर केवल शाश्वत सहज स्वरूपमें ही चित्त रमे वही पुरुष वास्तवमें श्रेष्ठ है और उस ही का जन्म सफल समझा जाता है। ऐसे ही पुरुषकी बुद्धि सम्माननीय है जिसका चित्त वैराग्यकी ओर जाय।

गर्भे विलीनं वरमत्र मातुः प्रसूतिकालेऽपि वरं विनाशः ।
असंभवो वा वरमंग भाजो न जीवितं चारुचरित्रमुक्तं ॥२४०॥

चारित्रहीनों के जीवनकी निन्द्यता—जो पुरुष निर्दोष चारित्रसे रहित हैं याने दुराचारी हैं, पापोंमें जिनकी बुद्धि फसी है उनका जीवन निन्दनीय है। जिन्होंने जन्म लेकर किशोर, युवक बनकर खोटे विषयोंमें प्रवृत्ति डाली है। हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील परिग्रह इनमें ही जो रम रहे हैं और इनके लिए निन्द्यसे निन्द्य कार्य कर बैठते हैं, उनका जीवन क्या जीवन है ? निन्दनीय जीवन है, बेकार जीवन है और उनके विषयमें आचार्य कहते हैं कि वे यदि अपनी माताके गर्भमें ही विलीन हो जाते तो उत्पन्न होते ही मर जाते तो वह अच्छा था क्योंकि इस जीवनसे लाभ उन्हें क्या मिला या बाहर निकलकर ही मर जाते अथवा इस पर्यायमें ही पैदा न होते तो अच्छा था। मर जाना या मनुष्य पर्यायमें न होना यह तो किसी कदर अच्छा है क्योंकि इसने मनुष्य पर्याय न पायी। इस कारण कोई तपश्चरण आदिक न कर सके, यह कहनेके लिए तो रहा या यह बात तो रही कि वेचारा यह चौइन्द्रिय जीव, एकेन्द्रिय जीव क्या करे ? उसका उदय ही ऐसा है, भव ही ऐसा है कि न संयमकी योग्यता है, न आत्मीय आनन्दकी पात्रता है तो उसको तो यों ही टल जायेगा, पर जो मनुष्य होकर ऊधमी बनें, स्वच्छंद विषयोंमें रमण करने वाला बने, चोर, डाकू, वेश्यागामी, शराबी, मांसभक्षी अनेकोंको धोखा देने वाला, दिन दहाड़े लूटने वाला, जिस चाहेको मारने पीटने वाला, ऐसा कोई उपद्रवी बन जाय तो उसके लिए धिक्कार है कि ऐसा श्रेष्ठ समागम पाया था तिस पर भी कुबुद्धिसे यह खोटे पथमें चला गया। उसके लिए कह रहे हैं कि वह इस पर्यायमें पैदा ही न होता या गर्भमें या बाहर निकलते ही मर गया होता तो यह अपेक्षाकृत अच्छा है उससे कि मनुष्य जीवन पाया और अनेक तरहके पाप किया। तो जिसने श्रेष्ठ इस मनुष्य पर्यायको पाकर चारित्र धारण नहीं किया उसको मनुष्य पर्यायका पाना सर्वथा निरर्थक है।

निरस्तभूषोऽपि यथा विभाति पवित्र चारित्रविभूषितात्मा ।
अनेक भूषाभिरलंकृतोऽपि विमुक्तवृत्तो न तथा मनुष्यः ॥२४१॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निर्दोष चारित्रवानकी सहज शोभा—वास्तविक श्रंगार है इस मनुष्यका तो निर्दोष चारित्र श्रंगार है। दुनियाके चित्तमें आदरके योग्य यदि कोई बात है, किसी पुरुषके सम्बन्धमें तो वह उसका निर्दोष चारित्र ही है। तो निर्दोष चारित्रसे सहित पुरुष चाहे भूषणोंसे रहित हो, कैसे ही शरीर वाला हो उस पुरुषकी शोभा होती है, वैसी शोभा नाना प्रकारके आभूषणोंसे सुसज्जित चारित्रहीन पुरुषोंकी नहीं हो सकती। इसलिए जो सोना चांदी आदिक गहने हैं वे सब पार्थिव भूषण है, उनसे आत्माका क्या श्रंगार बनता है? चारित्र उत्तम हो, निर्मल हो, दया आदिकसे विभूषित हो वह पुरुष श्रंगार रहित हो तो भी वह श्रंगार सहित है। उत्तम श्रंगार उसके भीतरकी दृष्टिका बना हुआ है। तो आभूषण रहित भी पवित्र चारित्रसे विभूषित आत्मा जैसे शोभित होता है वैसे अनेक आवरणोंसे अलंकृत चारित्रहीन पुरुष शोभाको प्राप्त नहीं हो सकता।

सद्दर्शनज्ञानतपोदयाद्याश्चारित्र भाजः सफला समस्ताः।
व्यर्थाश्चरित्रेण बिना भवंति ज्ञात्वहे संतश्चरिते यतंते ॥२४२॥

चारित्रके सम्पर्कसे सर्वगुणोंकी महनीयत—अहिंसा आदिक तपश्चरणोंसे संयुक्त पुरुष त्रयोदशांग चारित्रके धारण करने वाले पुरुषके सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, रमण, शान्ति आदिक समस्त गुण सफल हैं। चारित्रके रहने पर सर्व गुणोंका श्रंगार बढ़ जाता है, किन्तु जो चारित्रसे रहित हैं उनके वे सारे गुण निरर्थक हैं। कोई पुरुष परस्त्री लम्पटी है, शराब खोर है, मांस भक्षी है दुनियाको सताने वाला है, चारित्रहीन है। उस पुरुषमें यदि कोई गुण हो, कोई कला विशेष हो तो भी वह व्यर्थ है। वह कोई सफल नहीं कहलाता। उन गुणोंके कारण उनकी शोभा लोकमें नहीं हो पाती और जो चारित्रसे रहते हैं उनके सारे गुण निरर्थक हैं लेकिन जो अहिंसक हैं वे सदा सत्य बोलने वाले हैं। किसी भी वस्तु पर कभी भी चित्त नहीं डिगाते हैं, पर स्त्रीके प्रति माता, बहिन पुत्रीके समान दृष्टि रहती है, उनके प्रति स्वप्नमें भी कामवासना नहीं जगती। जो तृष्णा रहित है, जो श्रमण ५ महाव्रत, ५ समिति, ३ गुप्ति इन १३ प्रकारके अंगों सहित चारित्रके धारण करने वाले हैं उनके सम्यक्त्वकी बड़ी शोभा है। लोग कह उठते हैं कि जैसी आस्था है वैसा ही करके दिखाया है। उनके ज्ञानकी बड़ी शोभा है। वे तपश्चरण करें, इन्द्रियका दमन करें, वे भी बड़े सफल हैं। तो चारित्रके होने पर समस्त गुण फल वाले बनते हैं, इस कारण जो विवेकी पुरुष हैं वे हमेशा चारित्र धारण करनेका प्रयत्न करते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

१०. जातिनिरूपण

अनेकमलसंभवेकृमिकुलैः सदा संकुलेविचित्र बहुवेदने बुधविनिंदिते दुःसहे ।
भ्रमन्नयमनारतं व्यसनसंकटे देहवान् पुराजितवशो भवेभवति भामिनीगर्भके ।।२४३।।

जीवपर अनादिसे जन्मसंकट—ये प्राणी पूर्वोपार्जित कर्मोंके वशसे नाना दुःखोंसे परिपूर्ण योनियोंमें भ्रमण करते करते स्त्रीके महा निन्द्यनीय अनेक मलोंसे उत्पन्न कीड़ावोंके समूहसे व्याप्त गर्भाशयमें देह धारण करते हैं और वहाँ विचित्र दुःसह वेदनायें भोगते हैं। इस परिच्छेद में पाये हुए जन्मकी चर्चा की जा रही है। ये प्राणी अनादि कालसे अपने कमाये हुए कर्मोंके उदयके अनुसार नाना दुःखोंसे भरी योनियोंमें भ्रमण करते चले आये हैं। अनन्त काल तो उन्हें निगोदमें बीता जहाँ एक श्वांसमें १८ बार जन्म मरण करना पड़ा। इसीमें अनन्त काल खो दिया। सुयोगसे वहाँसे निकले तो पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु और प्रत्येक वनस्पति हुए। ये निगोद साधारण वनस्पति कहलाते। अब यहाँ प्रत्येक वनस्पति तक बने लेकिन वहाँ भी कितना दुःख है। काटना, छेदना, भूनना, फलोंका मसलना आदि कितनी ही प्रकारके दुःख हैं। उन्हें भी यह जीव सहता आया। वहाँसे कुछ विकास हुआ तो दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चौइन्द्रिय आदिक हुआ। वहाँ भी अनेक दुःख कैसा रहने लगे, उन कीड़ों मकोड़ोंको यों ही सता डालते हैं, अन्य पशु पक्षी आदिक यों ही खा डालते हैं तो वहाँ भी बड़ा कठिन दुःख भोगा। पशु पक्षी आदिक हुए तो सर्वत्र दुःख ही दुःख भोगा। अब कुछ सुयोगसे मनुष्य जन्ममें आता है, तो कहाँ तक देह धारण किया यह बात इस छंदमें बतायी गई है। गर्भाशयमें देह धारण करता है जहाँ अनेक मल भरे पड़े हैं। कीड़ोंके समूहसे व्याप्त है, महानिन्द्यनीय है, जिसमें रहना एक घबड़ाहट जैसी ही जगह है, पर उस गर्भाशय में वह रहता है, नाना दुःसह वेदनायें सहता है। बताते हैं कि गर्भाशयमें यह बालक औंधे मुख लटके रहता है। शरीर उसका फसा रहता है। परस्पर मिला रहता है। गर्भाशय ही तो है। तो ऐसे अनेक दुःख यह जीव गर्भमें रहकर भोगता है।

शरीरसुखावहं विविधदोषवर्चोगृहं सशुक्ररुधिरोद्भवं भवभृता भवे भ्राम्यते ।
प्रगृह्य मनसंततेर्विदधता निमित्तं सरागमनसा सुखं प्रचुरमिच्छता तत्कृते ।।२४४।।

क्लेशनिदान शरीरकी रुचिसे जीवोंकी जन्मव्यसनसंतति—यह शरीर दुःखका देने वाला है। शरीर भिन्न वस्तु है। इस पुद्गलसे आत्माका क्या नाता है? कहाँ तो यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

चैतन्यमात्र वस्तु और कहाँ यह शरीर पौद्गलिक घिनावना। इस शरीरका सम्बन्ध नाना दु:खोंका उत्पादक है। व्याधियाँ शरीरमें होती हैं। मान अपमानकी बुद्धि यह जीव शरीरके कारण करता है, जब शरीरको समझा कि मैं हूँ तब यह कल्पना जगती कि इस मनुष्यने मुझको गाली दी है। कोई यदि शुद्ध चैतन्यमात्र आत्माको समझे कि मैं यह हूँ जो अमूर्त है, केवल चित्प्रतिभास मात्र है, ऐसा समझने वालेके हृदयमें यह बात न आयगी कि इसने मुझको कुछ कहा। तो मान अपमान इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदिक जितने हैं वे सब शरीरके कारणसे हैं। किसी शरीरधारीने किसी शरीरधारीसे इष्ट अनिष्ट सम्बन्ध मान लिया जिससे वह कष्ट पाता है। तो जितने भी दु:ख हैं वे सब इस शरीरके सम्बन्धसे हैं। सो शरीर दु:ख ही देने वाला है। इस कारण जो विवेकी पुरुष है वह एक ही निर्णय रखता है कि मुझको तो शरीर रहित होना है। शरीरको बराबर लिपटाये रहनेसे इस मुझ आत्माको क्या लाभ है? कष्ट ही कष्ट पाया जा रहा है। तो आत्मा जैसा अपने आपमें अमूर्त शुद्ध चैतन्यस्वरूपमें है उस रूपमें अपने आपको पाये, यह विवेकीका पौरुष होता है। तो यह शरीर दु:खका उत्पन्न करने वाला है। यह शरीर नाना दोष और मल मूत्रका घर है। इस शरीरमें है क्या? इसे आँखों देख सकते हैं। चमड़ा, हड्डी, खून, मल मूत्र आदि अपवित्र वस्तुवोंका ही तो यह भण्डार है, जिसे देखकर यह जीव निरख रहा है कि देह कितना अपवित्र है। ऐसे अपवित्र देहसे रुचि बने यह जीवके लिए कितना बड़ा कलंक है। तो महान विषका ऐसा ही प्रभाव है कि यह अपने सहज स्वरूपकी हत्या करता चला जा रहा है। अपने प्रभु स्वरूपकी सुध नहीं लेता तो यह शरीर नाना दोषोंका घर है। जगतकी जो अधिकसे अधिक गंदी वस्तुवें हैं वे सब वस्तुवें इस शरीरमें पायी जाती हैं। तो इस शरीरको देखकर जो जीव प्रेम करते हैं, सुहा जाते हैं, कैसा रूप है, कैसा आकार है, इस तरह जिनके चित्तमें कल्पनायें उठती हैं उनपर मोहका विष चढ़ता है और वे अपने इस दुर्लभ जीवनको व्यर्थ खो रहे हैं। यह देह उत्पन्न भी तो रज वीर्यसे हुआ है। जो अपवित्र है, गंदी चीज है, जिसका छूना, देखना भी एक घृणाको उत्पन्न करता है, ऐसी घृणित वस्तुसे इस जीवका देह उत्पन्न हुआ है, ऐसा कठिन दु:खदायी यह शरीर है, मगर उसके प्रेममें अंधा होकर इस देहके सुखके लिए यह जीव नाना प्रकारके उपायों को रचता है। रात दिन मोही जीवोंकी धुन इस शरीरके पालनके लिए रहती है। कैसा सुन्दर बढ़िया खाना होना चाहिए। स्पर्शन इन्द्रियका भी सुख, स्त्री सुख, प्रेमवार्ता, राग भरी बातोंमें रमण करना, ये सारी स्वच्छंदतायें यह प्रेम में अंधा हुआ पुरुष कर रहा है। देहके आसक्त

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

जीव इस देहसे काम नहीं लेना चाहते। इस देहको आराममें रखना पसन्द करते हैं, कैसे कैसे ठाठ, कमरेकी सजावट, कुर्सी, पलंग, देहको निरखकर कैसा अपने आपमें घमंड करते हैं। मैं इन लोगोंमें सबसे ऊँचा हूँ आदिक कैसी ही अवस्थायें बताते हैं। सो यह जीव जन्म-मरणके कारणोंका ही संग्रह कर रहा है। सो देहमें आसक्त हुआ यह जीव चिरकाल तक संसारमें भ्रमण करता है।

किमस्य सुखमादितो भवति देहिनो गर्भके किमंगलभक्षण प्रभृतिदूषिते शैशवे।
किमंगज कृतासुखव्यसनपीडिते यौवने किमंगगुणमर्दनक्षमजराहते वार्धके ॥२४५॥

जीवनमें प्रारम्भसे अन्त तक क्लेश—इस मनुष्य जीवनमें अथवा किसी भी जीवनमें इन प्राणियोंको किसी भी अवस्थामें सुख नहीं मिलता। एक मनुष्य की ही बात देख लो जब वह गर्भमें रहता है तब तो अंगके सिकुड़नेसे गर्भमें ही बड़े दु:ख पा रहा है, अंग सिकुड़कर पड़ा रहा, अंग फैलानेका अवकाश नहीं, ऐसी स्थितिमें बड़ा कठिन दु:ख होता है। जब वह लड़का बाहर निकलता है तब अबोधसा होता। कहो वह अपना ही मल या दूसरेका मल हाथसे उठाकर अपने मुखमें रख ले। कितनी ही तकलीफें उठाता रहता है। कुछ और बड़ा हुआ तो बचपनके, किशोर अवस्थाके बड़े-बड़े दु:ख हैं, जिसे प्रायः सभी लोग अनुभव कर चुके हैं। अपनी युवावस्थामें यह प्रवेश करता है तो कामजन्य पीड़ावोंसे पीड़ित रहता है, जब वृद्ध हो जाता है तो शरीरकी कान्ति नष्ट हो जानेसे दु:ख भोगता है। तो एक मनुष्यकी ही क्या कहानी है? मनुष्यको सब अवस्थावोंमें दु:ख भोगना पड़ता, ऐसे ही सभी गतियोंमें इस जीवको बहुत कठिन दु:ख भोगना पड़ता है। तो इस जाति अतिरिक्त जन्ममें कहाँ कल्याण रखा है? जन्मरहित अवस्था ही इस जीवका कल्याण रूप होता है।

किमत्र विरसे सुखं दयितकामिनी सेवने किमन्यजन दुर्लभे द्रविण संचये नश्वरे।
किमस्ति भुवि भंगुरे तनयदर्शने वा भये यतोऽत्र गंतचेतसा तनुमता रतिर्बध्यते ॥२४६॥

जीवोंका निःसार समागमोंमें प्रेम होनेसे संसारमें संसरण—इस लोकमें किस जगह सुख तलाशा जाय? रसहीन, जहाँ आत्माका रस नहीं है ऐसे जगतके सारे कल्पित सुख ये सब क्षोभसे भरे हुए हैं। सुन्दर स्त्रियोंके सेवन करनेसे यह कामी सुख मानता है जो कि एक कलंक है। कहाँ तो ज्ञानमात्र अमूर्त परमात्मस्वरूपके समान आत्मा और कहाँ इसकी दृष्टि गई, कहाँ उपयोग फंसा और कहाँ गन्दे कार्योंमें लग गया। इसके अतिरिक्त उन्हीं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कल्पित सुखोंमें अन्तमें अवश्य ही दुःख उठाना पड़ता है। अनेक मनुष्य बड़े यत्नोंसे कठिनता पूर्वक धनका संचय कर लेते हैं और उसमें सुख मानते हैं, पर वहाँ भी सुख कहाँ? तो वे धन समागम सब विनश्वर और क्षमाशील हैं। करोड़ोंका भी धन संचित हो जाय लेकिन उससे इस जीवनमें भी सुख नहीं मिल पाता। अनेक चिन्तायें, अनेक शल्य अनेक उपसर्गोंका सामना करना पड़ता, कहीं डाकू लोग धन हर ले गए, कहीं चोर चुरा ले गए, कहीं अनेक अफसर लोग सताने लगे, कहीं राजा छीनने लगे, यों अनेक दुःख हैं, ये सब दुःख हुए तृष्णाके कारण। जीवित अवस्थामें भी इस धनका वियोग अनेक कारणोंसे हो सकता, नहीं तो मरने पर तो सब धन छूट ही जाता है। तो धन संचयसे भी सुख नहीं है, क्योंकि वह भी अन्तमें विनाशशील होनेसे दुःखदायी है। अनेक लोग पुत्रके उत्पन्न होनेमें सुख समझते हैं, पर वह काहे का सुख? पुत्र है क्या? अशुद्ध जीव। अनेक गतियोंमें जन्म ले लेकर, अनेक योनियोंमें परिभ्रमण कर अपनी करतूतके अनुसार इस घरमें जन्म लिया है। है तो भिन्न जीव और वह अपने कर्मानुसार ही अपनी अवस्थायें बना रहा। उसमें किसी दूसरेका कुछ प्रवेश नहीं है, फिर अन्तमें वह भी विनाशीक है। या तो पहले पिता गुजर गया तो पुत्रको वियोग हुआ, या पहले पुत्र गुजर गया तो पिताको वियोग हुआ, फिर भी कैसा आश्चर्य है कि यह उन वियोग होने वाली वस्तुवोंसे ही प्रेम करता है और यह भगवान आत्मा अपने सहज आनन्द विलासको तजकर पराधीन सुखोंमें रमकर व्यग्र रहता है, यत्र तत्र डोलता फिरता है। इसको कहीं ठिकाना नहीं मिल पाता।

गतिर्विगलिता वपुः परिणतं हृषीकं मितं कुलं नियमितं भवोपि कलितः सुखं संमितं।
परिभ्रमकृता भवे भवभृता छटीयंत्रवद्भव स्थितिरियं सदा परिमिताप्यनंता कृता॥
२४७॥

जीवका मोहमें जन्मसंततिका अपरिमित कर डालना—यह जीव जो कुछ प्राप्त करता है वह सब परिमित है। यह जीवन भी परिमित है. जिस गतिमें उत्पन्न हुआ उस भव तक ही वह गति है। यह शरीर एकदम बदलता रहता है। क्या पता कि यह कितने दिन जीवित रहे। मरण कर गया, शरीर छूट गया, लोगोंने इस शरीरको जला डाला। जो शरीर जल जाने वाला है उससे मोह करते हुए इस भगवान आत्माको लाज नहीं आती। तो शरीर भी किसका कब रहता है? विनाशीक है। इन्द्रियाँ मिलीं तो प्रथम तो यह ही देखें कि कैसी अटपट रचना जीवोंको पायी जा रही है, हाथीके पैर, हाथीकी नाक, मुख, कानकी कैसी रचना है। पक्षियोंके पैर, पक्षियोंके हाथ, पर बन गए। कैसी नाक है, कैसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

कान हैं, भिन्न-भिन्न ढंगके जीव इस इन्द्रिय रचनामें आते हैं। प्रथम तो यह ही एक बहुत विडम्बना है जैसा कि दीख रहा है। फिर ये इन्द्रियाँ भी किसको सदा काम देती रहीं ? मरने पर तो वियोग हो ही जाता। पर कुछ द्रव्येन्द्रियाँ तो इस जीवके जीवनमें ही खतम हो जातीं। उनका काम बंद हो जाता है। ये इन्द्रियाँ विनश्वर हैं। कुल—कोई किसी कुलमें उत्पन्न हुआ, आजकल तो कुलके नामपर लोग दूसरोंसे घृणा करते हैं और ये ही मरकर उससे भी नीच कुलमें उत्पन्न हो जायें तो वे क्या करें ? कहाँ छोड़कर जायें ? तो यह कुल यह सब विनाशोक है, परिमित है। जन्म—कहीं जन्म हुआ, किसी भवमें कितना जीवन रहा, सुख भी परिमित है, सुखके कैसे कैसे ढंग नई नई विधियाँ, व्यवस्था, कैसी-कैसी कल्पनामें कौन-कौन सुख मान रहे हैं, किन्तु ये सब परिमित हैं, लेकिन इस जीवने लगातार यह ही यह पा पाकर अरहटके समान इनको अनन्त कर डाला है। जैसे अरहटकी घड़ियाँ जुदी-जुदी हैं। दो-दो घड़ियाँ प्रत्येक घड़ीमें आती हैं मगर वे चलती ही रहती हैं। एक दिनमें हजारों बार वे घड़ियाँ पानी ला लाकर बाहर फेंकतीं। यही परम्परा बराबर बनी रहती है। ऐसे ही इस जीवके इन सब बातोंकी परम्परा बन रही और उन्हें इसने अनन्त कर डाला। अरहटकी घड़ियाँ कभी ऊपर आतीं, कभी नीचे, एक समान नहीं स्थिर रहतीं, ऐसे ही संसारमें घूमता हुआ यह जीव कभी किसी योनिमें पहुँचता कभी किसीमें, सदा एक समान तो नहीं रहता। इस संसारमें नाना भवोंमें भ्रमण करते हुए इस जीवको शरीर, गति, इन्द्रिय आदिक वस्तुवें परिमित मिली हैं, परन्तु इसने तृष्णावश अपरिमित कर डाला, अथवा अनन्त भोगों को इसने भोगा, पर मोहवश यह जीव इस संसारमें घूमता रहता है, फिर इसने अनन्त जीवन दुर्दशामें ही व्यतीत कर डाला।

तदस्ति न वपुर्भृता यदिह नोपमुक्तं सुखं न सा गतिरनेकधा गतवता न या गाहिताः।
न ता नरपतिश्रियः परिचिता न याः संसृतौ न सोऽस्ति विषयो न यः परिचितः सदा देहिना ॥२४८॥

अज्ञानमें जीवका सर्वत्र भवधारण—इस संसार चक्रमें घूमते हुए इस जीवको सारे इन्द्रियके सुख भोग डाला। कोई इन्द्रियके सुख नहीं बचे जो इसने बार-बार न भोगा हो, न कोई गति योनि बची ऐसी जिसे अनेक बार इसने न पायी हो, न कोई सम्पत्ति बची ऐसी कि जिसको इसने अनेक बार भोगा न हो, न कोई क्षेत्र ही छूटा ऐसा कि जहाँ इसने अनेक बार जन्म-मरण न किया हो। इस जीवको इन्द्रिय सुखोंमें बड़ा व्यामोह रहता है, पर जो इन्द्रियसुख बार-बार भोगे गए उनमें पुद्गल ही तो भोगे गये। बार-बार भोगे गये पुद्गल

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

कितनी बार के जूठे हैं। इन जूठे भोग साधनोंमें इसकी प्रीति जग रही है और पवित्र ज्ञानानन्द धाम निज स्वरूपमें इसकी दृष्टि नहीं जमती। यह जीव किसी पुत्रादिकके जन्म होने में सुख मानता है, पुत्ररत्न उत्पन्न हुआ ऐसा कहकर बड़े गाजे-बाजे बजवाकर जन्मोत्सवकी खुशियाँ मनाते हैं। उसके जन्ममें लोग सुख मानते हैं, पर वे जन्म तो अनन्त बार हुए, फिर मरे, फिर जन्मे, उसका भी कौनसा सुख है? जन्म न हो तो इस जीवको आनन्द रहेगा। समस्त दुखोंकी जड़ तो जन्म है। शरीर मिला, शरीर बन्धन मिला, अनेक संकट आने लगे। तो जन्म कोई कल्याणकी चीजनहीं। लोग सम्पत्तिमें मोह करते, पर कौनसी पुद्गल सम्पत्ति जुड़ जानेपर इस जीवको शान्ति मिली अब तक सो तो बताओ? अरे अब तक न जाने कितनी ही सम्पत्ति इस जीवने पाया, कितने ही भोग भोगे पर यह उनमें कभी तृप्त न हुआ। तो कोई भी इन्द्रिय सुख इस जीवको ऐसा नहीं बचा जिसे अनन्ते बार न भोगा हो, फिर भी इसको कभी शान्ति न प्राप्त हुई।

इदं स्वजन देहजातनयमातृभार्यामियं विचित्रमिह केनचिद्र-चितमिंद्रजालं ननु।
क्व कस्य कथमत्र को भवति तत्त्वतो देहिनः स्वकर्मवशवर्तिनस्त्रिभुवने निजो वा परः॥ २४६॥

जीवों द्वारा अकेले अकेले ही घोर दुःखोंका सहन—इस लोकमें यह जीव कर्मबंधन बद्ध हीन होते हुए कर्म विपाकसे पीड़ित होकर अकेला ही नाना दुःखोंको भोगता रहता है। उन दुःखोंके भोगनेमें उनके माता, पिता, बहिन, स्त्री, पुत्रादिक कोई भी काम नहीं आ सकते। जो संकट इस पर गुजरता है उसे अकेला ही भोगना पड़ता है। जो संकट शरीरका, व्याधियोंमें लगने आदिकका काम है वह भी इसको अकेलेको ही भोगना पड़ता है, इष्ट वियोग अनिष्ट संयोग आदिक नाना प्रकार के कष्ट इस जीवको अकेला ही भोगना पड़ता है। महाप्रेम रखने वाले भी इनको बटानेमें समर्थ नहीं हो सकते। तो बात तो वास्तविक यह है कि अपने-अपने किये हुए कर्मोंको यह जीव अकेला ही भोगता है, लोग मानते हैं कि मैं अपने परिवार का पालन-पोषण करता हूँ, उनको सुखी रखता हूँ, तो उनका यह ख्याल मिथ्या है। कोई किसी को सुखी नहीं रखता, न कोई किसीको दुःखी बनाता। सबका अपने-अपने साथ कर्मोदय है। उसीके अनुसार यह जीव सुखी-दुःखी होता रहता है, मोहके आवेशमें आकर यह जीव अनेक प्रकार की कल्पनायें करके पर-पदार्थोंको अपना मान लेता है पर पर्याय बदलने पर सब स्पष्ट भिन्न-भिन्न हो जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

हृषीकविषयं सुखं किमिह यन्न भुक्तं भवे किमिच्छति नरः परं सुखमपूर्वभूतं ननु ।
कुतूहलमपूर्वजं भवति नांगिनोऽस्यास्ति चेत्समैक सुखसंग्रहे किमपिनो विधत्ते मनः ॥ २५०॥

मोहवश जीवके भुक्तभोगकी बार-बार भोगेच्छा—इस जन्म-मरण रूप संसारमें कोई भी इन्द्रियसुख नहीं बचा जिसे इस जीवने अनेक बार भोगा न हो, इसलिए ये सब इन्द्रिय-सुख भुक्तपूर्ण हैं, उच्छिष्ठ हैं, जूठे हैं, किन्तु आत्माका आत्माकी आराधना से उत्पन्न हुआ आनन्द अभुक्तपूर्ण है। इस आत्मीय आनन्दको इस जीवने पहले कभी नहीं भोगा। सो यह प्राणी अभुक्तपूर्ण आत्मीय आनन्दमें क्यों नहीं अपने मनको लगाता ? बार-बार भोगे गए आसार पराधीन इन्द्रिय भोगोंमें रमकर काल्पनिक सुख भोगता है और बास्तवमें तो कष्ट सहता हो रहता है, पर एक बार भी अभूतपूर्व आत्मीय आनन्द इसके जग जाय तो इसकी आराधना और धुनके कारण यह जीव यथोचित समयमें संयमी बनकर मोक्ष प्राप्त कर लेगा। फिर सदा के लिए संसारके कष्ट छूट जायेंगे। तो कल्याणार्थी पुरुषोंका कर्तव्य है कि अभुक्तपूर्ण आत्मीय आनन्दको अभिलाषा कर उसके मार्गमें लगे। ऐसा किए बिना यह जीव बड़े-बड़े कष्ट भोगता रहता है।

क्षणेन शमवानतो भवति कोपवान्संसृतौ विवेक विकलः शिशुर्विरहकातरो वा युवाः ।
जरार्दिततनुस्ततो विगतसर्व चेष्टो जरी दधाति नटवन्नरः प्रचुरवेषरूपं वपुः ॥२५१॥

मोही जीवका नटवत् विविध आचरण—यह जीव नटकी तरह नाना भेषोंको धारण करता रहता है। कभी यह जीव शान्त होता है तो कभी क्रोध करता है, तो यह नटकी तरह ही तो रूपका धरना हुआ। कभी यह ज्ञान शून्य बालक बन जाता है तो कभी युवतियों के वियोगमें व्याकुल होता है। कहाँ तो वह छोटा बालक जो कुछ अधिक समझ न रखे और कामवासनाकी तो कल्पना तक भी नहीं और वही जीव कुछ ही समय बाद स्त्रियोंके वियोगमें व्याकुल होता। स्त्रियोंके साथ सम्भाषणमें यह मौज लेता तो यह नटकी तरह ही तो नाना भेषोंका धरना कहलाया। यही जीव कभी बुढ़ापेसे पीड़ित होकर चेष्टा-हीन हो जाता। हाथ पैर नहीं चलते। कहीं जा नहीं सकता, बोल भी थक गया, तो इस जीवकी क्या विचित्र हालत होती रहती है। यह सब कर्मलीलाका प्रताप है। कभी यह जीव अकेला ही भवमें रहकर वहाँ ही अपनी इच्छावोंको बनाता रहता है। कभी पेड़-पौधेसे खड़े होकर वहाँ ही पानी मिले, धूप मिले, सुन्दर हवा मिले और सुखी होता, पशु पक्षी हुआ, मनुष्य हुआ, सब जगह अपने-अपने विचित्र ढंगसे यह जीव

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

नाना तरह की कल्पनायें करके सुखी-दुःखी होता रहता है। सो वास्तविक नटिया तो यह जीव है। लोग तो सनीमा हॉलमें सनीमा देखने पहुँचते हैं पर सनीमा तो यह जीव स्वयं हो रहा है। कभी किसी स्थितिमें, कभी किसी स्थितिमें, और ये शहरोमें दिखाये जाने वाले सनीमा तो एक फोटो है, नकल है, असल नहीं है। पर यह जीव तो स्वयं कर्मोदयवश नाना रूपोंको (भेषोंको) धारण कर अपने क्षण गुजारता है, एक जगह प्रभुकी भक्ति करते-करते भक्तने यह कहा कि हे प्रभो मैंने अनेक रूप धर-धरकर आपके ज्ञानको बहलाया, जैसे कि कोई नट अनेक रूप रखकर राजाको प्रसन्न करता है, तो मैंने भी नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, और उनके अन्तर्गत नाना तरहकी स्थितियोंको बना बनाकर आपको रूप दिखाया, तो बोलो प्रभु आप मुझपर प्रसन्न हुए या नहीं ? आखिर नट भी तो मुख्य दृष्टाको इसी लिए दिखाता कि यह प्रसन्न हो जाय और प्रसन्न होकर कुछ पुरस्कार दे। तो प्रभु यदि आप मेरे इन रूपोंको देखकर प्रसन्न हो गये हों तो मैं जो चाहूँ सो दीजिए। मैं चाहता हूँ मुक्ति, सो मुझे मुक्ति दीजिए और यदि आप प्रसन्न नहीं होते हमारे रूपोंको देखकर तो फिर इन रूपोंको अब मत मुझसे रखाइये। याने आपके ज्ञानमें अब मेरे ये रूपादिक न झलकें। तो वह प्रभुकी भक्ति है। उसने प्रभुसे दोनों तरह से माँगना, माँगली है। प्रसन्न हो तो मुक्ति दो, प्रसन्न न हो तो हमारे इन रूपोंको मिटा दो। तो रूपोंका मिटना यही तो मुक्ति कहलाता है। सांसारिक भेषोंमें इस जीवको कहीं भी आनन्द नहीं है।

अनेकगतिचित्रितं विविधजातिभेदाकुलं समेत्य तनुमद्वणः प्रचुरचित्तचेष्टोद्यतः।
पुराजितविचित्र कर्मफलभुग्विचित्रां तनु प्रगृह्य नटवत्सदा भ्रमति जन्मरंगागणोः ॥ २५२॥

मोही जीवों द्वारा नटवत् विविध वेषोंका धारण—जैसे रंगभूमिमें नट नाना प्रकारके भेषोंको धारण करके उन भेषोंके अनुरूप ही चेष्टायें करते हैं और लोगोंको ऐसी भ्रान्ति करा देते हैं कि मानों वास्तवमें जिसका भेष रखा है वही सब चेष्टा कर रहा है, इसी प्रकार यह जीव मनुष्य तिर्यञ्च आदिक पर्यायोंमें भिन्न-भिन्न प्रकारकी जाति भेष धारण कर, करके मनमाने तदनुरूप चेष्टायें कर रहा और पूर्व उपार्जित अपने कर्मोंका फल भोगता रहा, सदा घूमता ही फिरा और उस समय जिस पर्यायको यह जीव धारण करता है उस ही पर्यायरूप अपने को समझ बैठता है, जैसे जब मनुष्य हुआ तो यह अपनेको मनुष्य ही मानता है और मनुष्य देहको ही अपना सर्वस्व समझता है। उस देहमें आत्मीयपना का इतना अहंकार भर लेता है कि प्रशंसा, निन्दा, कीर्ति, अपकीर्ति, सब कुछ इस देहके मार्फत

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

ही करता रहता है। तो जिस देहको धारण करता है उस भेषमें यह रम जाता है और अपने आपके वास्तविक स्वरूपको भूल जाता है, यह है जातिका प्रकरण। जन्म लेता है और जिस जन्ममें पहुँचता है उस जन्मके अनुरूप अपने आपको मान डालता है, ऐसी भ्रान्ति यह जीव अनादि कालसे करता चला आया है और उसका कारण है कर्मका उदय। और कर्म उदयमें आये तो जब बँधे थे तब ही तो उदय में आये। तो जिस कालमें कर्म बंधे थे उस कर्मबंध का कारण था यही भेष भेषोंमें आत्मबुद्धि। तो यों भावकर्म, द्रव्यकर्म दोनोंका परस्पर निमित्त नैमित्तिक योग चल रहा है। यह जीव संसारमें नाना भेषोंको धारणकर दुःखी हो रहा है।

अचिंत्यमतिदुस्सहं त्रिविधदुःखमेनोर्जितं चतुर्विधगतिश्रितं भवभृता न किं प्राप्यते।
शरीरमसुखाकरं जगति गृह्णता मुंचता तनोति न तथाप्ययं विरतिमूर्जितां पापतः ॥२५३॥

मोही जीवके पापफल भोगकर भी पापसे विरक्तिका अभाव—इस जीवने जिन भेषोंको धारण किया उन भेषोंमें रह रहकर असह्य दुःख भोगा है। ये भेष मुख्यतया चार प्रकार के हैं—नारकी, देव, मनुष्य, देव, ये चार मुख्य गतियाँ हैं, फिर इनके अन्य बहुत से भेद हैं। जैसे तिर्यञ्चके बड़े ही विचित्र भेष हैं, कोई पशु है, कोई पक्षी है, कोई कीड़ा मकोड़ा है, कोई एकेन्द्रिय है, तो ये अनेक-अनेक उपजातियाँ हैं, तो इसी प्रकार इन सब भेषोंमें इस जीवने असह्य दुःख भोगा। वे दुःख हैं मानसिक, वाचनिक और कायिक जैसे इन्हीं भेदोंमें मनुष्य मनके कितने दुःख बनाये रहते हैं, मनमें कितनी कल्पनायें, नामवरी की, ओहदे पाने की, धन पाने की और तन सम्बंधी कितनी ही कल्पनायें, तो ऐसी चिन्तावोंके भार से यह जीव लदा फिरता है। वाचनिक दुःख भी बहुत हैं। दूसरे की कुछ भी कही हुई बात सहन नहीं कर पाता। क्या लगा, कहाँ के वचन, कौन मनुष्य, इनका आत्मासे क्या सम्बंध ? ये सब अत्यन्त भिन्न हैं, लेकिन ऐसा पर्यायोंमें रम गया कि इस ही पर्यायको यह अपना सर्वस्व मानता है और अपने आपको सर्वाधिक चतुर भी मानता है। ऐसी मान्यताके कारण दूसरेके वचन इससे सहे नहीं जाते। यदि अपने आपकी कीर्ति, इच्छा के अनुकूल वचन हों तब तो वहाँ प्यार जगता है अन्यथा अन्य वचनोंसे यह बड़ा भारी कष्ट मानता है। शारीरिक कष्ट नाना हैं ही, अनेक प्रकार की व्याधियाँ, आक्रमण, चोट, शारीरिक वेदनायें ये कायिक वेदनायें हैं। सो इस जीवने मन, वचन, काय तीनों की पीड़ायें अब तक संसारमें रूलकर भोगा। और इतने से ही पिण्ड नहीं छूटा, सारे जीवन दुःख भोगा, अन्तमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मरण हुआ, फिर यह दूसरा देह धारण करता है, जो शरीर अनेक दु:खोंका देने वाला है, तो ऐसे कठिन दु:खको भोग रहा यह जीव फिर भी यह पापों से विरक्त नहीं होता, यह बड़े ही आश्चर्यकी बात है, क्योंकि पापोंसे ही संसारमें रूक रहा, सो दु:ख भी भोगता जा रहा और पाप भी करता जा रहा, ऐसा अंधेरा इस जीव पर छाया है। जिन कामोंसे दु:ख होता है उन्हीं कामोंको यह करता चला जाता है।

भजव्यतनुपीडितो विरहकातर: कामिनीं करोति मदनोज्झितो विरतिमंगनासंगत:।
तपस्यति मुनि: सुखी हसति विक्लव: क्लिश्यति विचित्रमतिचेष्टितं श्रयति संसृतौ जन्मवान् ॥२५४॥

संसारी जीवकी विचित्र चेष्टायें—यह शरीरधारी प्राणी जब भी कामदेवके बाणोंसे व्यथित हो जाता है याने कामवासना उखड़ आती है, व्यर्थका ही मनके दुर्भाव बन जाता है तो यह कामचेष्टाके साधनभूत स्त्री आदिक का विकार होने पर यह कातर हो जाता है और यह कामिनियोंका संग चाहता है, जिस किसी तरह उनकी प्राप्ति करके सुख मानता है। कहाँ तो जीव शुद्ध स्वच्छ ज्ञानानन्दमय और कहाँ बाह्य अशुचि पदार्थोंमें इतना तेज लगाव, ऐसा विरुद्ध परिणमन करने वाले दु:खी क्यों न होंगे? जिस समय यह जीव कामातुर होता है तो तीव्र वेदनासे पीड़ित हो जाता है, और जिस समय कामसे रहित होकर शान्त हो जाता है तो कामके साधनभूत स्त्री आदिकके संसर्गको दूर कर देता है, फिर साधु होकर तप-तपने लगता है। जिस समय यह कुछ सुखी होता है तब कुछ हँसने लगता है और जब कोई दु:खी होता है तो रोने लगता है। यों इस शरीरधारी प्राणीके इस जन्ममें बड़े विचित्र-विचित्र चेष्टायें होती हैं।

अनेकभवसंचिता इह हि कर्मणा निर्मिता: प्रियाप्रियवियोग संगमविपत्तिसंपत्तय:।
भवंति सकलास्त्विमा गतिषु सर्वदा देहिनां जरामरणवीचिके जननसागरे मज्जतां ॥२५५॥

मोही जीवों द्वारा नाना भेषधारण व क्लेशसहन—यह संसार विशाल समुद्रके समान अपरिमित है, जैसे बड़े सागरके ओर छोरका पता नहीं लगता, उसकी गहराईका पता नहीं लगता, समुद्रके अन्दर क्या क्या चीजें हैं, कैसे क्रूर जंतु हैं इसका कुछ पता नहीं पड़ता, ऐसे ही यह संसार अपरिमित है, इसका आदि अन्त नहीं है। अनादिसे संसार है, अनन्तकाल तक संसार रहता है। और इस संसारमें कितनी ही प्रकारके जन्म हैं, अवस्थायें हैं, भेष हैं, दु:ख है, जिनका कोई परिमाण नहीं है, तो ऐसा संसार समुद्रके

http://sahjanandvarnishastra.org/

समान अपरिमित है, इसमें यह जीव जन्म-मरण रूपी लहरोंके वेगसे ताड़ित हो रहा है। मरा वह भी दुःख है, जन्मा वह भी दुःख है, तो एक ओर से मरणकी लहरोंके वेगने इसको दुःखी किया तो तत्काल जन्मकी लहरोंके वेगने इसको दुःखी किया। यों जन्म-मरणके वेगसे यह दुःखी होता रहता है। सो यह प्राणी मनुष्यादिक की पर्यायें धर-धरकर घूमता फिरता है और अपने जीवनमें अपने-अपने कर्मोंके अनुसार नाना दुःख भोगता है। जैसे दुःखोंमें प्रधान दुःख है इष्टवियोग, अनिष्ट संयोग, वेदना और निदान। किसी इष्टका वियोग हो जाय तो उसमें यह बड़ी तकलीफ मानता है और उस इष्टके संयोगके लिए नाना ध्यान बनाये रहता है किसी अनिष्ट पुरुषका संयोग हो गया तो उस कालमें यह निरन्तर कष्ट मानता रहता है और यह कब टल जाय, इसका वियोग हो जाय इसके लिए निरन्तर चिन्तन बनाये रहता है। शारीरिक व्याधिका बड़ा कठिन दुःख है। जब शरीरके साथ इस जीवका एक क्षेत्राव-गाह और बंधन भी चल रहा है जहाँ शरीर जाता वहाँ आत्मा जाता, जहाँ आत्मा जाता वहाँ शरीर जाता, तो इतने विकट बंधनमें फँसा हुआ आत्मा शरीरमें वेदनायें आयें तो दुःखी होता ही है, और एक कठिन दुःख है बैठे-बैठे अनेक चिन्तायें करना आशय बिगाड़ना। तो इन समग्र दुःखोंको यह जीव जन्म-मरण करता हुआ अपने जीवन-कालमें भोगता रहता है। सो इस संसार समुद्रमें जन्म लेते रहना यह बहुत बड़ी विपत्ति है। जो इस जन्मसे छूट गया वह ही संसार के दुःखोंसे छूटा हुआ कहलाता है। और जो संसारमें जन्म धारण कर रहा है उसके दुःख कभी शान्त नहीं हो सकते।

करोम्यहमिदं तदा कृतमिदं करिष्याम्यदः पुमानिति सदा क्रियाकरणकारणव्यावृतः।
विवेकर हिताशयो विगतसर्वधर्मक्षमो न वेत्ति गतमप्यहो जगति कालमत्याकुलः ॥ २५६॥

मोही जीवोंकी क्रियाबुद्धिमें मरणका भी अपरिचितता—यह मोही प्राणी विवेकरहित होकर मन, वचन, काय सम्बंधी क्रियावोंमें लगा ही रहता है और सदा यह ध्यान रखता है, विचार करता रहता है कि मैंने यह काम तो उस समय कर लिया, अब यह काम जरूरी है, अब इस कामको कर डालूँ और फिर अमुक काम पड़ा है, उसे भी कर डालूँगा। करने-करने की धुनमें ही सारी जिन्दगी गुजरती है। यह किया, यह कर रहा हूँ, यह करूँगा, ऐसा कर डालूँगा ऐसा करके ही मैं आनन्द पाऊँगा, ऐसा यह जीव करने-करने की हीं वासनामें अपना यह जीवन खो डालता है, पर वास्तविक कार्य मेरा क्या है

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

उसकी ओर ध्यान नहीं जाता। मेरा वास्तविक कार्य है जैसा मेरा स्वरूप है उसही मात्र प्रवृत्ति करना। मैं ज्ञानमात्र हूँ, केवल मैं ज्ञाता ही मात्र रहूँ, किसी पदार्थका मोह तक भी न हो, राग लपेट रंच न हो, मतलब ही नहीं है, जानने में आ गया। केवल ज्ञाता मात्र ही मैं रहूँ। किसी पदार्थ में कुछ भी विकल्प न करूं, ऐसा मैं कृतार्थ कार्य रहित जाननहार निरन्तर परम आह्लादको भोगने वाला ही रहूँ, यह कार्य मेरे आत्माका वास्तविक करने का था। सो इस कार्यकी ओर से इसने मुख मोड़ लिया और सांसारिक कार्य जिनमें मन, वचन, कायका सम्बंध है उनमें यह निरन्तर विचार करता रहता है कि मैंने इतने-इतने काम कर डाला, अब यह काम करूं और आगे मुझे इतना काम करना है। तो मैं करूंगा, करूंगा, करूंगा, यह ही ध्यान रखता रहा, पर मैं मरूंगा, मरूंगा इसका रंच भी ध्यान न रखा। सो यह जीव मरता है, जन्म लेता है और उसके बीच जो जीवन पड़ा है उसमें करने-करने की ही धुन बनाकर अपने अमूल्य क्षणोंको यों ही गमा डालता है।

इमे मम धनांगजस्वजनवल्लभादेहजासुहृज्जनकमातुलप्रभृतयो भृशं वल्लभाः।
मुधेति हृतचेतनो भवनने खिद्यते यतो भवति कस्य को जगति वालुकामुष्टिवत्॥
२५७॥

एकत्रित कुटुम्बी जनों का बालुकामुष्टिवत् अत्यन्त भिन्नपना व आशुवियोग— यह प्राणी रात-दिन बाह्य वस्तुओंमें यह मेरा है यह मेरा है, इस प्रकार का भाव बनाये हुए रहता है, यह धन मेरा है, धन पौद्‌गलिक पदार्थ है, अनेक पुद्‌गल परमाणुवोंके अनन्त परमाणुवोंके पुञ्जको ये सब रुपया-पैसा सोना-चाँदी आदिक बने हुए हैं, जो अचेतन हैं, मेरेसे अत्यन्त भिन्न हैं, यद्यपि इस जीवनको चलानेके लिए क्षुधा तृषा वेदना मिटानेके लिए बाह्य वस्तुवों का आहार किया जाता है, उसमें कुछ काम होता है मगर आहार करना भी तो कलंक है, आहार करना छूटे तो शरीरका सम्बंध भी छूटे, तो इस जीवको अपने आपमें शान्ति प्रकट हो, लेकिन यह जीव इन धन आदिक बाह्य पदार्थोंमें ये मेरे हैं, यों मेरा-मेरा करता हुआ अपना जीवन खो देता है। सचेतन पदार्थोंको ये मेरे पुत्र हैं, ये मेरे मित्र हैं, यह स्त्री है, ये माता-पिता हैं, ये कुटुम्बीजन हैं, ये मेरे मामा आदिक रिश्तेदार हैं, ये बड़े ही प्यारे हैं, ऐसा निरखता रहता है। ये पुरुष स्त्री हैं क्या ? असमान जातीय द्रव्य पर्याय। जीव, शरीर और कर्म इन तीनोंका यह पिण्डोला है, जिससे यह जीव नाना दुःख पा रहा है, पर इन अत्यन्त भिन्न पिण्डोलोंको देखकर ये मेरे हैं इस प्रकार की बुद्धि करता है और

http://sahjanandvarnishastra.org/

यहाँ तक चिन्तन करता है कि ये मुझे बड़े प्रिय हैं, मैं इन्हें छोड़कर रह नहीं सकता। तो यह मोहके वश होकर इन हीं मिथ्या घटनाओंको सत्य समझता रहता है। जब जाना कि ये मेरे हैं, प्रिय हैं, इष्ट हैं, तो उनका वियोग होने पर यह खेद खिन्न होगा ही, सो यह दु:खी होता रहता है, पर यह बात कभी नहीं विचारा कि ये जितने भी जीव हैं ये सब मुझसे अत्यन्त भिन्न हैं। भले हो इकट्ठे हो गए हों, जैसे मुट्ठीमें कोई बालू भर रखी हो तो भले ही एक जगह है फिर भी बिखरती रहती है और प्रत्येक दाना दूसरेसे अत्यन्त भिन्न है। तो जैसे मुट्ठीमें ली गयी बालू कभी एक तो नहीं रहती, उसके दाने भिन्न-भिन्न हीं रहते, इसी तरह किसी कारण एक घरमें इकट्ठे हो गए, भाई बहिन, माता-पिता आदिक परन्तु ये सब अत्यन्त निराले हैं, जैसे बालूका ढेर एक दूसरे रेणुसे अत्यन्त निराला है ऐसे ही सभी जीव मुझसे अत्यन्त निराले हैं, ऐसा ध्यानमें नहीं आता इस मोही प्राणीके और इनको ये मेरे हैं, मुझे ये बड़े प्यारे हैं, इन्हें मैं छोड़कर रह नहीं सकता, ऐसे नाना प्रकार के विकल्प किया करता है।

तनूजजननीपितृस्वसृसुताकलत्रादयो भवति निखिला जनाः कृतपरस्परोत्पत्तय:।
किमत्र बहुनात्मनो जगति देहजो जायते धिगस्तु भवसंततिं भवभृतां सदा दु:खदां ॥ २५८॥

जीवोंके परस्पर रिश्तोंका परिवर्तन—इस लोकमें ऐसा कोई नियम नहीं है कि इस जन्ममें जो माता है वह सदा माता ही होती रहे, जो पिता है वह सदा पिता ही होता रहे, जो पुत्र है वह सदा पुत्र ही होता रहे, जब ऐसा कोई नियम नहीं है तो इस बातको जानकर भी इस जीवको चेत जाना चाहिए कि यह केवल इस जीवकी कल्पना मात्र है। न यह पहले मेरा था न आगे मेरा होगा। तो संसार में यह नियम नहीं है कि जो पुत्र आज हुआ वह पहले भी पुत्र था और आगे भी रहेगा। बल्कि यह स्पष्ट देखनेमें आता है कि जो आज बाप है वह कहीं उसीका लड़का बन जाय। माँ कहीं लड़की हो जाय, लड़की कहीं माँ बन जाय, जो बहिन है वह कहीं लड़की बन जाय, लड़की कहीं बहिन बन जाय, आज जो बुवा है वह कही स्त्री बन जाय, स्त्री कहीं बुवा आदिक बन जाय। अनेक भवोंमें ये सब बदलते रहते हैं। एक दूसरेसे सर्वथा विरुद्ध पर्यायें रिश्ते ये धारण करते ही रहते हैं। इस परिवर्तनकी बात कहाँ तक कही जाय? यह मनुष्य अपनी स्त्रीके ही गर्भसे, अपनी हो कुचेष्टासे आप ही पुत्र होता हुआ देखा गया है, इससे बढ़कर और विचित्र बात क्या कही जाय? जिसको यह पुरुष अपनी स्त्री मान रहा था वही पुरुष मरकर अब उसका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बालक बनकर उसको माँ मानता है, जीव वही है पर पर्याय भेद हो जानेसे इसके विचारोंमें संस्कारोंमें फर्क आ गया । तो यह संसार नटभेष जैसा विचित्र है । तो अनन्तं दुःखोंका देने वाला यह संसार है । इसमें जो जन्म होता रहता है वही सब संकटों का मूल धाम है । इस संसार की स्थितिको धिक्कार है ।

विधाय नृपसेवनं धनमवाप्य चित्तेप्सितं करोमि परिपोषणं निजकुटुंबकस्यांगना: ।
मनोनयनवल्लभा समदना निषेवे तथा सदेति कृतचेतसा स्वहिततो भवे भ्रश्यते ॥ २५६॥

परव्यामोहमें स्वहितका ध्वंस—यह मनुष्य कुटुम्ब आदिकको अपना मानकर उनका भरण-पोषण करने के लिए कितना परिश्रम किया करता है । राजा आदिककी सेवासे यह धन कमानेमें कितना व्यग्र रहता है । यह आत्मा अकेला ज्ञानानन्द स्वरूप है । परमात्माके समान शुद्ध पवित्र स्वरूप है, लेकिन इस स्वरूपको भूलकर राजा आदिक न जाने किन-किन पुरुषोंकी सेवामें लगा रहता है । न जाने कितना चित्त परिवर्तन करना पड़ता है, किस किस प्रकार राजाको अपने पर प्रसन्न करना पड़ता है तब जाकर कोई सुविधा मिलती है कि वह मनमाना धन कमा सके । सो मनमाना धन कमाकर क्या किया ? अपने कुटुम्बका भरण-पोषण किया और अधिकसे अधिक यही बात तो रही कि जब कामबाधा हुई तो मन और नेत्रोंको प्रिय जिन्हें माना उन युवतियोंका सेवन किया । तो इन सब कार्योंमें वह अपनेको भृष्ट ही तो कर रहा । कहाँ तो परम आनन्द-स्वरूप परमात्माके सदृश अविचल रूप और कहाँ अपने स्वरूपको भूलकर किन-किन पुरुषोंको प्रसन्न करनेमें यह लगा रहता है तो ऐसा यह मित्र कुटुम्ब स्त्री आदिकमें अपना हित सोचकर इनमें अपना लगाव लगाकर अपने आपको दुःखी करता रहता है । सो यह सब मोहनीय कर्मके उदयसे जो मोहभाव उत्पन्न हुआ है उस मोहमदिरा की शराब पीकर यह जीव इतना चंचल और संक्लेश करने वाला बन गया है । तो यों मोहवश यह प्राणी इधर-उधरकी व्यर्थकी बातोंमें फँसा रहकर अपने हितसे भृष्ट हो जाता है । कभी धन न हुआ तो उसके अभावमें उसकी आशा कर करके अपने जीवनको दुःखी कर डालता है । कभी धन हुआ तो उसकी गिनतीमें और उसके पुलावा बाँधनेमें, उसकी वृद्धि करनेमें सारे जीवन भर अपने उपयोग को उलझा कर दुःखी करता रहा । इस जीवनमें ऐसी कौनसी स्थिति पायी जिसमें यह प्राणी दुःखी न रहता हो । दुःखसे दूर रहने की स्थिति तो केवल रत्नत्रयभाव है । इसकी ओर मोहके कारण यह जीव आ न सका । जो बात आत्महितके लिए सुगम है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उससे तो यह जीव दूर रहा और जो बात आत्महितके बिल्कुल खिलाफ है उन बातों में फँसा रहा। सुगम चीज है अपने सहज स्वरूपको जान लेना। मैं हूँ, अपने आप हूँ, सहज सिद्ध हूँ, तो यह मैं चैतन्यमात्र जिसमें सिर्फ प्रतिभास ही प्रतिभास है, कि मैं हूँ, इस प्रकार का अनुभव बनाना इसमें किसी प्रकारकी दुर्गमता नहीं है। न इसमें धन चाहिए, न मित्रजनोंका सहयोग चाहिए, न किसीकी प्रसन्नता आपेक्षिक है, यह तो अपने आपकी भावना द्वारा अपने आपमें प्राप्त की जाने वाली चीज है तो अपना सहज स्वरूप, उसका श्रद्धान होना, उसका ज्ञान होना यह सुगम चीज है और फिर इसही स्वरूपमें मग्न होना उपयोगको रमाना यह सब स्वाधीन बात है, मगर मोही प्राणीको अपनी स्वाधीन बात बड़ी कठिन लग रही। इसका ख्याल तक भी नहीं कर सकता और एकदम बाहरी पदार्थों का ही संग्रह विग्रह कर रहा और यह मान रहा कि इन बाह्य पदार्थोंका संग्रह करना सुगम है, मेरे अधिकार को बात है और उसी प्रसंगमें जब कोई काम मनके अनुकुल न बना तो दुःख मान रहा और भीतरमें नाना कष्टोंको सहता रहा। सो यह जीव इस संसार चक्रमें घूमने का कारण जो भ्रम है उस भ्रममें ही पगा रहा और इन्द्रियविषयोंमें सुख मान रहा अच्छा स्वार्थ मिल जाय, स्त्री आदिक जनोंका सम्पर्क मिल जाय, बहुत सुन्दर स्वादिष्ट मिठाई आदिक नाना तरह की भोजनसामग्री मिल जाय, यही-यही धुन बनी रही, इन्हींके प्रयत्नोंमें लगा रहा, खाने-पीनेके सुखसे भरपूर हो गया तो अब सुगंध चाहिए, इत्र फुलेल चाहिए, अब घ्राणेन्द्रियमें रम गया। अब आँखोंको आराम देने वाला कोई नाटक चाहिये, सनीमा चाहिए, उस ओर दृष्टि डालता रहा, अब कानोंको सुहाने वाली रंग-रंगेलियाँ चाहियें। यों भोगोंमें रमकर यह कष्ट भोगता ही रहा।

विवेक विकलः शिशुः प्रथमतोऽधिकं मोदते ततो मदनपीडितो युवतिसंगमं वांछति।
पुनर्जरसमाश्रितो भवति सर्वनष्टक्रियो विचित्रमतिजीवितं परिणतेर्न लज्जायते॥
२६०॥

एकही भवमें विचित्र परिणतियोंकी विडम्बना—यह अविवेकी मनुष्य बचपन में तो अधिक आनन्द मानता है याने शिशु अवस्थामें खेल-कूद, खाना-पीना, मनमानी चेष्टायें करके अपने को अधिक आनन्द वाला मानता है और कुछ युवावस्था होने पर भी वह अपनेमें सुखकी कल्पनायें करता रहता है। कामसे पीड़ित होकर नई-नई युवतियोंके संगको चाहता है। वहाँ पर भी यह अपने आपको बड़ा सुखी समझता है, परन्तु वृद्ध होने पर यह समस्त चेष्टावोंसे हीन हो जाता है याने हाथ-पैर से कुछ कर नहीं सकता।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सभी इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं, और यों चेष्टा-हीन हो जाता है उस समय यह अपनेको बड़ा कष्टमयी मानता है। वस्तुतः देखा जाय तो जब सुखकी कल्पना कर रहा था तब भी वह कष्टमें था। अज्ञानसे वह अपने कष्टको नहीं जान पा रहा था, पर क्षोभ हुए बिना नाना चेष्टायें कैसे हो सकती थीं? और साथ ही व्यामोह था। स्व और पर पदार्थमें रंच भी भेद न जान रहा था तब ही तो परद्रव्यका आश्रय कर करके यह अपनेको सुखी मान रहा था। तो इसी जोवनमें अवस्थाभेद से चेष्टावोंके बड़े भेद रहे, और यों एकही जन्ममें नाना प्रकार की दशावोंका अनुभव किया। सो आत्माका स्वरूप तो स्वच्छ ज्ञानानन्दमय है. जिसके विरुद्ध चल-चलकर यह कितनी विडम्बनायें कर रहा लेकिन उन विडम्बनाओं के करते हुए में भी उसको लज्जा नहीं आती रही। अपने कुलके विरुद्ध कार्य करने पर लज्जित होना ही चाहिये। यह अपनी चेष्टायें कुलके विरुद्ध रागीद्वेषी मोही बनकर विषयों भोगोंमें अपना चित्त रमाकर कुचेष्टायें करता रहा पर इसको लज्जा नहीं आयी। अब यदि इन विडम्बनाओंसे, संकटोंसे बचना है तो एक ही कर्तव्य है कि पर द्रव्योंका आलम्बन छोड़ें और अपने आपको ज्ञानस्वरूप अनुभव करें।

विनश्वरमिदं पयुर्युवतिमानसं चंचलं भुजंगकुटिलो विधिः पवनगत्वरं जीवितं।
अपायबहुलं धनं बत परिप्लवं यौवनं तथापि न जना भवव्यसन संततेर्बिश्यति ॥ २६१॥

अनित्य समागमोंमें मोहीकी व्यासक्ति—यह शरीर अनित्य है, नष्ट हो जाने वाला है। मरण समय तो सभी जानते हैं कि यह नष्ट हो जाता है अर्थात् शरोरसे आत्मा निकल जाता है और शरीर यहाँ जला दिया जाता है, पर रोज-रोज शरीरमें नाना विकृतियाँ आती रहती हैं सो यह तो अनित्य स्वभाव वाला ही है और इसी कारण इसका शरीर नाम रखा गया है। शीर्यते इति शरीरं, जो शीर्ण हो, गल जाय उसे शरीर कहते हैं। तो इस संसारमें यह शरीर जिस पर यह प्राणी इतना मुग्ध हो रहा, जिस शरीरको अपना रहा वह शरीर अनित्य है और युवतियोंका मन चंचल है। आज किसी अन्य मनुष्यमें चित्त लगा है तो कल किसी अन्यमें चित्त लगा है, उनमें इनके मनकी स्थिरता ही नहीं रहती। तीसरी बात दैव भुजंगके समान टेढ़ा है। जैसे सर्प वक्र होता है, ऐसे ही यह भाग्य भी वक्र है। आज ये कर्म सुख दे रहे हैं तो कल ही दुःख देने लगते हैं अर्थात् पुण्य प्रकृतियों के उदयसे यह जीव सुख मान रहा है तो उस समय पाप प्रकृतियोंका उदय होने पर यह दुःखका अनुभव करता है। चौथी बात जीवन हवाके समान गमनशील है।

http://sahjanandvarnishastra.org/

जैसे हवा चलती ही रहती है, आगे भागती ही रहती है ऐसे ही यह जीवन चलता ही रहता है, भागता ही रहता है। अर्थात् जो उम्र गई वह गई। उस क्षणको फिर यह नहीं पाता यह तो आगे-आगे का समय भी गुजरता रहता है। ५ वीं बात—धन नाना कारणोंसे नष्ट हो जाता है। धनको अर्जित किया, बड़े परिश्रमसे कमाया, एकत्रित किया, अब कोई ऐसी ही विडम्बना आ जाती है, घटना आ जाती है, चोर चोरी कर ले जायें अथवा राजा छीन ले या खुद ही भूल जाय कि हमने कहाँ रखा या किसी दूसरेके कब्जेमें आ जाय, नाना कारणोंसे यह धन नष्ट हो जाता है। छठी बात—यह जवानी कालान्तरमें परिणमनशील है। अर्थात् जवानी स्थिर नहीं रह पाती, यह बदलती ही रहती है। तो इतनी बातें प्रतिकूल हो रही हैं तब भी यह मनुष्य इस भयानक संसारकी स्थितिसे डरता नहीं है, यह बड़े आश्चर्यकी बात है। और विषयभोगोंमें ही लगाव रखकर जैसा कि इस छंदमें बताया गया उन घटनावोंको देखकर तो भोगोंकी कामना रहना ही न चाहिये। किसी भी अन्य वस्तुमें प्रीति रहनी ही न चाहिए! लेकिन मोहका ऐसा प्रताप है कि यह जीव अपने स्वरूपको भूल जाता है और इन नाना विडम्बनाओंमें लग जाता है।

विपत्तिसहिताः श्रियोऽसुखयुतं सुखंजन्मिनां वियोगविषदूषिता जगति सज्जनैः संगतिः।
रूजोरगविलं कपुर्मरणनिंदितं जन्मिनां तदप्ययमनारतं हतमतिर्भवे रज्यति ॥२६२॥

क्लेशकर साधनोंमें मोहीकी आस्था—इस संसारमें जीवको जो भी सम्पत्तियाँ मिलती हैं वे सब विपत्तियोंसे सहित हैं। सम्पत्ति कालमें ही नाना विपत्तियाँ आती रहती हैं और जो सम्पत्ति मिली है वह सदा न रहेगी, विघट जायगी। विघटनेपर यह बड़ा कष्ट महसूस करेगा। सो यों भी विपत्तियोंसे सहित है। तो सम्पत्ति तो विपत्तियोंसे युक्त है। जिस सम्पत्तिमें लोग प्रफुल्लित हो रहे मेरे को इतना धन बढ़ा इतना जुड़ा, मैं इतने धनका स्वामी हूँ, इस प्रकार जो सम्पत्तिमें हर्ष मानते हैं उनका हर्ष मानना अज्ञानदशाका काम है क्योंकि वे सब सम्पत्तियाँ विपत्तियोंसे सहित हैं। दूसरी बात सुख-दुःखसे मिला हुआ है। सांसारिक सुख जिन्हें प्राप्त हैं उनको साथ ही दुःख भी लगे हुए हैं। सभी लोग समझते हैं कि सुख सदा नहीं रहते। जिनके सुख आया है उनके दुःख अवश्य आता है सांसारिक सुःखका ऐसा ही स्वरूप है, क्योंकि सुख पराधीन है, काल्पनिक है अतएव यह सुख नहीं रहता, दुःख होने लगता। जैसे कि नीतिकारोंने कहा है कि चक्र की तरह सुख और दुःख परिवर्तित होते रहते हैं। जैसे चकेमें जिसके ७-८ आरे लगें हैं गाड़ी चलती रहती है, तो जो आरा अभी ऊपर है वह क्षण भरमें नीचे हो जाता है वे सब बदलते रहते हैं

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसे ही सुख और दुःख ये दोनो बदलते रहते हैं। तीसरी बात सज्जनों की संगति वियोग विषसे दूषित है यानें दु.खदायी है। यदि आज अच्छे पुरुषोंका समागम मिला है, जिनके वचन सुनकर धैर्य होता है, शान्ति मिलती है तो वह संगति वियोग-रूपी विषसे विषैली है याने उनका वियोग होगा ओर वहाँ दु.ख उत्पन्न होगा। चौथी बात—शरीर रोग रूपी सर्पोंका बिल है जैसे कि बिलमें सर्प रहते हैं ऐसे ही शरीरमें रोग बसा करते हैं। करोड़ों तरह के रोग बताये गये हैं, वे रोग रूपी साँप सब इसी शरीर बिलमें रह रहे हैं। ५ वीं बात जन्म-मरणसे सहित है। जन्म हुआ है तो नियमसे मरण होगा। किसीका भी जन्म-मरणशून्य नहीं होता। जैसे निर्वाण होता है तीर्थंकरोंका अन्य महापुरुषोंका मोक्ष होता है तो वहाँ कोई कहे कि उन तीर्थंकर आदिक महापुरुषोंका जन्म तो होता पर मरण कहाँ हुआ ? तो वहाँ भी निर्वाणका ही नाम-मरण है। आयुके क्षय होनेको मरण कहा करते हैं। अष्ट कर्मोंका जहाँ क्षय हुआ वहाँ आयुकर्मका भी तो क्षय है, वही मरण है। भले ही उस मरणको पंडित-पंडित मरण कहते हैं। उसी का ही दूसरा नाम निर्वाण है, पर प्रत्येक जन्म-मरण करके युक्त है। तो संसार की ऐसी स्थिति है। सम्पत्ति विपत्ति सहित है सुख-दुःख मिश्रित हैं। सज्जन संगति वियोगसे भरी है। शरीर रोगोंका बिल है जन्म-मरण सहित तो भी यह जीव ऐसा अज्ञानी है कि इन अवस्थावोंमें ही अपने को सुखी मानता है और इनसे निकलने की कभी चेष्टा भी नहीं करता, कभी मन में ही बात नहीं लाता। हाँ विवेकी पुरुष, सम्यग्दृष्टि पुरुष परिस्थितिवश इनमें पड़ जाय तो भी इनसे विरक्त है और इनसे हटनेकी चेष्टा करता है।

असातहुतभुक्शिखाकवलितं जगन्मंदिरं सुखं विषमवात-भुग्रसनवच्चलं कामजं।
जलस्थशशिचंचलां भुवि विलोक्य लोकस्थितिं विमुंचत जनाः सदा विषयमूर्छनां तत्त्वतः ॥२६३॥

परिग्रह ग्रहणमें महासंकट—यह संसार रूपी मंदिर अर्थात् महल असाता रूपी अग्निसे प्रज्वलित ज्वालासे सदा जलता रहता है मायने असाता अग्नि ने इस संसार महलको कव्लित कर लिया है अर्थात् सर्वत्र प्राणी यह दुःखमें जलता ही रहता है, क्योंकि संसारकी कोई भी स्थिति ऐसी नहीं है कि जहाँ असाताका प्रभाव न फैला हो। नरकगतिमें सर्वत्र असाता है। कष्ट ही मानता रहता है, वहाँ पर बीच-बीचमें साताके उदय आते हैं। बहुत क्षणिक अथवा असाता कम हो या दूसरा नारकी मारने पीटनेको उस समय किसी क्षणको न आया या बड़े दुःखके बाद कई छोटा दुःख रह गया तो उसी

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

को ही साता समझ लेते हैं, पर असाताका वहाँ बड़ा साम्राज्य है, तिर्यञ्चोंमें भी असाता देखी जा रही है। मनुष्य असातासे दुःखी हो ही रहे हैं। साताके भी उदय चलते हैं मगर ये साता के उदय भी सदा रहते नहीं हैं। ये असातासे व्याप्त हैं। देवगतिमें साताकी प्रधानता देखी जाती है मगर वहाँ पर भी कठिन वेदनायें दिख रही हैं जिससे असाता वहाँ भी चलती है। इस संसारमें सर्वत्र असाता का ही प्रताप फैल रहा है। कामजन्य सुख सर्पकी जिह्वा के समान चंचल है। जैसे सर्प जिह्वा कैसी लपलपाता है, बाहर निकली, भीतर आयी, चंचल है, क्षण-क्षण बदलती रहती है, क्षणस्थायी है, ऐसे ही कामजन्य सुख क्षणस्थायी है, चंचल है, वह भी सदा नहीं रहता। क्षणभरको कल्पनासे सुख मानता, बादमें यह जीव पछताता है। इसी तरह जो भी कुछ इस संसारमें दृष्टिगोचर हो रहा है वह सब जलमें पड़े हुए चंद्रप्रतिबिम्बके समान अस्थिर है। जैसे किसी नदी या तालाबमें लहरें उठ रही हों और उसमें चन्द्रमाका प्रतिबिम्ब पड़ रहा हो तो उसमें वह प्रतिबिम्ब स्थिर नहीं रह सकता ऐसे ही यहाँ दिखने वाले सभी पदार्थ अस्थिर हैं स्थिर नहीं रह सकते। तो जब ऐसी स्थिति है, असाता ही भरी हुई है, चीजें अस्थिर हैं तो सज्जनोंको चाहिये कि इस संसारके कारणभूत परिग्रहोंका सर्वथा त्याग करें, क्योंकि जितनी विडम्बनायें अस्थिरतायें हैं वे सब परिग्रहके आश्रयसे हैं इस कारण परिग्रहोंसे मुख मोड़कर अपने आपके स्वरूपकी ओर उपयोग रखना चाहिये जिससे कि संसारके संकट और इन संकटोंके कारणभूत विकारभाव ये सब दूर हो जायें।

भवेऽत्र कठिनस्तनींस्तरललोचनाः कामिनीर्धरापरिवृढ श्रियश्चपलचामरभ्राजिता।
रसादिविषयांस्तथा सुखकरान्न कः सेवते भवेद्यति जनस्य नो तृणाशिरोंबुवज्जीवितं ।।
२६४।।

सकल समागमोंकी अनित्यताका चित्रण—यह जीवन तृणके ऊपर पड़े हुए ओसकी बूँदके समान क्षणविनाशीक है। जैसे तृणपर, घासपर ओसकी बूँद पड़ी हो तो वह क्षणिक है, ढल जाय, गिर जाय, सूख जाय, किसी भी हालतसे वह ओसकी बूँद टिक नहीं पाती, ऐसे ही इस मनुष्यका जीवन टिक नहीं पाता। यदि यह जीवन टिक जाता होता तब फिर कौन पुरुष संसार त्याग करता ? कौन पुरुष युवतियोंके संसर्गका सुख छोड़ता, क्यों बनमें जाकर कोई महापुरुष तपश्चरण करता ? वे जब सदा जीते रहते ही तो संसारसुख भोगनेकी ही बात करते तो यह जीवन क्षणिक है इसी कारण महापुरुष चंचल नेत्र वाली कामिनियोंका संसर्ग तज देते हैं और बड़-बड़ राज्य तज देते हैं यदि यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीवन क्षणिक न होता तो कौन पुरुष कामिनियोंका संसर्ग न करता ? ढुलते हुए चावरोंसे सुशोभित राज्य विभूतिको कौन पुरुष न सेवता और कौन पुरुष मधुर-मधुर रस व्यञ्जन आदिकके विषयोंको अनुभवमें न लेता ? अर्थात् यदि यह जीवन सदा रहता, कभी नष्ट न होता तो यह मनुष्य विषय ही भोगता, राज्यादिकको ही भोगता रहता। यह कभी उसे त्यागकर तपश्चरणमें न लग पाता। चूँकि यह प्रकट स्पष्ट है कि यह जीवन सदा नहीं रहता और जितने दिन भी रहता उतने दिन भी यह नियम पूर्वक नहीं मर रहा। कितने ही मनुष्य तो गर्भमें ही मर जाते, कोई जन्मते ही, बाहर निकलते ही मर जाते। अचानक किसी भी समय मर जाते। तो जब जीवन इस प्रकार का क्षणिक है तो विवेकीजन इस संसारके संकटोंसे हटनेके लिए इन सब मायामयी घटनावोंको त्याग कर ज्ञानात्मक आत्मस्वरूपका ही अनुभव किया करते हैं।

हसंति धनिनो जना गतधनास्रुदंत्यातुराः पठंति कृतबुद्धयोऽकृत धियोऽनिशं शेरते, ।
तपंति मुनिपुंगवा विषयिणो रमंते तथा करोति नटनर्तनक्रममयं भवे जन्मिनां ॥२६५॥

अज्ञानी जीवोंकी नटवत् विविध चेष्टायें—यह संसारी प्राणी नटोंके समान कैसा नाना प्रकारकी भिन्न-भिन्न चेष्टायें किया करता है। वह जीव कभी पशु बनता, पक्षी बनता, मनुष्य बन जाता, । यों इसके भेष ही एकदम एक दूसरे से न मिलते हुए नाना प्रकार के यह मनुष्य बना मानो और इस मनुष्यभवमें इसे धन मिल गया तो यह बड़ा खुश रहता है। अपने आपमें संसारमें बड़ा मानता है और जिसके वह धन नाश हो जाता है वह आतुर होकर रुदन करना शुरू कर देता है। तो यह जीव कभी हँसता है, कभी रोता है, यह धनको अपना प्राण सर्वस्व समझता है. तो उसका वियोग होने पर यह चित्तमें कष्ट मानता है। जो ज्ञान वाले पुरुष हैं वे पढ़ा करते हैं और जो ज्ञानरहित पुरुष हैं वे रात दिन आलसमें ही रहते हैं। निद्रा सी लेते रहते हैं। तो यह भी एक विचित्र बात है। ज्ञान वाले पुरुषको चेष्टा अन्य प्रकार है, ज्ञानरहित पुरुषकी चेष्टा अन्य प्रकार है, जो मनि श्रेष्ठ हैं वे तपश्चरण करते हैं, जो विषीय इन्द्रिय-सुखके लम्पटी हैं वे इन्द्रिय के विषयोंमें ही फसे रहा करते हैं, इनकी भी कैसी विरुद्ध चेष्टायें हैं। कोई तपश्चरण कर रहा तो कोई उसके खिलाफ विषयोंमें रम रहा इस प्रकार यह जीव नटों के समान नाना प्रकार की भिन्न चेष्टायें कर रहा है। ये जन्मके दोष बताये जा रहे हैं। जन्म लेकर इस जीवने कौन सा बड़प्पनका काम किया ? जीवनमें सर्वत्र यह नाना चेष्टायें करता है और वहाँ विविध कष्ट भोगता ही रहता है तो ऐसी जातिको धिक्कार है।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

न किं तरललोचना समदकामिनीवल्लभा विभूतिरपि भूभुजां धवलचामरच्छत्रभृत् ।
मरुच्चलितदोपवज्जगदिदं विलोक्यास्थिरं परन्तु सकलं जनाः कृतधिया वनांतं गताः ॥२६६॥

इष्ट समागमोंकी विनश्वरता जानकर विवेकियोंका तपश्चरणोद्यम—कामके मदसे विह्वल हुई ये बल्लभायें कामिनियाँ क्षणिक विनाशीक हैं। जैसे उनके नेत्र चंचल हैं वैसे ही वे स्वयं खुद चंचल हैं। राजा महाराजावोंकी सम्पत्ति जो लोगोंको प्रकट स्पष्ट दिखती है, उन पर छत्र लगे हैं, श्वेत चमर उनके सिरपर ढुल रहे, जिससे राज्यकी बड़ी विभूति विदित होती है तो ऐसी शोभित सम्पत्तियाँ भी शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाली हैं। इससे बढ़कर क्या उदाहरण होगा कि जब श्रीरामका राज्याभिषेक होनेकी तैयारी हो रही थी, निश्चय ही था और अचानक ही यह आज्ञा पितासे सुन पड़ी कि राज्य भरतको दिया जायगा, तो ये राज्यादिक विभूतियाँ ये शीघ्र ही नष्ट हो जाने वाली हैं। किसी को राज्य वैभव मिला और वह न सम्हाल सका। दूसरे ने उस पर कब्जा किया। तो बड़ी से बड़ी सम्पत्तियाँ शीघ्र नष्ट हो जाने वाली हैं। अन्य भी जो लौकिक सुख हैं वे भी हवा से प्रेरे गए दीपककी लौ के समान चंचल है। जैसे दीपक जलता है तो लौ हवाकी प्रेरणासे चंचल रहती है, स्थिर नहीं रह पाती, इसी प्रकार दुनियाके जितने भी सुख हैं वे सब अस्थिर हैं। कोई सुख स्थिर नहीं रहता। यह जीव व्यर्थ ही कल्पनायें करके भ्रमसे अपने आपको सुखी मानता है। ऐसी अनेक बातोंका विचार करें कि जगतमें जो कुछ भी संग प्राप्त हुआ है वह सब विनाशीक है, कभी टिकने वाला नहीं है इसी कारण बुद्धिमान पुरुष इन समस्त अन्य पदार्थोंके लगाव की स्थितिसे छुटकारा पाने के लिए सर्व कुछ त्याग देते हैं और जंगलमें जाकर तपश्चरण किया करते हैं। चूँकि सर्व कुछ समागम केवल अनिष्ट के लिए ही हैं। आत्माका अहितकारी है, उसका आत्मासे कुछ सम्बन्ध नहीं। सो इस ज्ञानबलसे विवेकीजन समस्त परिग्रहोंका त्यागकर ज्ञानस्वरूप आत्मा का ही अपने आपमें अनुभव किया करते हैं।

इति प्रकुपितोरणप्रमुखभंगुरां सर्वदा निधाय निज्चेतसि प्रबलदुःखदां संसृतिः ।
विमुंचत परिग्रहग्रहमनार्जवं सज्जना यदीच्छत सुखामृतं रसितुमस्तसर्वाशुभं ॥२६७॥

सुखार्थियोंको ममत्वपरिहारका उपदेश—हे मुमुक्षुजन! यदि तुम्हारी इच्छा समस्त दुःखोंसे रहित चिरस्थायी सुख पाने की है तो इस कुपित सर्पादिक समस्त क्षणभंगुर

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

समान जीवनको अतीव दु ख देने वाला समझो और उससे छुटकारा पाने के लिए कुटिल परिग्रह के ग्रहणका त्याग करो। ऊपरके छंदोंमें बताया है कि यह जन्म क्षणभगुर है। इस लोकमें जितने भी समागम मिले हैं वे सब क्षणिक हैं, उन समागमोंमें कल्पनायें करके प्राप्त किया जाने वाला सुख क्षणभंगुर है। उस सुखमें लगाव रखने से आत्माकी बरबादी है। संसार क्लेशकी परम्परा है इसलिए इन सुखों को दुःख मानकर इनकी तो अभिलाषा छोड़नी चाहिए और वास्तवमें आत्मीय स्वाधीन जो सहज सुख है, चिरस्थायी है उस सुख पाने की वाञ्छा होनी चाहिये। सो यदि चिरस्थायी सुख पाने की इच्छा है तो इस जीवनको दुःखदायी समझो जैसे क्रुद्ध हुआ सर्प दुःखदायी है इसी प्रकार यह जीवन यह जन्म दुःखदायी है। यदि यह आत्मा अपने सत्त्वको प्रकट अकेला रखता हुआ होता अर्थात् अन्य पदार्थोंमें मिला हुआ न होता तो आत्मा दुःख रहित था यह दुःखी है तो शरीरके सम्बन्धसे दुःखी है। शरीरके सम्बन्ध होने का ही नाम जन्म है। सो इस जन्मको प्रबल दुःखदायी समझो तो इस जीवनका क्षणिक सुख, इन्द्रियजन्य सुख दृष्टिमें हेय रहेगा और एक आत्माके ध्यानसे केवल आत्मासे ही उत्पन्न हुआ आनन्द यह ध्येय बन जायगा, सो इस ही आनन्दकी इच्छा करें और जीवनको दुःखदायी समझकर जीवनके समागमको, सुखको दुःखरूप समझकर उससे अलग हटनेका पौरुष करें। इन सबसे अलग हटनेका पौरुष यही है कि परिग्रहके ग्रहण का त्याग किया जाय याने समस्त पदार्थोंमें ममताको छोड़ दें। जब इस अमूर्त ज्ञान-मात्र आत्माका अन्य कुछ है ही नहीं तब फिर ममत्व किस बातका किया जा रहा है?

> मनोभवशरार्दितः स्मरति कामिनीं यो नरो विचिंतयति सा परं मदनकातरांगी नरं।
> परोऽपि परभामिनीमिति विभिन्न भावेप्सितां विलोक्य जगतः स्थितिं बुधजनास्तपः
> कुर्वते ॥२६८॥

जीवोंकी विचित्र परिणतियोंका दिग्दर्शन—जो पुरुष विवेकी हैं, हित अहितकी परख करने वाले हैं वे संसारकी रीति ऐसी समझते हैं कि देखो कामके बाणोंसे पीड़ित होकर पुरुष जिस कामिनी को चाहता है वह कामिनी उसे नहीं चाहती जिस पुरुषको वह कामिनी चाहती है वह पुरुष उस कामिनीको नहीं चाहता और वह तीसरा पुरुष भी जिस कामिनी को चाहता, वह उसे नहीं चाहती। इस जगतकी विडम्बना बड़ी दु खदायिनी है, ऐसा निरखकर विवेकी पुरुष तपश्चरण करने के लिए बनमें चले जाते हैं। एक ऐसी ही घटना घटी है जिसपर एक छंदमें रचना भी हुई है। वह छंद इस प्रकार है–

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यां चिन्तयामि सततं मयि सा विरुद्ध। साप्यन्यमिच्छति जनं स्वजनेष्वसक्तं इत्यादि। इसमें राजाने उस रानी को उस कोतवाल को इस वेश्याको व खुदको व कामको धिक्कारा है। घटना संक्षिप्त यह है—

एक राजा था तो वह राजा अपनी रानीको चाहता था, पर रानी राजाको न चाहकर एक कोतवालको चाहती थी। कोतवाल वेश्याको चाहता था और वह वेश्या किसी अन्य को चाहती थी। ऐसी ही घटनामें एक अमरफलके आदान-प्रदान से जो तथ्य जाहिर हुआ उसे देखकर राजा विरक्त हो गया था। तो इस जगतमें इन्द्रियज सुखका क्या ठिकाना है? कषायोंसे भरे हुए जीव अपनी-अपनी कषायके अनुकूल चेष्टायें किया करते हैं। यहाँ कौन किसको चाहने वाला है? कौन किसका हिताभिलाषी हो सकता है? सब कुछ अपने-अपने लक्ष्यके अनुसार प्रवृत्तियाँ की जा रही हैं तो जब इस संसारमें कोई किसी को वास्तवमें चाहने वाला नहीं है तब फिर किससे यहाँ राग करना, किसको अपना समझना? ये सब मोहमयी बातें हैं। इन्हें त्यागकर विवेकी पुरुष तपश्चरण करनेके लिए वनमें चले जाते हैं। जहाँ केवल अपना आत्म-स्वरूप ही दृष्टिमें रहता है वहाँ फिर कोई धोखा नहीं है। बाह्य पदार्थोंके लगावमें तो धोखा है, पर स्वकीय ध्यानमें कहीं भी धोखा नहीं है। सो विवेकी पुरुष इस असार संसार समागमको छोड़कर निर्ग्रन्थ होकर सर्व परिग्रहों से ममता त्यागकर अपने आपके आत्मामें ही तेज धुन बनाकर तपश्चरण करने के लिए वनमें चले जाते हैं।

११—जरा निरूपण

जनयति वचोऽव्यक्तं, वक्त्रं तनोति मलाविलं, स्खलयति गतिं, हंति श्याम, श्लथीकुरुते तनुं। दहति शिखिवत्सर्वांगानां च यौवनकाननं, गमयति वपुर्मर्त्यानां वा, करोति जरान किं॥ २६९॥

बुढ़ापे का चित्रण—इस परिच्छेदमें बुढापेका वर्णन किया गया है। बुढापेके आ जाने से मनुष्यके वचन अव्यक्त हो जाते हैं, क्योंकि सर्व अंग शिथिल हो जाते हैं। ओंठ जिह्वा आदिक सभी शिथिल पड़ जाते हैं तो उनका वह परस्पर प्रवर्तन नहीं हो पाता जिससे कि वचन स्पष्ट सुननेमें आयें। तो बुढ़ापेमें कैसी-कैसी दुर्दशायें होती हैं उनका वर्णन किया जा रहा है। बुढापेमें जीभ लड़खड़ाने लगती है क्योंकि शरीर शिथिल हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जाता है अब जीभको मनमाफिक प्रवर्ताना शक्य नहीं हो रहा, और प्रवर्ताते हैं तो शिथिल हो जानेके कारण जीभ लड़खड़ाने लगती है। बुढ़ापेमें मुखमें मल भरा रहता है, मुखसे लार निकलती रहती है और ओंठ लारसे भिड़े रहते हैं। बुढ़ापेमें लार, कफ आदिक बहने लगते हैं। वृद्धावस्था ऐसी दुःखमयी अवस्था है। वह गतिस्खलित हो जाती है। चलते हैं, पैर कहीं रखना चाहते, पर पड़ते कहीं के कहीं हैं बुढ़ापेमें सामर्थ्य नष्ट हो जाती है शक्ति नहीं रहती। अपने हाथ भी आरामसे उठा नहीं पाते। पड़े से उठना कठिन, बैठेसे खड़े होना कठिन, यों सारा शरीर शिथिल होने लगता है। बुढ़ापेमें यह यौवन खाकमें मिल जाता है। जैसे कोई वन अग्निसे मिल गया तो सारा वन खाक हो गया ऐसे ही बुढ़ापेमें यह यौवन खाकमें मिल जाता है। वहाँ न कान्ति रहती है, न शरीरकी सामर्थ्य रहती है। बुढ़ापेकी दुर्दशा कहाँ तक कहीं जाय ? जिस अवस्थाका पहले कभी अनुमान न कर सकते थे ऐसी अवस्था शरीरकी बुढ़ापेमें हो जाती है। तो जैसे जन्म एक बड़ा दुःख है, दुःखका मूल निवास है तो बुढ़ापा भी महान दुःख है, जहाँ अच्छी गति मानी जाती है वहाँ बुढ़ापा नहीं आया करता, जैसे देवगति में बुढ़ापा नहीं आया करता, लेकिन मरते समय मालाका मुर्झाना यह सब बुढ़ापेका ही तो चिन्ह है, वहाँ पर भी वे दुखी रहते हैं। बुढ़ापा एक बहुत बड़ी दुर्दशा है और इस बुढ़ापेका असर मनुष्य और तिर्यञ्चों पर अधिक पड़ता है। जैसे बूढ़े पशु पक्षी शिथिल होकर गतिरहित हो जाते और मरण कर जाते हैं ऐसे ही यह मनुष्य भी बुढ़ापेमें बड़े कठिन दुःख भोगता है। पराधीन हो जाता है। किसी ने सेवा की तो की न की तो जैसी स्थिति है उस स्थितिमें पड़े रहते हैं।

प्रबल पवनयातध्वस्तप्रदीप शिखोपमैररतिमलनिभैः कामोद्भूतैः सुखैर्विपसंनिभैः।
समपरिचितैर्दुःख प्रातैः सतामतिनिंदितैरिति कृतमनाः शंके वृद्धः प्रकंपयते करौ ॥२७०॥

वृद्ध पुरुषोंके कम्पित हाथोंसे उपदेशका लाभ—बुढ़ापेमें दुःख क्या है कि मनुष्य के हाथ कंपने लगते हैं सो मानों बुढ़ापेके कारण मनुष्यके हाथ कपकर यह शिक्षा दे रहे हैं लोगोंको कि भाई तुमने जो जवानी अवस्थामें कामजन्य सुख भोगे थे वे अब विष तुल्य हानिकारक सिद्ध हुए हैं। आंधीके वेगसे बुझाये गए दीपकके लौ के समान क्षणविनाशीक और महा दुःखके साधन निकले हैं। सज्जन लोग जो पहलेसे इस काम रोग भोगकी निन्दा करते थे सो बिल्कुल ठीक है उसमें रंच मात्र भी असत्य नहीं है इसलिए इन भोगोंका भोगना सर्वथा अनुचित ही है। बुढ़ापेकी दशा देखो हाथोंका कंपना मानो इस

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बातको जाहिर कर रहा है कि यह दुर्दशा मैंने इस कारण पायी कि जवानीमें मन स्वच्छंद करके मनमाना काम भोगा था सो उस काम व्याधि भोगने की परिस्थितिसे आज ऐसी स्थिति हुई है तो ये काँपते हुए हाथ दुनियाको यह शिक्षा दे रहे हैं कि यदि ऐसी दशा नहीं प्राप्त करनी है तो हे युवको अपनी जवानी अवस्थामें समस्त भोगोंका परिहार करके आत्मज्ञानसे भरपूर बनो और आत्माकी दृष्टि करके संतुष्ट होवो इन भोगोंमें सार नहीं है यह शिक्षा ये कँपने वाले हाथ स्पष्ट रूपसे लोगोंको दे रहे हैं।

चलयति तनुं, दृष्टेर्भ्रांतिं करोति शरीरिणां रचयति बलादव्यक्तोक्तिं, तनोति गतिक्षितिं।
जनयति जने नुद्यां निंदामनर्थपरंपरां हरति सुरभिं गंधं देहाज्जरा मदिरा यथा ॥२७१॥

वृद्ध पुरुषोंकी मद्यपायीकी तरह विडम्बना—जैसे मदिरा पीनेसे शरीरको मदिरा चल-विचल कर देता है, आँखोंको भ्रमा देता है, स्फुटित वचन कहलवाता है, चलनेमें बाधा डालता है, लोकमें निन्दाकापात्र बना देता है, देहकी सुगन्धि नष्ट कर देता है, दुर्गन्ध उत्पन्न कर देता है। तो जैसी दशा मदिरापान करने से शरीरकी हो जाती है ऐसी ही दशा वृद्धावस्थासे शरीरकी हो जाती है। जैसे मन्दिरा पीने से शरीर चल-विचल हो जाता है, कँप जाता है तो वृद्धावस्थामें भी शरीर चलविचल हो जाता है और यह कम्पित हो जाता है। शराब पीने से आँखें घूम जाती हैं। वृद्धावस्था आनेसे यहाँ भी आँखोंकी ज्योति कम हो जानेसे दृष्टिमें भ्रान्ति कर देता है। मदिरापायी पुरुष वचन स्पष्ट नहीं बोल पाता। तो यह वृद्धावस्था वाला भी टूटे-फूटे कुछ से कुछ शब्द बोलता है, स्पष्ट नहीं बोल पाता है। मदिरापानसे जैसे चलनेमें बाधा आती है तो वृद्धावस्था होनेसे यह शरीर भी ठीक-ठीक नहीं चल पाता। जैसे शरीर पहले चलता था वैसे अब वृद्धावस्था आने पर नहीं चल पाता। मदिरापायी को जैसे बड़ी निन्दा होती है ऐसे ही वृद्धावस्था में लोगोंसे नाना प्रकार की निन्दा भरी बातें सुननेको मिलती हैं। जो चाहे उस वृद्धको कुछ भी कह जाय आखिर वह वृद्ध उपचार क्या कर सकता है? मदिरा पीनेसे शरीरकी सुगंध खत्म हो जाती है और दुर्गन्ध आने लगती है, तो वृद्धावस्थामें भी शरीरमें दुर्गन्ध आने लगती है। यह वृद्धावस्था बड़ी भयंकर अवस्था है, पूर्ण दुःख वाली अवस्था है। इस वृद्धावस्थासे बचनेके लिए यह ही उपाय है कि इस जीवके शरीरका सम्बंध ही न रहे। शरीर रहित केवल शुद्ध हो जाय। फिर वहाँ बुढ़ापा क्या, किसी भी प्रकार के रोगकी, दुःखकी सम्भावना नहीं रहती इससे इस बुढ़ापाके संकट से बचनेके लिए बुढ़ापारहित, शरीर रहित केवल ज्ञानमात्र अंतस्तत्त्वका अनुभव करना चाहिये और

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

आत्मतत्त्वकी दृष्टिमें ही रहकर तृप्त रहना चाहिये।

भवति मरणं प्रत्यासन्नं, विनश्यति यौवनं प्रभवति जरा सर्वांगानां विनाशविधायिनी।
विरमत बुधा कामार्थेभ्यो वृषे कुरुतादरं वदितुमिति वा कर्णोपांतस्थितं पलितं जने ॥२७२॥

वृद्धावस्थाके सफेद बालोंसे उपदेश--वृद्धावस्था आनेके समय सिरके बाल श्वेत हो जाते हैं। मानो ये श्वेत हुए बाल लोगोंको कानके पास जाकर अपने आगमन से ऐसी सूचना देते हैं कि हे विद्वान, हे हित अहित के पारखीजनो, तुम्हारा मरण अब समीप है, तुम्हारा मरण शीघ्र आने वाला है, तुम्हारे यौवनकी म्याद पूरी हो चुकी, वह अब नष्ट होने के करीब है, सो देखो तुम्हारा बुढ़ापा आ रहा है, जिससे तुम्हारे अंग जो इस समय काम करनेमें समर्थ हैं वे अब शक्तिहीन हो जायेंगे। किसी कामके न रहेंगे, इसलिए अब कामका प्रयोजन छोड़ो, तुम जो अब तक भोग चुके सो भोग चुके, अब धर्मकी ओर ध्यान दो, अन्तके दिनोंमें तुम भी अपना हित कर लो। मानो ये बुढ़ापेके श्वेत बाल ऐसा स्पष्ट लोगोंको प्रतिबोध कर रहे हैं। बुढ़ापा आने पर यह तो निश्चित ही है कि बुढ़ापेके बाद मरण ही होगा। जवानी या बचपन पुनः लौटकर नहीं आता। एक ही निर्णय है कि मरण होगा। बुढ़ापा कहते हो उसे हैं जहाँ जवानी नष्ट हो गई। शरीर शिथिल हो गया। जैसे पुद्गलमें भी काठ आदिक पदार्थ बहुत दिनके हो जायें तो वे खोखले हो जाते हैं, शक्तिहीन हो जाते हैं, फिर तो उन्हें कोई हाथसे ही तोड़ डालते हैं। तो शरीर भी बहुत दिन तक रहा आया तो यह भी शिथिल हो जाता है, शक्तिरहित हो जाता है। तो ऐसा जरा अर्थात् बुढ़ापा समस्त अंगोंका विनाश करने वाला है। सो यह बुढ़ापा यह शिक्षा दे रहा कि अब तुम काम और धनार्जन आदिकके विकल्प को त्यागकर विराम लो और धर्ममें आदर करो। धर्म ही इस समय इस जीवको विश्राम देगा और परलोकमें भी सद्गतिकी अवस्थाको प्राप्त करायगा, इसलिए बाह्य विकल्पों को त्यागकर अर्थ और काम पुरुषार्थको छोड़कर अब धर्म पुरुषार्थमें चित्त दो, ऐसा ये सफेद केश दुनियाको शिक्षा दे रहे हैं।

मदनसदृशं यं पश्यंती विलोचनहारिणी शिथिलिततनु कामावस्थां गता मदनातुरा।
तदपि जरसा शीर्णं मर्त्यं बलादिह भोज्यते जगति युवतिर्वा भैषज्यं विमुक्तरतस्पृहा ॥२७३॥

वृद्धावस्थामें कामविडम्बनापर आश्चर्य—जो युवतियाँ नेत्रोंको प्रिय माना जाती थीं, जिनको कामके समान सुन्दर माना जाता था, जिन्हें देखकर शिथिल शरीरको धारण करने वाले कामसे पीड़ित हो जाते थे, उन्हीं को वृद्धावस्थामें अब जरा से जीर्ण

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

शीर्ण महान निन्दित रूपका धारी देखते हैं, सो वे यद्यपि कामकी इच्छासे बिल्कुल रहित हो जाती हैं तो भी औषधिके समान इच्छा न रखने पर भी जबरन भोगी जाती हैं। इस वृद्धावस्थामें इस पुरुषकी दयनीय दशाका चित्रण किया है। वृद्धावस्था होने पर भी जो पुरुष युवतियोंका सेवन करते हैं उनकी कुचेष्टायें कितनी करुण हैं। जो स्त्री इस पुरुषको कामके समान सुन्दर मानी जाती थीं, जिन्हें देखकर यह पुरुष स्वयं कामसे पीड़ित हो जाता था वही पुरुष अब वृद्धावस्थामें जीर्ण शीर्ण गला हुआ देख रहा है, सो ऐसे शरीरको देखकर स्त्री कामकी इच्छा कैसे करें? ऐसी विरुद्ध परिस्थितिमें भी ये स्त्रियाँ अब भी उस वृद्ध जीर्ण शरीर वाले पुरुषोंके द्वारा भोगी जाती हैं, यह बड़े आश्चर्य और अंधेरकी बात है। बुढ़ापा होने पर सर्व कुछ बात शिथिल हो गई, मगर भीतरसे कामकी वासना नहीं निकली। यह अज्ञानका बड़ा कठिन प्रभाव है। तो काम भोगादिकसे विरक्त होकर पूर्ण विश्राम लेकर अपने आपके सहज स्वरूप का दर्शन करना चाहिये था अपने सहज स्वरूपके निरखने में ही तृप्त रहना चाहिये था, मगर यह सब कुछ न होकर ऐसी स्थिति बन गई कि भोग-भोग भी नहीं सकते और इस कारण भोग-भोगने की बड़ी प्रबल वासना बन गई है और उस समय ऐसी स्थिति हो गई जैसी कि नपुंसकोंकी स्थिति होती है। जैसे नपुंसक भोग नहीं भोग सकते मगर उनके मनकी जलन इतनी तेज है, इतनी तीव्र अभिलाषा है कि वह अन्दर ही अन्दर जलता रहता है ऐसे ही यह अज्ञानी वृद्ध पुरुष अपने आपमें जलता ही रहता है।

भवति विषयान् भोक्तुं मोक्तुं न च क्षमचेष्टितो वपुषि जरसा जीर्णो देही विधूतबलः परं।
रसति तरसा त्वस्थीनि श्वा यथा त्रपयोज्झितः कररसनया धिग्जीवानां विचेष्टितमीदृशं ॥
२७४॥

वृद्ध पुरुषोंकी विवशताका चित्रण—यह वृद्ध पुरुष बुढ़ापेके कारण अत्यन्त दुर्बल हो जाता है। जैसे बहुत पुराना चर्खा, जिसके खूंटे वगैरह हिलने लगते हैं, वह खटखट करता है, काम ठीक नहीं देता, ऐसे पुराने चर्खे की तरह बूढ़े व्यक्ति का शरीर हो जाता है। बुढ़ापेमें शारीरिक शक्ति एकदम क्षीण हो जाती है, तो भी आश्चर्यकी बात है कि उस बूढ़ेको इन्द्रियविषयोंके छोड़नेकी इच्छा नहीं होती बल्कि भोगने की इच्छा बनी रहती है। सो जैसे रक्त मांस रहित हड्डीको कुत्ता तृष्णासे चबाता है, चबाता ही रहता है, उसे छोड़ता ही नहीं है, चाहे उस हड्डीके चबानेसे उसके मसूढ़े फट जायें और अपने मसूढ़ों का खून स्वादने लगे और भ्रमसे उसी की हो

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसा जानकर कि मुझे हड्डीसे सुख आया है हड्डीको चबाया ही करता है, ऐसे ही इस वृद्धावस्थामें इन्द्रियजन्य बिषयोंकी यह वृद्ध पुरुष सेवा करता ही रहता है, छोड़नेको मन नहीं करता। तो कैसा बुढ़ापेकी दुर्दशा है कि यह अज्ञानी पुरुष इस बुढ़ापेमें न भोगोंको भोग सकता न भोगोंकी इच्छाको छोड़ सकता है। तो ऐसी कठिन स्थिति है इस वृद्ध पुरुषकी। ऐसे जीवोंकी चेष्टावोंको बार-बार धिक्कार है। यदि शरीरने मदद करनी छोड़ दी तो यह शरीरसे उपेक्षा करके आत्माके शुद्ध अन्त:स्वरूपको निरखता रहे, यह काम करना चाहिए, परन्तु आत्मीय पुरुषार्थ को कैसे करे उसका ज्ञान ही नहीं, तो अज्ञानवश बुढ़ापेमें यह वृद्ध पुरुष न भोगोंको भोग सकता और न भोगोंको छोड़ ही पाता।

तिमिरपिहिते नेत्रे लालावलीमलिनं मुखं विगलितगती पादौ देहो विसंस्थुलतां गत:।
पलितकलितो मूर्धा कंपत्यबोधि जरांगनामिति कृतपदां तृष्णा नारी तथापि न मुंचति ॥
२७५॥

जराग्रस्त पुरुषपर तृष्णाकी आसक्ति—संसारका ऐसा एक कायदा बना हुआ है कि स्त्री किसी पुरुषमें तब तक ही प्रेम करती रहती है जब तक कि वह पुरुष उस स्त्रीको चाहता रहता है। जैसे ही उस पुरुषने किसी अन्य स्त्रीको चाहा अर्थात् उस स्त्री से उपेक्षा की और अन्य स्त्रीको चाहा वैसे ही वह स्त्री क्रोध करने लग जाती है और यहाँ तक क्रुद्ध हो जाती है कि उसे छोड़ने पर भी उतारू हो जाती है। लेकिन इस जीवकी बात इससे निराली बन रही है। तृष्णा रूपी स्त्री ऐसी निर्लज्ज स्त्री है जो स्त्रियोंके कायदे के विरुद्ध काम करने लगती है। पुरुष जब जरा रूपी सर्पसे ग्रस जाता है तो इस तृष्णा स्त्रीको उस पुरुषसे मोह छोड़ देना चाहिये, क्योंकि अब उस पुरुषने जरा अर्थात् बुढ़ापा रूपी स्त्रीसे प्रेम किया है याने बूढ़ा हो गया है। यद्यपि उसको इस बातका भी निश्चय हो जाता है कि इस वृद्ध पुरुषके नेत्र मंद ज्योति के हो गए, मुख राल, कफ आदिकसे भरा रहता है। पैर भी ठीक ठिकाने टिक नहीं पाते, चलते हुए में पैर लड़खड़ाते हैं। देह शिथिल झुर्रीदार हो गया, सिर सफेद हो गया, सारे शरीरके अंगोंके साथ सिर भी काँप रहा है, तो स्पष्ट मालूम हो गया कि इस पुरुष को जरा रूपी दूसरी स्त्रीने अपना लिया है। तो जैसा स्त्रीजनोंका कायदा है कि दूसरी स्त्रीका प्रेम दिखे पुरुषपर तो वह उस पुरुषको छोड़ देती है, लेकिन तृष्णा जरा बुढ़ापेकी संगति देखकर भी इस पुरुषको छोड़ना नहीं चाहती, अर्थात् ज्यों-ज्यों

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बुढ़ापा बढ़ता जाता है त्यों-त्यों तृष्णा भी बढ़ती जाती है, यह बड़ी विडम्बनाकी बात है।

गलति सकलं रूपं, लालां विमुंचति जल्पनं, स्खलति गमनं, दंता नाशं श्रयंति शरीरिणः।
विरमति मतिर्नो शुश्रूषां करोति च गेहिनी, वपुषि जरसा ग्रस्तं वाक्यं तनोति न देहजः॥ २७६॥

जराग्रस्तकी दुर्दशा—जिस समय यह मनुष्य बुढ़ापेसे ग्रस्त हो जाता है उस समय इसका सम्पूर्ण रूप नष्ट होने लगता है। न कांति रहती है न शरीरमें पुष्टि रहती है, और बुढ़ापा से ग्रस्त पुरुष बोलने में स्पष्ट शब्द नहीं बोल पाता और उसके मुखसे थूक टपकने लगता है, जब वह बूढ़ा पुरुष चलता है तो चलनेमें पैर टेढ़े हो जाते हैं। बूढ़े आदमी के पैर सीधे नही रह पाते। चलनेमें पैर टेढ़े ही चलते हैं। बूढ़के दाँत गिर पड़ते हैं, दाँतहीन मुख हो जाता है। बुढ़ापेमें बुद्धि भी काम नहीं करती। कहते ही हैं लोग कि अब यह सठिया गया। अधिक उम्र होने पर उसकी बुद्धि काम नहीं देती। वृद्ध पुरुषकी खास स्त्री भी जो बहुत पहले बड़ा प्रेम दिखाया करती थी वह भी सेवा सुश्रुषा करना छोड़ देती है और जब पुरुष वृद्ध हो जाता है तो पुत्र भी जानने लगते हैं कि अब इससे मेरा कोई स्वार्थ सिद्ध नहीं हो सकता, यह मेरे कुछ काम का नहीं रहा सो पुत्र भी उसकी उपेक्षा कर जाते हैं और उसकी आज्ञा नहीं मानते हैं। तो वृद्ध पुरुषकी स्थिति बड़ी दयापूर्ण है। पहले वह कैसा भी बलशाली रहा हो, लोगों पर अपना बड़ा प्रभाव डालने वाला रहा हो, कैसा हो लोगोंके द्वारा वह बड़ा माननीय हो गया हो लेकिन बुढ़ापा आते ही शरीरके पूर्ण शिथिल होते ही ये सारी दुर्दशायें होने लगती हैं और लोग उससे उपेक्षा करने लगते हैं। ऐसा बुढ़ापा इस जीवके लिए हितकारी नहीं है। महान दुःखसे भरा है। तो जब शरीर लगा है तो बुढ़ापा होगा ही। तो जिसे बुढ़ापेका दुःख न चाहिए उसका कर्तव्य है कि ऐसा उपाय बनाये कि शरीरसे ही वह रहित हो जाय याने सिद्ध हो जाय। जब शरीर ही इसे न मिलेगा तो बुढ़ापा आदिकके दुःख इसको किस प्रकार प्राप्त होंगे?

रचयति मतिं धर्मे, नीतिं तनोव्यतिनिर्मलां, विषयविरतिं धत्तो, चेतः शमं नयते परां।
व्यसननिहति दत्ते, सूते विनीतिमथार्चिता मनसि निहिता प्रायः पुंसां करोति जरा हितं॥ २७७॥

जरा की हितकारिता—जो पुरुष ज्ञानी होते हैं उनके लिए बुढ़ापा भी योग्य दिशावोंकी ओर ले जाता है। हित बुद्धिसे विचारा जाय तो बुढ़ापा एक तरहसे प्राणियों

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

का हित ही करने वाला है। जब वृद्धावस्था आती है तो विवेकी पुरुषोंकी बुद्धि धर्ममें लग जाती है, क्योंकि विवेकी पुरुष उस समय वैराग्य बुद्धिमें आ जाते हैं। यह संसार अहितरूप है, यहाँ जितने भी समागम प्राप्त किये हैं वे सब इसके अनर्थके लिए ही हैं। इन समागमोंकी क्या चाह करना? मैंने अब तक इन इष्ट समागमोंमें रमकर अपने आपको भुलाया ही है। अब जीवनके अन्तका समय निकट आ गया, इसकी निशानी यह बुढ़ापा है। इन भोगोंमें बुद्धि न रखकर आत्मतत्त्वमें ही बुद्धि रखनी चाहिये। इस प्रकार विवेकी जनोंकी बुद्धि धर्ममें आ जाती है। वृद्ध पुरुषके जो कि विवेकी हो उसकी निर्मल नीति चलने लगती है। उसका आचरण निर्मल नीति पूर्ण होने लगता है। अन्याय के लिए उसके चित्तमें इच्छा नहीं उत्पन्न होती। वृद्धावस्थामें विषयोंसे विरक्त हो जाता है क्योंकि विषय भोगकर कुछ नहीं पाया, यह उसका ध्यान बना हुआ है और विषयोंके भोगनेका अब भाव नहीं रहा है, इस कारण उस वृद्ध विवेकी पुरुषके विषयोंसे वैराग्य हो जाता है। बुढ़ापेमें चित्तमें एक अभूतपूर्व शान्तिका आविर्भाव होता है क्योंकि अब उसे न करने का भाव आया है। मेरे करनेको जगतमें कुछ भी नहीं है प्रत्येक पदार्थ अपने आपमें अपनी ही परिणति किया करता है एक का दूसरे से कुछ भी सम्बंध नहीं है। वृद्धावस्थामें इन विवेकी पुरुषोंके पवित्र विनयका भाव जगने लगता है।

युवतिपरा नो भोक्तव्या त्वया मम संनिधावित निगदितस्तृष्णां योषां न मुंचसि किं शठ।
निगदितुमिति श्रोत्रोपांतं गतेव जरांगना पलितमिषतो न स्त्रीमन्यां यतः सहतेऽगना॥
२७८॥

जराका जराग्रस्त को संबोधन—जो उसके केश श्वेत बन गए हैं सो मानो उस बहाने जरा कानके समीप आकर ऐसा कहती है कि हे बुद्धिमान अब मैं तुम्हारी हितकारिणी जरास्त्री आ गई। मेरे सामने तुमको इस दुष्ट तृष्णाका सम्पर्क न करना चाहिये। अब तक तुमने इस दुष्ट तृष्णाका ही सम्पर्क किया जिससे जीवन भर दुःखी रहे। जगतके ये सब पदार्थ भिन्न हैं, उनसे तुम्हारा कोई सम्बंध नहीं है, फिर उनके विषयमें तृष्णा करके क्यों अपने आपको परेशान करते हो? अब इस तृष्णाका सम्पर्क न करना। इस तृष्णा की संगतिसे तुमने नाना प्रकारके दुःख उठा लिया है। जो भी दुःख हुए हैं वे सब तृष्णाके कारण हैं। जो लोग ऊँचे ओहदेदार बनकर अपने आपको बड़ा समझते हैं वे उस प्रतिष्ठामें कायम रहनेके कारण तृष्णासे निरन्तर व्याकुल बने रहते हैं। जो धनिक लोग धन संग्रह करके धनकी बात सोचकर मौज मानते हैं वे धन बढ़ानेके भावसे, और भी बढ़ाते रहनेके भावसे

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बड़े व्याकुल रहा करते हैं। तो इस तृष्णाकी संगतिसे तुमने नाना प्रकारके दुःख उठाया है, अब इस तृष्णाका संग क्यों नहीं छोड़ते ? स्त्री भी तो अपनी सौतको अपने सामने इस तरह पतिमें आसक्त कभी नहीं देख सकती ? मानो जरा कह रही है कि मैं आपकी एक भक्त स्त्री हूँ, हितकारिणी हूँ, आपको हितमार्गमें लगाने आयी हूँ, मैं अपनी इस सौत तृष्णाको आपमें आसक्त होते नहीं देख सकती। आप इस तृष्णाका सम्पर्क बिल्कुल त्याग दें और तृष्णारहित अपने सहज आत्मस्वभावकी दृष्टि कीजिए जिससे कि आपके आत्माका कल्याण हो। यह बुढ़ापा रूपी स्त्री श्वेत बालके रूपमें कानके निकट आकर इन विवेकी पुरुषोंको इस प्रकारसे समझा रही है। तात्पर्य यह है कि यह वृद्धावस्था सन्मार्गमें लगनेको प्रेरणा देती है। विवेकियों का कर्तव्य है कि वृद्धावस्था आने पर सर्व प्रकारके राग रंग तृष्णा छोड़कर एक सहज शुद्ध आत्मतत्त्वके चिन्तनमें अपना उपयोग लगायें।

वचनरचना जाताव्यक्ता मुखं वलिभिः श्रितं, नयनयुगलं ध्वांता घ्रातं श्रितं पलितं शिरः।
विघटितगती पादौ हस्तौ सवेपथुतां गतौ तदपि मनस्तृष्णा कष्टं व्युपैति न देहिनां ॥२७६॥

अर्धमृतकसम वृद्धपुरुषकी तृष्णाकी जवानी—वृद्धावस्थामें मनुष्योंकी बचनरचना अव्यक्त होने लगती है, क्योंकि सारे अंग जब शिथिल हो गये, ओंठ, जिह्वा आदिक शिथिल हो गए, मुखका चलना अब शिथिल हो गया तो ऐसी स्थितिमें वचनरचना सही कैसे निकल सकती है ? क्योंकि ये वचन अपने सही-सही स्थानका, जिह्वा आदिकका सही-सही स्पर्शन होने पर ही निकलते हैं। अब अंग शिथिल होनेसे जिह्वा आदिक सही काम नहीं कर सकते तो यह वचन रचना अव्यक्त होने लगती है। मुखपर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं, क्योंकि वृद्धावस्थामें खूनका बनना अतीव मंद हो जाता है और बने हुए खून मांस आदिक शिथिल होने लगते हैं। मुखपर झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। वृद्ध पुरुषके दोनों नेत्र मंद ज्योति वाले हो जाते हैं क्योंकि जिन नसावोंसे नेत्र ज्योतिका सम्बंध है वे नसाजाल भी शिथिल हो जाते हैं। उनसे अब खूनका बढ़ना बन्द हो जाता है, मंद हो जाता है, इस कारण वृद्ध पुरुषके दोनों नेत्र मंद ज्योति वाले हो जाते हैं। वृद्ध पुरुष के सिरके केश श्वेत हो जाते हैं जो साक्षात् यमराजके आनेकी सूचना दे रहे हैं। इस वृद्ध पुरुषके पैर टेढ़े-मेढ़े पड़ने लगते हैं पैर सही स्थान पर नहीं पड़ते हाथों में भी कँपकपी आने लगती है। हाथ अपने वशमें नहीं रह पाते, क्योंकि सारे अंग शिथिल हो गये हैं, तो हाथ कंपने लगते हैं। वृद्धावस्थामें ऐसे शरीरकी दुःखदायी स्थिति हो जाती है। सो अब अंगोंने जवाब दे दिया। आयु भी अब मिटने वाली है, किन्तु बड़े आश्चर्यकी बात

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है कि मनकी तृष्णा नहीं मिटती। वृद्ध पुरुषोंके प्राय: तृष्णा बनने लगती है, क्योंकि तृष्णा मनकी हवस है सो जब शरीर किसी वस्तुको भोगने लायक नहीं रहता और इसके इच्छा बनी रहती है तो उस समय भी तृष्णा बहुत बड़ी जग जाती है, ये सब अज्ञानकी चेष्टायें हैं। अज्ञान अवस्थामें जिसका सारा जीवन गुजरा, उसके बुढ़ापा आने पर भी तृष्णा आदिक व्याधियाँ उसके सामने बढ़ जाती हैं, किन्तु जो ज्ञानी पुरुष हैं वे वस्तुके यथार्थ स्वरूपको जानकर तृष्णाको दूर कर देते हैं, किन्तु यह संसार तो अज्ञानियोंसे भरा हुआ है। यहाँ जो पुरुष वृद्ध होते हैं उनके तृष्णा बढ़ती हैं, मिटती नहीं है। तो यह बड़े आश्चर्यकी बात है कि देह मिटने वाला है, आयु समाप्त होने वाली है, देह जीर्ण हो गया है, किन्तु यह तृष्णा जीर्ण नहीं होती, सो यह सब विडम्बना इस संसारमें जब तक शरीर मिलता है होती रहेगी। सो यह वृद्धावस्थाकी विडम्बना जिसको इष्ट नहीं है वह शरीररहित ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी उपासना करे!

सुखकरतनुस्पर्शां गौरीं करग्रहलालितां नयनदयितां वंशोद्भूतां शरीरबलप्रदां।
धृतसरलतां वृद्धो यष्टिं न पर्वविभूषितां त्यजति तरुणीं व्यक्त्वाप्यन्यां जरावनितासखीं ॥
२८०॥

वृद्ध पुरुषको स्त्रीका सहारा छूट कर लाठीका सहारा होना—वृद्धावस्थामें स्त्री भी साथ छोड़ देती है। जिस स्त्रीने वृद्धावस्था तक सुखकारी शरीरका स्पर्श दिया था। जो शरीरके स्पर्शसे सुख देने वाली थी, नेत्रोंको प्रिय थी, हस्तके ग्रहण करनेसे जो लालित हुई, प्रिय हुई और कुलीन भी हुई, शारीरिक बलको भी प्रदान करने के उपाय कर रही थी, जिसने अपने जीवनमें सरलता ही धारण की हो ऐसी भी परिग्रहीत स्त्री अर्थात् जिसके साथ धर्मविधि पूर्वक विवाह हुआ हो वह स्त्री भी इस पुरुषको छोड़ देती है मायने प्रीति नहीं करती, पर उससे पहले यह वृद्ध पुरुष भी उस ऐसी भामिनी को छोड़ देता है जिस स्त्रीने इसका जीवन भर लालन पालन किया, बड़े सुखसे उसको रखा और सदैव यह वासना रखी कि मेरेको चाहे दु.ख हो जाय पर यह स्त्री सुखसे रहे, ऐसी स्त्री को भी यह वृद्ध पुरुष छोड़ देता है अर्थात् अब स्त्रीका संग नहीं करता लेकिन अब इस पुरुषने लाठी रूपी स्त्रीका संग पकड़ा है याने वृद्ध होने पर यह पुरुष लाठीका सहारा लेकर चलता है, तो इसने उस स्त्रीका सहारा लेना तो छोड़ दिया और लाठीका सहारा लेना ग्रहण किया है। तो अब मानो उस वृद्धावस्थामें साथी का काम लाठी कर रही है याने वृद्धावस्थाका मित्र लाठी बनी है। जो लाठी अनेक वर्षोंसे

http://sahjanandvarnishastra.org/

विभूषित है, बाँसकी लाठी होती है, उत्तम बंशसे उत्पन्न हुई है, अब यही शरीरकी सहायक है जिसके ऊपर अच्छी मूँठ लगी हुई है, सीधी सादी है ऐसी यष्टि रूपी नवीन स्त्रीको अब यह वृद्ध पुरुष ग्रहण कर लेता है। पाणिग्रहीत स्त्रीकी तरह इस लाठी रूपी स्त्रीकी उपमा दी गई है। जैसे युवती सुखकारी शरीरके स्पर्शसे युक्त है तो यह लाठी भी कोमल स्पर्शसे युक्त है। वह युवती नेत्रोंको प्रिय है तो अब इसको यह लाठी नेत्रोंको प्रिय हो गई. वह स्त्री कुलीन है, उच्च कुलमें पैदा हुई है, तो यह लाठी भी उत्तम बाँससे उत्पन्न हुई है बाँसको बंश कहते हैं। उत्ताम बंशसे उत्पन हुआ है। तो यह लाठी भी उत्तम बंशसे उत्पन्न हुई है। जैसे वह स्त्री शरीरको सहायक थी शरीरका बल पैदा करने के उपाय बनाती थी तो यह लाठी भी इस वृद्ध पुरुषको शरीरकी सहायक बनती है। जैसे वह स्त्री सरल चित्त वाली थी वैसे हीं यह लाठी भी सरल है, सीधी है। वृद्धावस्था के चित्रणमें इस छंदमें यह बताया गया है कि इस वृद्ध पुरुषने स्त्रीको तो छोड़ दिया और अब लाठीको ग्रहण किया है।

त्यजसि न हते तृष्णायोषे जरांगनया नरं रमितवयुषं धिक्ते स्त्रीत्वं शठे त्रपयोज्झिते।
इति निगदिता कर्णाभ्यर्णे गतैः पलितैरियं तदपि न गता तृष्णा का वा नु मुंचति बल्लभां॥
२८१॥

वृद्धपुरुषसे प्यार करनेके हठमें तृष्णाकी निर्लज्जता—वृद्धावस्था बुढ़ापे के कारण श्वेत हुए ये केश रूपी सभ्य पुरुष हैं जो तृष्णारूपी स्त्रीको बार-बार धिक्कारते हैं। मानो यह बात बार-बार कहते हैं कि हे निर्लज्ज तृष्णा इस पुरुषको अब तू छोड़ दे। यह पुरुष अब तेरे कामका नहीं रहा. क्योंकि जो श्रेष्ठ स्त्रियाँ होती हैं वे अपने सामने अपनी सपत्नीका साम्राज्य नहीं देख सकतीं। यहाँ जरा और तृष्णा इन दो स्त्रियोंका जिक्र चला है। ये पुरुषकी दोनों पत्नी हैं। पूर्व पत्नी तृष्णा थी जो अब तक है। नवीन पत्नी जरा आयी हुई है तो कोई भी सौत अपने सामने दूसरी स्त्रीका वैभव साम्राज्य नहीं देख पाती। वह अपना ही चला बनानेको सोचती है। सो अब जरा कह रही है कि श्वेत केशोंके बहाने जब मैंने इस पुरुषसे प्रेम किया है तो हे तृष्णा तू अपना सम्बंध छोड़ दे। देख यह पुरुष जरा रूपी स्त्रीके फंदेमें पड़ चुका है उसे अब और सेवन करना तुझे धिक्कार है। श्वेत केश मानो उस तृष्णासे वार्ता कर रहे हैं, इस प्रकार मालूम पड़ता है, तो ये सफेद केश इस तृष्णाको बार-बार धिक्कारते हैं किन्तु यह तृष्णास्त्री इतनी बेशरम हो गई है और स्त्रीपनके कायदेसे इतना गिर गई है कि इतना धिक्कारे जानेके बाद यह

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

तृष्णा इस पुरुषको नहीं छोड़ती है। सो इस तृष्णाका यह पुरुष इतना प्यारा बन गया है अथवा इस पुरुषको यह तृष्णा इतनी प्यारी बन गई है कि ये सफेद केश मानो बार-बार धिक्कार रहे हैं कि अब तृष्णा और पुरुष का संग होना भला नहीं है, मगर न तृष्णा उस पुरुषको छोड़ती है और न यह पुरुष इस तृष्णाको छोड़ता है। इस छंदमें बुढ़ापेकी दयनीयता दिखाई गई है कि बूढ़ा होने पर भी और भोग भोगनेके अयोग्य होने पर भी यह वृद्ध पुरुष अब तृष्णाको छोड़ना नहीं चाह रहा है।

त्यजत विषयान् दुःखोत्पत्तौ पटूननिशं खलान्मजत विषयान् जन्मारातेर्निराशकृतो हितान्।
जरयति यतः कालः कायं निहंति च जीवितं वदितुमिति वा कर्णोपांते गतं पलितं जनाः ॥
२८२॥

श्वेतकेशोंका कर्णके पास आकर उपदेश—अथवा हे सज्जनों, सदा नाना प्रकारके दुःख देने वाले इन महान दुष्ट विषयोंका तो त्याग करो। मायने ये सफेद केश कानके पास आकर मानो बार-बार समझा रहे हैं कि हे विवेकी पुरुष इन दुष्ट विषयोंने जीवन-भर तुझे दुःख ही दिया है सो अब इन दुष्ट विषयोंका तो परित्याग ही करो। ये विषय जन्म-मरण के बढ़ाने वाले हैं अर्थात् जन्म दिलाते रहेंगे और मरण होते रहेंगे, पर जो अपना आत्मतत्त्व है वह विषय जन्म-मरणको नष्ट करने वाला है, परम हितकारी है। इस अंतस्तत्त्वका आलम्बन कर, क्योंकि समय व्यतीत होता जा रहा है और जीवन शरीरको क्षीण करता चला जा रहा है, ऐसी स्थितिमें अब आत्म-कल्याण शीघ्र कर लेना उचित है। यदि इस समय भी चूके तो ऐसे भवोंके क्लेश अनेक भवोंमें पावोगे। इन क्लेशोंसे यदि छूटना है तो शरीर रहित जो ज्ञानमात्र आत्मतत्त्व है उस रूप अपने आपको भावो। मैं अमूर्त शुद्ध ज्ञानमात्र हूँ, शरीरसे रहित हूँ, ऐसा अपने को ज्ञानमय अनुभव करो और इन दुष्ट विषय भोगोंका परित्याग करो।

हरति विषयान् दंडालंवे करोति गतिस्थिती स्खलयति पथि स्पष्टं नार्थं विलोकयितुं क्षमा।
परिभवकृताः सर्वाश्चेष्टास्तनोत्यनिवारिता उनृपमतिवद्देहं नृणां जरा परिजृंभते ॥२८३॥

जराकी कुन्टपमतिसे तुलना—पुरुषोंका बुढ़ापा खोटे राजाकी मतिकी तरह इस देहमें आकर अपना डेरा जमाता है और सारी खोटी चेष्टायें कराता है। जिस समय यह वृद्धावस्था मनुष्यके देहमें आकर बसती है उस समय उसकी सारी चेष्टायें खोटे राजाकी बुद्धिकी तरह हो जाया करती हैं। जैसे जिस तरह खोटे राजाकी बुद्धि विचारने योग्य बातोंको छोड़ देती है उसी प्रकार यह बुढ़ापेसे ग्रस्त पुरुष भी विषयोंको छोड़ देता है

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

याने इन्द्रिय भोग भोगनेकी सामर्थ्य नहीं रहती है इस कारण छोड़ देता है। यदि ज्ञान-बलसे छोड़ता तो उसका छोड़ना भला था किन्तु उसने मनसे नहीं छोड़ा। शारीरिक अशक्ति होनेसे इन्द्रिय विषय भोगोंको छोड़ना पड़ा है। २री बात जैसे खोटे राजाकी बुद्धि गति और स्थिति दोनों ही जगह है याने शान्ति और विरोधमें सभी जगह दण्ड नियमका आलम्बन करता है मायने दण्डका आलम्बन लेना होता है उसी प्रकार यह वृद्ध पुरुष भी गति और स्थितिमें याने चलने और बैठने आदिक सब अवस्थावोंमें दण्डका आलम्बन करता है। तीसरी बात–जिस प्रकार यह खोटे राजाकी बुद्धि पथसे भ्रष्ट हो जाती है याने न्याय-मार्गसे स्खलित हो जाती है और तब योग्य अयोग्यका विचार नहीं कर सकती। उसी प्रकार बुढ़ापेसे ग्रस्त मनुष्य भी पथ-भ्रष्ट हो जाता है याने रास्तेमें स्खलित हो जाता है। थोड़ो दूर चल पाता है फिर बैठ जाता है। रास्तेमें जहाँ पैर रखना चाहता है वहाँ पैर नहीं पड़ते हैं। चौथी बात–जिस प्रकार खोटे राजाकी बुद्धि अर्थको याने वास्तविक तत्त्वको स्पष्टतया नहीं देख सकती, उसी प्रकार यह वृद्ध पुरुष भी अर्थको याने पदार्थको स्पष्टतया नहीं देख सकता है। ५वीं बात–जैसे खोटे राजाकी बुद्धि समस्त परिभव याने तिरस्कारका फल देने वाली चेष्टावोंको करता है याने कुबुद्धि होनेसे स्वयंका तिरस्कार हो, ऐसी चेष्टावोंको करता है, दूसरोंका तिरस्कार हो ऐसी चेष्टावोंको करता है, उसी प्रकार यह वृद्ध पुरुष भी वैसी ही परिभव फल देने वाली चेष्टावोंको करता है अर्थात् इसका तिरस्कार भी हो सर्वत्र ऐसी चेष्टायें होती रहती हैं। तो यह वृद्धावस्था इस मनुष्य को खोटे राजाकी बुद्धिकी तरह परेशान किया करती है।

शिरसि निभृतं कृत्वा पादं प्रपातयति द्विजान् पिबति रुधिरं, मांसं सर्वं समत्ति शरीरिणां।
स्थपुटविषमं चर्मगानां दधाति शरीरिणां विचरति जरा संहाराय क्षिताविव राक्षसी ॥ २८४॥

जराकी कुपित राक्षसीसे तुलना—यह वृद्धावस्था क्रुद्ध हुई राक्षसीकी तरह चेष्टा करती है। जैसे पहली बात–इस लोकमें क्रुद्ध हुई राक्षसी पहले लोगोंके सिर पर पैर रखती है इसी प्रकार यह वृद्धावस्था भी पहले लोगोंके सिर पर पैर रखती है मायने उस पुरुषके समस्त केश श्वेत हो जाते हैं। तो वृद्धावस्थाने इस पुरुष पर पैर रखा इसका परिचय तो सफेद बालोंसे मिलता है। तो सफेद बालोंके बहाने इस वृद्धावस्थाने लोगोंके सिर पर पैर रखा। दूसरी बात–जैसे वह क्रुद्ध राक्षसी लोगोंके सिर पर पैर रखकर द्विजोंका (ब्राह्मणों का) मांस खून पीती है अर्थात् द्विजोंका (ब्राह्मणोंका) संहार करती है, ऐसी बात प्रसिद्धिमें

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

है, इसी प्रकार यह वृद्धावस्था इन द्विजोंको याने दाँतोंको गिरा देती है, और खूनको भी सुखा डालती है याने वृद्धावस्थामें दांत गिर जाते हैं और रुधिर, मांस आदिक भी क्षीण हो जाते हैं। तीसरी बात–जैसे वह क्रुद्ध राक्षसी जिस पर क्रुद्ध हुई है उसके मांसको खा जाती है, केवल हाड़ ही हाड़ छोड़ देती है, इसी प्रकार यह वृद्धावस्था भी मांसको जला देती है और जीर्ण-शीर्ण अवस्था करके केवल हाड़ ही हाड़ बचने देती है। चौथी बात–जैसे यह क्रुद्ध राक्षसी चर्मांगोंको तितर-बितर करके विसम कर देती है याने चमड़ी को भी लोच डालती है, उसी प्रकार यह वृद्धावस्था भी चर्मांगोंको विसम कर देती है मायने झुर्रीदार बना देती है। उसके सभी अंगोंमें चामकी झुर्रियाँ पड़ जाती हैं। इस तरह यह वृद्धावस्था क्रुद्ध राक्षसीकी तरह वृद्ध पुरुषोंको कष्टदायिनी होती है। ऐसी वृद्धावस्था जिन्हें न चाहिये उनका कर्तव्य है कि ऐसा प्रयोग करें कि जिससे शरीरका सम्बन्ध सदाके लिए छूट जाय, फिर बुढ़ापा आदिक रोग आ ही न सकें और वह उपाय है कि शरीर-रहित अमूर्त ज्ञानमात्र आत्मतत्त्वकी साधना करना।

भुवनसदन प्राणिग्रामप्रकंपविधायिनी निकुचिततनुर्भीमाकारा जराजरती रुषा।
निहितमनसं तृष्णानार्यां निरीक्ष्य नरं भृशं पलितमिषतो जातेर्ष्या वा करोति कचग्रहं॥ २८५॥

जराग्रस्त पुरुषपर तृष्णाका आक्रमण—जैसे कोई स्त्री अपनी सौतमें आलिंगन कर, देखकर, क्रुद्ध हुई स्वामीके केशोंको पकड़ लेती है याने सौतसे उसको ईर्ष्या है, तो उस सौतने यदि पतिका आलिंगन किया हो तो वह पति पर क्रुद्ध होकर पतिके केशोंको पकड़ लेती है और इस प्रकारके दुर्व्योहारसे समस्त कुटुम्बके देहमें वह कंपकंपी बना देती है। जब इस प्रकार कलहकी तीव्रता होती है तो कुटुम्बीजन देखकर भी कँप जाया करते हैं। भीतर यह भयंकर बुढ़ापा रूपी स्त्री तृष्णा रूपी भार्यामें पुरुषको अधिकाधिक फंसा हुआ देखकर श्वेत हुए केशोंके बहाने इसके केश पकड़ लेती है। जरा और तृष्णा इन दोनोंको स्त्रीका रूप दिया है। तो जब जरा यह देखती है कि मेरी तृष्णासौत पुरुषमें अधिक व्याप रही है, पुरुषका आलिंगन कर रही है और यह पुरुष भी उस तृष्णासौतमें फँसा हुआ है तो मानो इस जराने क्रुद्ध होकर उस पतिके केशोंको जकड़ डाला याने केश सफेद हो गए, यह ही उन केशोंका जकड़ना हुआ और इस प्रकारके बर्तावसे याने जब श्वेत केशके बहाने इस पुरुषको जराने जकड़ लिया तो समस्त संसाररूपी गृहके प्राणीसमुदायके देहमें घृणासे कंपकंपी बना देता है याने जराने उस पुरुषको श्वेत केशके रूपमें 'ड़जक उनकी हालत तो

http://sahjanandvarnishastra.org/

शिथिल हुई, तो अन्य प्राणी भी उस शिथिल देहको देखकर घृणा करने लगते हैं, और उस घृणामें देह कंप जाता है, इसी प्रकार इस बुढ़ापेके प्रसंगसे इस वृद्ध पुरुषको कष्ट तो होता ही है मगर इसके साथ अन्य प्राणिसमुदाय घृणा करने लगते हैं। ऐसी शक्ल सूरत हो जाती है बुढ़ापेमें कि कोई बच्चा अचानक देख ले तो डर जाय। ऐसी इस वृद्धावस्थाकी कठिन स्थितियाँ हैं। तो इन स्थितियोंसे छूटनेका उपाय केवल ज्ञानानन्द स्वभाव अंतस्तत्त्वकी आराधना रखना है।

विमदमृषिवच्छ्रीकंठं वा तादांकितविग्रहं शिशिरकरवद्ध वक्त्रं वेशं विरूप विलोचनं।
रविमिवतमोमुक्तं दंडाश्रितं च यमं यथा वृषमपि बिना मर्त्यं निंद्या करोतितरां जरा ॥२८६॥

वृद्धावस्थाकी देवतावोंसे होड़का मजाक—इस छंदमें अलकार रूपमें यह कहा गया है कि यह निन्द्यनीय जरा धर्म किए बिना ही मनुष्यसे देवताका स्वरूप बना देता है, यहाँ वृद्धावस्थाकी निन्दाके रूपमें, मजाकके रूपमें वृद्धावस्थाको देवताकी उपमा दी है, सो देवका स्वरूप कोई धर्मके प्रसाद से ही पा सकता है, मगर इस वृद्धावस्थाने धर्म तो कुछ किया नहीं और धर्मके ही बिना मनुष्योंको देवताका स्वरूप दे देता है। देखिये जैसे ऋषि विमद होते हैं इसी प्रकार यह जरा भी मनुष्योंको विमद बना देती है। विमदका अर्थ है घमंडरहित, मद न होना। तो ऋषि तो विमद होते ही हैं यानी घमंडरहित होते हैं और जराने मनुष्यको विमद किया मायने वीर्यरहित बना दिया, शक्तिहीन बना दिया। अब यह मनुष्य किस बात पर मद करे? दूसरी बात—जिस प्रकार श्रीकृष्ण गदंकित हैं मायने गदा अस्त्रसे चिन्हित हैं, जिनके गदा अस्त्र पाया जाय उन्हें श्रीकृष्ण कहते हैं। श्री कृष्णके गदा अस्त्र था। तो जैसे श्रीकृष्ण गदांकित हैं इसी प्रकार यह वृद्धावस्था मनुष्यको गदांकित कर देती है। यहाँ गदांकित का अर्थ है गदा मायने राग उससे अंकित मायने सहित कर देना। जब बुढ़ापा आता है तो शरीरमें अनेक तरह की व्याधियाँ आ जाया करती हैं। तो जराने वृद्ध पुरुषके शरीरको गदांकित कर दिया। तीसरी बात—जिस प्रकार महादेव विरूप नैत्रके धारक हैं इसी प्रकार यह जरा भी मनुष्य को विरूप नेत्र वाला कर देता है। महादेवके अर्थमें विरूप विलोचनका अर्थ है असमान तीन नेत्रोंका धारी होना, जैसी कि लोकमें प्रसिद्धि कर रखी है और जराके अर्थमें विरूप विलोचन कर देनेका मतलब है कि यह बुढ़ापा वृद्ध पुरुषके नेत्रोंको मंद ज्योति वाला कर देता है मायने कम दिखने लगता है अथवा दिखना बंद हो जाता है। चौथी बात—जैसे

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सूर्य तमोमुक्त है अर्थात् अंधकारसे रहित है, सूर्य जहाँ होता है वहाँ अंधकार कैसे रह सकता है ? तो सूर्य तमोमुक्त है तो यह जरा भी मनुष्यको तमोमुक्त बना देता है, यहाँ तमका अर्थ निद्रा है। वृद्धावस्था मनुष्य को निद्रारहित कर देती है याने वृद्धावस्थामें निद्रा नहीं आया करती है, ऐसा विचित्र देहको शिथिल कर देता है। ५ वीं बात—जिस प्रकार यमराज दण्ड अस्त्रका धारक है, वह दण्डाश्रित है, ऐसी प्रसिद्धि है कि यमराज दण्ड अस्त्रको लिए रहता है तो यह जरा भी मनुष्यको दण्डाश्रित कर देता है, यहाँ दण्डका अर्थ लाठी है, मायने मनुष्यको दंडके आश्रित कर देता है। अब वह वृद्ध पुरुष थोड़ा कुछ चल पाता है तो लाठीके सहारे चल पाता है। इस प्रकार इस छंदमें साहित्यिक अलंकारके ढ़गसे जरामें इस लोक प्रसिद्धि देवताओंकी तरह शब्दोंमें समानता बतायी गई है, जिसका अर्थ स्पष्ट यह है कि जरा मनुष्यको हर तरह से परेशान कर देता है ऐसे इस जरा रोगसे हटनेके लिए यह कर्तव्य है कि अपने आपमें अन्तः प्रकाशमान सहज परमात्मतत्त्वकी ही उपासना करें, उसकी ही शरण ग्रहण करें।

विगतदशनं शश्वल्लालातताकुलसृक्ककं स्खलति चरणाक्षेपं तुंडा परिस्फुटजल्पनं।
रहितकरणव्यक्तारंभं भृदूकृतमूर्धजं पुनरपि नरं पापा बालं करोतितरां जरा ।।२८७।।

वृद्धावस्थाकी बचपनसे तुलना—इस छंदमें वृद्धावस्थाका चित्रण शक्तिहीन शिशुके साथ किया गया है। मानो यह जरा मनुष्यको पुनः बालक बनाये दे रहा है। किस प्रकार ? पहली बात–जैसे बालक दाँतरहित होता है याने शिशुके दाँत नहीं होते उसी प्रकार यह जरासे ग्रस्त बुड्ढा आदमी भी दाँतरहित हो जाता है। फर्क इतना है कि बालकके दाँत न थे, दाँत प्रकट होंगे, इस वृद्ध के दाँत थे और अब दाँत गिर गए हैं, मगर दंतविहीन की तुलनामें यहाँ वृद्ध पुरुषको बालकके समान बना देने की बात कही गई है, दूसरी बात—जैसे बालकका मुख सदा राल, थूक से भरा रहता है, बालक शक्तिशाली नहीं होता है, अपने मलको डाट नहीं सकता, तो उसके मुखसे राल सदा बहती रहती है इसी प्रकार इस वृद्ध पुरुषका मुख राल और थूकसे भरा रहता है। यह भी वृद्धावस्थाके कारण शिथिल है तो अपने मुखके मलको डाट नहीं सकता, तो इसके भी मुखसे राल और थूक बहता रहता है। तीसरी बात—जिस प्रकार बालक पहले तो चल नहीं सकता, यदि चलने का मन करता है तो थोड़ी दूर जाकर वह स्खलित हो जाता है, गिर जाता है फिर चलनेको चित्त चाहता है। थोड़ा चलता है फिर गिर जाता है। तो जैसे बच्चा बार-बार गिर पड़ा करता है इसी प्रकार यह वृद्ध पुरुष भी पहले तो वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

चल नहीं सकता, पीछे गिरे तो उठना भी कठिन हो जाता। कदाचित् उठ जाय और चले भी तो वह थोड़ी दूर जाकर स्खलित होने लगता है, गिर भी पड़ता है। चौथी बात— जिस प्रकार बालक मुखसे स्पष्ट नहीं बोल पाता इसी प्रकार यह वृद्ध भी मुखसे स्पष्ट नहीं बोल सकता। जिह्वा आदिक स्थानों पर जिस विधिसे लगना चाहिये उस विधिसे शक्तिहीनताके कारण बालकके नहीं लग पाती। तो ऐसी शक्ति नष्ट हो जानेके कारण इस वृद्ध पुरुषके भी जिह्वा आदिकका स्पर्श सभी स्थानों पर नहीं हो पाता इस कारण बालक की तरह यह वृद्ध पुरुष भी स्पष्ट नहीं बोल सकता। ५वीं बात—जिस प्रकार बालककी इन्द्रिय प्रबल न होनेसे वह अच्छी तरह कार्य नहीं कर सकता उसी प्रकार इस वृद्ध पुरुषको इन्द्रिय भी प्रबल न होनेसे भली भाँति काम नहीं कर सकतीं। छठी बात—जैसे बालकके केश कोमल होते हैं वैसे ही इस वृद्ध पुरुषके केश भी कोमल हो जाते हैं। यों यह जरा मानो इस पुरुषको पुनः बालक बनाये दे रहा है याने बालकके समान शक्तिहीन वृद्ध पुरुष हो जाता है।

अहह नयने मिथ्यादृग्वत्सदीक्षणवर्जिते श्रवणयुगलं दुष्पुत्रो वा शृणोति न भाषितं।
स्खलति चरणद्वंद्वं मार्गे मदाकुललोकवद्वपुषि जरसा जीर्णे वर्णो व्यपैति कलत्रवत्॥२८८॥

वृद्ध पुरुषके नेत्र, कर्ण, पैर एवं रूपकी दशा—वृद्धावस्था आ जानेसे मनुष्यके नेत्र मिथ्यादृष्टिके समान सदीक्षणरहित हो जाते हैं। सदीक्षणके दो अर्थ हैं- एक तो सम्यग्दर्शन और दूसरा स्पष्ट दिखना। मिथ्यादृष्टि जीव सदीक्षणसे रहित है मायने सम्यक्त्वसे रहित है। तो वृद्धावस्था आनेसे इस मनुष्यके नेत्र सदीक्षणसे रहित हैं याने स्पष्ट दिखनेसे रहित हैं। सद् मायने स्पष्ट और ईक्षण मायने निरखना याने वृद्धावस्थामें यह पुरुष अब वस्तुवों को स्पष्ट नहीं देख पाता। मिथ्यादृष्टि जीव समीचीन तत्त्वोंका समीक्षण नहीं कर पाता मायने सही श्रद्धान नहीं कर पाता। वहाँ सद्का अर्थ है सही, ईक्षणका अर्थ है परिचय। तो मिथ्यादृष्टि जीव सत् तत्त्वोंका समीक्षण नहीं कर पाता तो बूढ़ेके नेत्र भी इन समागत पदार्थोंको अच्छी तरह नहीं देख पाते। वृद्धावस्था आने से ये कर्ण कुपुत्रके समान बात नहीं सुनते। जैसे कुपुत्र पिताकी बात नहीं सुनता, पिताकी आज्ञा नहीं सुनता इसी प्रकार वृद्धावस्थामें ये कान भी अब किसीकी बात नहीं सुन पा रहे याने कान बहिरे हो जाते हैं। वृद्धावस्थामें वृद्ध पुरुषके पैर मदिरापायी पुरुषकी तरह मार्गमें इधर-उधर भटकते रहते हैं। जैसे जिसने मदिरा पी रखी हो उसके पैर मार्गमें सही नहीं चल पाते, ऐसे ही इस वृद्ध पुरुषके पैर स्खलित होते हैं, सही नहीं चल पाते। चलनेमें लड़खड़ाने लगते

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हैं। वृद्धावस्थामें शरीरका रंग युवतीके रंगके समान छोड़कर दूर चला जाता है याने जैसे युवती पुरुष बूढ़ेको छोड़कर अन्य जगह चली जाती है इसी प्रकार इस शरीरका रंग भी बुड्ढेको छोड़कर दूर चला जाता है मायने अब उसके शरीरमें कान्ति भी नहीं रहती।

मुदितमनसो दृष्ट्वा रूपं यदीयमकृत्रिमं परवशधियः कामक्षिप्तैर्भवंति शिलीमुखैः।
धवलितमुखभ्रूमूर्धानं जरसा धरात्रयं झटिति मनुजं चांडालं जनीजनाः ॥२८९॥

स्त्रीका वृद्धपुरुषसे घृणाका व्यवहार—जब बुढ़ापा न आया था उसी पुरुषके अकृत्रिम याने प्राकृतिक रूपको देखकर जो स्त्रियाँ पहले हर्षितचित्त हो जाती थीं और काम-बाणोंसे बेधी जानेके कारण उस पुरुषके आधीन होने लगती थीं वे ही स्त्रियाँ बुढ़ापा आ जाने पर उस पुरुषके जरा से ग्रसित हुए फिद्द मुख और सफेद भौंह केश वाले कान्ति-रहित शरीरको देख लेती हैं तो वे ही स्त्रियाँ उसको चाण्डालकी तरह अस्पृष्य जानकर शीघ्र ही छोड़ देती हैं। यहाँ वृद्धावस्थाके पूर्व और वृद्धावस्थाके समयकी दशाका चित्रण किया है। यौवन अवस्थामें कान्ति अधिक थी। प्राकृतिक रूप निखर रहा था और स्त्रियाँ आधीन थीं, लेकिन वे ही स्त्रियाँ अब वृद्ध पुरुषको देखकर घृणा करने लगती हैं। अब वहाँ न वह रूप रहा, न कान्ति रही, न बल रहा और न स्त्रियोंकी कामवेदना शान्त हो सके ऐसा पुरुषमें पौरुष रहा। तो ऐसी दुर्दशामें स्त्रियाँ उसे अस्पृश्य समझती हैं, याने छूनेमें घृणा करती हैं। वृद्धावस्था ऐसी एक खोटी स्थिति है लेकिन जिन पुरुषोंके शरीर चल रहा है उनको बुढ़ापा आता ही है। बुढ़ापाके दुःखसे बचनेका उपाय यह ही है कि न शरीर मिलेगा न बुढ़ापा होगा। तो शरीर न मिले, आत्मा जैसा अपने सत्त्वके कारण जिस स्वरूपमें है उसी स्वरूपमें रहे तो इसका परम कल्याण है। फिर भी प्रकारका संकट नहीं है।

नयनयुगलं व्यक्तं रूपं विलोकितुमक्षमं पलितकलितो मूर्धा कंपी श्रुती श्रुतिवर्जिते।
वपुषि जरसाश्लिष्टे नष्टं विचेष्टितमुत्तमं मरणचकितो नांगी धत्ते तथापि तपो हितं॥
२९०॥

वृद्धावस्थाकी विडम्बना आनेपर भी मूर्खका हितकी ओर झुकावका अभाव—वृद्धावस्था आ जाने पर मनुष्यकी आँख रूपको स्पष्ट नहीं देख सकती, क्योंकि तब द्रव्येन्द्रियमें हीनता आ जाती है। आँखकी वह नसाजाल जिन रक्तवाहिनी नसावोंके संयोगसे आँखमें बल रहता है रूप देखनेका। जब वे नसाजाल ही कमजोर हो गए तो आँख फिर रूप कैसे देख सकती है? वृद्धावस्था में मनुष्यकी आँख स्पष्ट नहीं देख सकती। कैसी कैसी दुर्दशायें

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

बुढ़ापे में होती हैं ? उस दुर्दशाको तो यह जीव भोग लेता है, परन्तु अपने आत्मामें अंतः प्रकाशमान उस सहज परमात्मत्त्वको नहीं देखता, न उसका शरण गहता है। वृद्धावस्था में आँखोंकी हीनता हो गई, बाल सफेद हो गए। कोई बाल काले नहीं दिखते। सिर कँपने लगता है क्योंकि हड्डियाँ भी सब ढीली पड़ जाती हैं। नसाजालके बन्धन ढीले पड़ जाते हैं। मांस भी क्षीण हो जाता है। खून नहीं बढ़ता, ऐसी स्थितिमें इस सिर को कौन सम्हाले ? वह सिर कांपने लगता। वृद्धावस्थामें कान किसीकी बातको नहीं सुन पाते। बहिरे हो जाते हैं। इन्द्रियमें शैथल्य हो जाता है। जरा आते ही श्रेष्ठ काम करना छूट जाता है। वह अब क्या करे, शरीर ही नहीं उठ पा रहा है। वहाँ मरणके दिन निकट आने लगते हैं क्योंकि बुढ़ापाके बाद मरण ही तो निश्चित है। बुढ़ापाके बाद जवानी नहीं आती। बुढ़ापाके बाद बचपन नहीं आता। बुढ़ापाके बाद मरण होता है। मरण हुए बाद नया जीवन पायगा। जहाँ उस नये जीवनका बचपन रहेगा और बुढापेका अंतिम परिणाम मरण हो है, सो इस वृद्धावस्थामें मरण समीप आने लगता है, परन्तु यह मोही प्राणी ऐसा मूढ़ है कि यह अपने हितस्वरूप तपको नहीं करता। इन्द्रियको वश करे, मन की उड़ान खत्म करे और अपने यथार्थ ज्ञानमात्र स्वरूपको निरखे, यह तो हितकारी काम था, पर इसे छोड़कर संक्लेशमें ही पड़ा रहता है। और यदि तात्कालिक विशेष कष्ट नहीं है तो विषय भोगोंकी इच्छावोंमें अपने आपको उलझाये रहता है।

द्युतिगतिधृतिप्रज्ञालक्ष्मीपुरः सरयोषितः सितकचवलिव्या जान्मर्त्यं निरीक्ष्य जरांगनां।
प्रदधति रुषा तृष्णा नारी पुनर्न विनिर्गता त्यजति हि न वा स्त्री प्रेयांसं कृतागमप्यवतं ॥२६१॥

वृद्ध पुरुषसे कांति धृति बुद्धि आदिका पार्थक्य, किन्तु तृष्णाका प्यार—मनुष्यमें अनेकों ही शक्ति और श्रृंगार होते हैं। द्युति (कान्ति) अर्थात् शरीरपर एक विशिष्ट आभा आती। गति-प्रत्येक कार्योंमें बुद्धिका चलना, गमन करना, हाथ पैरोंसे भी चलना। धृति-धीरता आना, बड़े-बड़े संकटोंके आने पर भी अपनी सामर्थ्यको सम्हाले रहना, प्रज्ञा (बुद्धि) ज्ञानकी शक्ति होना, लक्ष्मी—धन सम्पत्ति होना, ऐसी मानो इस पुरुषके पास अनेकों स्त्रियाँ हैं, किन्तु इन सब सुनारियोंने जब यह देखा कि इस पुरुषपर जरा रूपी स्त्रीका आधिपत्य जम गया है, सिरके केश श्वेत हो गए, उससे यह परिचय बन गया कि अब इस पुरुषपर जराने अपना अधिकार कर लिया। तो अन्य स्त्रीका अधिकार देखकर ये सब स्त्रियाँ पराश्रित द्युति गति, धृति प्रज्ञा, लक्ष्मी आदिक देखकर उस वृद्ध पुरुषको

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़कर चली जाती हैं, लेकिन एक तृष्णा रूपी नारी नहीं छोड़ती। सो एक साहित्यिक समीक्षामें आचार्य कह रहे हैं कि देखो वह पुरुष यद्यपि अपराधी हो गया याने जरा रूपी स्त्रीने उस पर आधिपत्य जमाया और वह पुरुष भी जरामें तन्मय हो गया। इतने पर भी अपने प्यारेको यह तृष्णा स्त्री छोड़ नहीं सक रही। तात्पर्य यह है कि बुढ़ापेके आ जानेसे मनष्यकी कान्ति, धृति, बुद्धि आदिक शक्तियाँ तो घट जाती हैं परन्तु तृष्णा नहीं मिटती बल्कि बुढ़ापामें तृष्णा और बढ़ती ही चली जाती है। बुढ़ापेसे पहले जिस प्रकार की पुरुषकी स्थिति होती है, विरक्तिकी हो, तृष्णाकी हो, बुढ़ापेमें वही आगे बढ़ जाता है। जिन पुरुषोंने बचपनमें ज्ञान नहीं पाया, जवानीमें स्त्रियोंके आधीन रहा, अब बुढ़ापा आनेपर वह ज्ञानबलको कैसे सम्हालेगा? वह आत्माकी सुध लेनेमें समर्थ नहीं हो सकता यह बुढ़ापा तो सर्व दुःखोंकी खान है। उस बुढ़ापेसे बचनेके लिए जन्म जरा मरणरहित आत्मतत्त्वकी आराधना करना चाहिये।

परिणतिमतिस्पष्टां दृष्ट्वा तनोर्गुणनाशिनीं झटिति तु नराः संसाराब्धेः समुत्तरणोद्यताः।
जिनपतिमतं श्रित्वा पूतं विमुच्य परिग्रहं विदधति हितं कृत्यं सम्यक्तपश्चरणादिकं ॥ २९२॥

जराकी दुश्चेष्टासे परिचित विवेकियोंका सम्यक् तपश्चरणादि में उद्यम—इस परिच्छेदमें बुढ़ापेकी दुर्दशाका वर्णन किया गया है। उन समस्त दुर्दशावोंको जानकर जो बुद्धिमान लोग है जो शरीरकी रात-दिन नष्ट होने वाली परिणति जानने वाले हैं वे इस शरीरमें, संसारमें, भोगोंमें रमण नहीं करते, किन्तु संसार समुद्रसे पार होनेके लिए जिनेन्द्र देवका आश्रय लेते हैं। जो संसार सागरसे पार हो गए हैं उनकी उपासना कौन करेगा? जिनको संसारसे पार होने की इच्छा है। तो ये विवेकी पुरुष संसार सागरसे पार हो चुके सर्वज्ञ वीतराग भगवानका आश्रय लेते हैं, उनके परम पवित्र आगमका आश्रय लेते हैं। उन्होंने जो उपदेश किया वह उपदेश किन उपायोंसे भरा हुआ है, जिन उपायोंसे चलकर स्वयं संसार सागरसे पार होकर जिनेन्द्र भगवान हुए हैं। तो इस संसारजालसे पार होने का उपाय इस आगममें लिखा है। यदि कर्मोंका वर्णन आता है तो उसका अर्थ यह है कि संसारजालका, विकारभावका, जन्म-मरणका कारण यह आयुकर्मका उदय है। यदि प्रथमानुयोगका वर्णन है तो उसमें यह दर्शाया गया है कि ऐसे उपायोंसे चलकर महापुरुषोंने संसार सागरसे पार होकर मोक्ष प्राप्त किया। द्रव्यानुयोगके वर्णनमें शुद्ध द्रव्यकी दृष्टि करायी जाती है। जिस शुद्ध आत्मद्रव्यका आश्रय करनेसे कर्मबंधन ढीले हो जाते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कट जाते हैं। तो आगममें नाना विधियोंसे संसारसे मुक्ति पानेका ही उपाय बताया है। सो विवेकीजन प्रभुके बताये हुए आगमका आश्रय लेते हैं और समस्त परिग्रहोंसे रहित होकर, सांसारिक ममतावोंसे दूर होकर श्रेष्ठ तपश्चरण आदिक हित कार्योंमें लगते हैं। इस बुढ़ापाके परिच्छेदमें सर्व प्रकार से दुर्दशा जानकर यह भावना लेना चाहिये कि ऐसा उपाय करें कि शरीर ही न मिले, फिर बुढ़ापा ही कहाँ से आयगा ? सारे संकट खतम हो जायेंगे। एक आत्माकी धुनके साथ आत्माके स्वरूपमें मग्न होने में ही संतुष्ट रहे।

१२वां—मृत्यु निरूपण

संसारे भ्रमतां पुरार्जितवशाद् दुःखं सुखं वाश्नुतां चित्रं जीपितमंगिनां स्वपरतः संपद्यमा-नापदां। दंतांतः पतितं मनोहररसं कालेन पक्वं फलं स्वास्यत्यत्र कियच्चिरं तनुमतस्ती-वृक्षुधार्चवितं ॥२९३॥

जन्म लेनेवालोंके मरणकी अवश्यंभाविता—जैसे तीव्र क्षुधा किसी पुरुषको लगी है और उसके मुखमें पका हुआ फल रखा है तो वह फल कितनी देर उस मुखमें रह सकेगा ? तीव्र क्षुधा लगी है तो वह पुरुष तो उस फलको तत्काल ही चबायगा, वह ठहर नहीं सकता, इसी प्रकार इस संसारमें जीवनकी म्याद रहती है। जहाँ म्यादसे आयु पक गई फिर उस आयुके बचाने वाला कौन है ? ये जीव संसारमें पूर्वजन्ममें उपार्जित पाप-पुण्यके द्वारा सुख-दुःखको भोग रहे हैं। जितने भी सुख या दुःख मिलते हैं वह पूर्व उपार्जित कर्मोंके उदयका फल है। कितने ही धर्मात्मा पुरुष बड़ी व्यथावोंसे ग्रस्त देखे जाते हैं। जिन्होंने जीवनमें कभी खोटे भाव नहीं किया, धर्मरूप परिणाम रखा, दया, दान संयमकी प्रवृत्ति रखी फिर भी तीव्र रोगादिकसे व्याकुल देखे जाते हैं। तो सभी कहते हैं कि इस बेचारेने इस जन्ममें कोई अन्याय या पाप नहीं किया। तो पहले करोड़ों भवोंके कमाये हुए कर्म इस समय भी मौजूद हैं, उनका उदय आता है, उसके अनुसार जीवको दुःख होता है, सुख भी होता है। पुण्यका उदय होने पर सुख बनता है तो ऐसे सुख-दुःख भोगने वाले और संसारमें परिभ्रमण करने वाले इन प्राणियोंका चित्र विचित्र जीवन कब तक टिक सकेगा ? जहाँ अपने आपकी ओरसे तथा दूसरेकी ओरसे अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ आती हैं, उन आपत्तियोंका सामना भी इन प्राणियोंको स्वयं करना पड़ता है। उनका यह विचित्र जीवन कब तक टिक सकेगा ? जैसे जिसको तीव्र क्षुधा लगी है और पका हुआ फल मुखमें आ गया तो वह क्यों गम खायगा ? वह तो जल्दी ही उस फलको चबा डालेगा,

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

ऐसे ही समयकी मर्यादासे यह जीवन निश्चित है, इतने पर भी बीचमें अनेक प्रकारकी आपत्तियाँ घटनायें आ जाती हैं, इन घटनावोंमें यह जीवन नहीं रह पाता। तो यह जीवन अवश्य ही किसी न किसी दिन समाप्त हो ही जाता है। तो आज जो जीवन मिला है, शरीर मिला है यह कभी समाप्त होगा, अग्निमें जला दिया जायगा। उसका सदैव संयोग नहीं रह सकता। ऐसी जीवनकी विनश्वरता जानकर कर्त्तव्य यह है कि जितना जीवन शेष है उस शेष जीवनमें धार्मिक भाव करें, अपने आत्मतत्त्वकी सम्हाल बनायें। जो इस दुर्लभ जीवनमें आत्मतत्वकी सम्हाल बना लेगा उसका भविष्य उज्ज्वल रहेगा। इसलिए विवेकी पुरुषका यही कर्तव्य है कि जब तक मृत्यु नहीं आती तब तक शीघ्र ही अपने आत्माकी सम्हाल करलें।

नित्यं व्याधिशताकुलस्य विधिना संक्षिप्यमाणायुषो नाश्चर्यं भववर्तिनः श्रमवतो यज्जायते पंचता। किं नामाद्भुतमत्र काननतरोरत्याकुलात्पक्षिभिर्यत्प्रोद्यत्पवनप्रतापनिहतं पक्वं फलं भ्रश्यति ॥२९४॥

प्राणविनाशमें अनाश्चर्य—यह जीवन, यह शरीर सदा सैकड़ों, हजारों व्याधियोंसे आकुलित बना है और फिर आयुकर्मकी स्थिति निश्चित है। इसके बावजूद यह मनुष्य अधिक परिश्रम करता है और परिश्रमसे अधिक थक जाता है। सो यह जीव यदि मर जाता है, इसके प्राण निश्चेष्ट होकर निकल जाते हैं तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात है? जैसे देखिये जो वृक्ष पक्षियोंसे सदा व्याप्त है याने जिस वृक्षपर पक्षियोंकी बड़ी संख्या रहती है और फिर वह वृक्ष आँधीसे कंप गया हो याने आँधी बड़ी तेज चल गई जिससे वह वृक्ष बहुत हिल गया है। अब यदि उस वृक्षका पका फल गिर जाय। डालीसे अलग हो जाय, पृथ्वी पर पड़ जाय तो इसमें आश्चर्यका क्या बात है? एक तो उस वृक्षका फल पक गया, दूसरे उस वृक्षपर अनेकों पक्षी मंडरा रहे हैं सो डालियाँ हिलती रहती हैं। तीसरी बात—तेज आँधी चल गई है, इतने पर भी फल यदि नहीं गिरता तो इसमें तो आश्चर्य करना चाहिये। यदि फल गिर गया तो इसमें आश्चर्यकी क्या बात? ऐसे ही एक तो यह प्राणी आयुकर्मके निश्चित समयपर आ गया है, सो इसे तो स्वयं ही मर जाना चाहिये, फिर दूसरे इस मनुष्यके पीछे सैकड़ों अपने आप अथवा किसी परवस्तुके सम्बन्ध से नाना घटनायें दुःख आदिक लगे रहते हैं, हजारों लाखों व्याधियाँ लगी रहती हैं, इसपर भी यदि वह शीघ्र नहीं मरता तो इसपर आश्चर्य करना चाहिये। पर मर जानेमें तो कोई आश्चर्यकी बात ही नहीं है। जो जन्मा है वह नियमसे मरेगा। मरणके बाद जैसे कर्म

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

किया है उसके अनुसार फल पायगा। यदि नसम्हाल पाया, कर्म खोटे हो गए तो असंज्ञी जैसे अनेक भव पड़े हैं, कोईसा भी भव पायगा। फिर क्या करेगा ? इससे बड़ा श्रेष्ठ भव मिला है, श्रेष्ठ शासन मिला हैं, संगति भी अच्छी प्राप्त है, अपने मनको सही रखना और आत्माके स्वरूपमें उपयोग लगाना, यहाँ ही रहकर तृप्त होना यह आदत बना लेना चाहिये, अन्यथा इस जीवका बहुत बड़ा अकल्याण होगा।

निर्धूतान्य बलोऽविर्चित्यमहिमा प्रध्वस्तदुर्गक्रियो विश्वव्यापिगतिः कृपाविरहितो दुर्बोध-मंत्रः शठः। शस्त्रास्त्रोदकपावकारिपवनव्याध्यादिनानायुधो गर्भादावपि हंति जन्तुमखिलं दुर्वारवीर्यो यमः ॥२९५॥

यमकी बलवत्ता क्रूरता व दुर्बोधता—यह यम बड़ा बलवान है। यमके मायने आयुका क्षय। वास्तवमें कोई स्वतन्त्र ऐसा देवता नहीं है कि जो लोगोंके प्राण निकालता फिरे। यहाँ तो सब ओटोमेटिक निमित्त नैमित्तिक योगसे चल रहा है। जीव जैसे भाव करता है वैसे कर्म बाँधता है और उस प्रकारके कर्मके उदयपर उसकी स्थिति बनने लगती है। तो जो आयुकर्म बंधा उस आयुकर्मका क्षय हो जाय, चाहे अपना समय पाकर क्षय हो जाय या व्याधि शस्त्र आदिकके घात आदिकसे आयु बीचमें ही छिद जाय तो बाकी बचे निषेक एक ही समयमें सब खिर जायें इसीको कहते हैं मरण। इसीको ही यम शब्दसे कहा गया है, यह यम बड़ा ही बलवान है। इसके सामने बड़े-बड़े योद्धावोंके दाँत भी खट्टे हो जाते हैं। बड़े शूरवीर हैं, योद्धा हैं, वे भी चाहें कि मरणसे बच जायें तो नहीं बच पाते। इसकी बड़ी अपार महिमा है। कोई किलोंमें, जंगलोंमें, दुर्गम स्थानों में चला जाय कि यहाँ यमराज नहीं आ सकता, परंतु यम तो सभी जगह पहुँचता है। उन जीवोंके साथ आयुकर्म बँधा ही तो है। उसका क्षय होते ही मरण हो जाता है। इस यमकी गति रोकेसे भी नहीं रुकती। जहाँ मन करता वहाँ ही यम बढ़ा चला जाता है। यह यम बड़ा ही निर्दय है। कोई हजारों लाखों मिन्नतें करे तो भी यमका वार नहीं हटता। सभी मनुष्य चाहते हैं कि मेरा जीवन नष्ट न हो और वे प्रभुकी कितनी ही भक्ति करें या इस यमको ही अपना सहाय समझकर बड़ी भक्ति करें कि तू मुझे मत मार तो भी वह नहीं मानता इसका मंत्र बड़ा ही दुर्बोध है, इस यमको कोई मना नहीं कर पाता। पशु, पक्षी, मनुष्य आदि कोई भी कभी भी मर सकता। यह यम जिस पर क्रुद्ध हो जाय उसको किसी न किसी बहाने मार ही गिराता। किसी पर शस्त्रका घात हो जाय, अस्त्र लग जाय, जलमें डूब जाय, शत्रु मार डाले या हवा से उड़ जाय, मानसिक चितावोंसे हार्ट फेल हो जाय, कोई कठिन रोग लग जाय, किसी न

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

किसी तीक्ष्ण हथियार से यह यम मार गिराता ही है। किसीको नहीं छोड़ता। अधिक क्या कहें, यह अपने शत्रुको गुप्तसे गुप्त स्थानमें भी मार डालता है। गर्भ एक बड़ा सुरक्षित स्थान है, जहाँ पर किसी की गति नही हो सकती, लेकिन यह गर्भमें ही मार डालता है। अनेक जीव पशु पक्षी मनुष्य गर्भमें ही मर जाया करते हैं। तो इस मृत्यु से कोई फायदा नही है और यह नियम है कि जो जन्मा है सो नियमसे मरेगा, ऐसा अपने जीवन को भंगुर जानकर, विनाशशील जानकर जब तक जीवन है तब तक आत्मज्ञान से, आत्म-श्रद्धानसे और आत्मस्वरूपमें रमण करने की धुन से अपने आपको पवित्र बनायें और सर्व संकटों से मुक्त होकर संसार समुद्र से पार हो जायें, इसी में बुद्धिमानी है।

प्राज्ञं मूर्खमनार्यमार्यमधनं द्रव्याधिपं दुःखितं सौख्योपेतमनासमामनिहतं धर्माथिनं पापिनं। व्यावृत्तं व्यसनादरादृ व्यसनिनं व्यासाकुलं दानिनं शिष्टं दुष्टमनर्यमर्यम खिलं लोकं निहंत्यंतकः ॥२९६॥

आयुक्षयसे सबके मरणकी निश्चितता—यह यम अर्थात् आयुक्षय इस संसारमें किसी को मित्र नही बना सकती। कोई पंडित सोचे कि मैं तो बुद्धिमान हूँ। मेरेको यम न आयगा, मेरा मरण न होगा, मेरेमें बुद्धिबल है, सो इसकी बात न चलेगी। चाहे पंडित हो, जब यम क्रुद्ध होता है मायने आयुका क्षय होता है तो उसे मरना ही पड़ता है। कोई सोचता हो कि अमुक पुरुष मूर्ख है, ऐसे मूर्खोंपर यमराज क्यों आयगा, सो भी बात नहीं है। मूर्ख हो वह भी आयु क्षय पर मरणको प्राप्त होता है। कोई सोचे कि अमुक पुरुष दुर्जन है, गुंडा प्रकृतिका है इसको यमराज कैसे सता सकेगा, सो भी बात नहीं है। दुर्जन हो वह भी मरणको प्राप्त होता है। कोई सोचे कि सज्जन पुरुष तो सबके उपकार के लिए होता है इसके मरनेकी जरूरत नहीं है, इसे तो यमराज छोड़ देगा सो यह भी बात नहीं है। सज्जन पुरुष भी आयुक्षय होने पर मरण को प्राप्त होता है। भाग्यवान हो वह भी यमके वशीभूत है। कोई यह न सोचे कि यह तो बड़ा भाग्यवान है, पुण्यवानका कौन बिगाड़ कर सकता है ? इसे यम ने सतायगा सो बात नहीं है। कोई गरीब हो, सुखी हो, दुःखी हो, किसी भी स्थिति में हो, सभीको आयुक्षय होने पर मरणको प्राप्त होना पड़ता है। कोई पुरुष स्वस्थ पहलवान हो और सोचे कि मेरेमें कोई रोग ही नहीं है, मैं पूर्ण स्वस्थ हूँ, मेरेको यम कैसे सता सकता है ? कोई रोग हो शरीरमें कोई खराबी हो तो मरूंगा, जब शरीर चंगा है तो मेरा मरण कैसे होगा—ऐसा सोचना व्यर्थ है, रोग रहित हो तो भी आयुक्षय होने पर मरणको प्राप्त हो जाता है। रोगी पुरुष तो सदैव

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

संदिग्ध रहा करता है। किसी भी समय उनका मरण हो जाता है, पुण्यवान जीव हो तो भी ऐसा पुण्य किसीके नहीं होता कि आयुका क्षय होनेको हो और वह मरण न करे, नियमसे सभीको मरना पड़ता है, पापी पुरुष हो वह भी मरता है, जो जीव जितेन्द्रिय है, जिसने इन्द्रिय पर विजय प्राप्त किया है उसके प्रति कोई सोचे कि यह तो संयमी पुरुष है, इसके मरनेका क्या अवसर ? सो भी बात नहीं है जितेन्द्रिय है उसका भी मरण होता है कोई जितेन्द्रिय नहीं है उसका भी मरण होता है। कोई दानी पुरुष हो और उसके प्रति कोई सोचे कि यह बहुत दान करता है, इससे तो लोगोंका बड़ा भला होता है, तो ऐसे पुरुषपर तो यम दया करेगा, मरण न होगा सो बात नहीं है। चाहे दानी हो वह भी कालक्षय होने पर मरणको प्राप्त होता है। लोभी पुरुष हो, दुष्ट हो, शत्रु हो वह भी मरणको प्राप्त होता है। कोई शिष्ट हो, मित्र हो वह भी मरणको प्राप्त होता है। संसारमें कोई भी जीव ऐसा नहीं है जिसको समय पर यम न निगल जाय। तो जो जन्मा है सो सबको नियमसे मरना ही पड़ता है। तो जब एक दिन मरना ही पड़ेगा, यहाँका कुछ समागम न रहेगा तो विवेकियोंको चाहिये कि वे धर्म ध्यानमें रहकर आत्मकल्याण करें।

देवाराधनमंत्रतंत्रहवनध्यान गृहेज्पाजपस्थान त्याग धराप्रवेशगमनब्रज्याद्विजार्चादिभिः। अत्युग्रेण यमेश्वरेण तनुमानगीकृतो भक्षितुं व्याघ्रेणेव बुभुक्षितेन गहने नो शक्यते रक्षितुं ॥२९७॥

देवराधनादि द्वारा भी मरणके टाले जानेकी अशक्यता—इस छंदमें कह रहे हैं कि जिस समय यमराज नाराज होता है, मनुष्य पर क्रोध करता है याने जब आयुका क्षय होता है तो वहाँ यम भूखे सिंहके सामने पड़े हुए हिरणके समान मनुष्यका जीवन किसी भी प्रकार रक्षित नहीं रह सकता। एक तो सिंह हिरणको वैसे ही मार डालता है, फिर वह हो खूब भूखा तो उस हिरणकी फिर कहाँ खैर है ? ऐसे ही जो जन्मा है तो सभी मरते ही हैं, फिर शरीरपर यम क्रुद्ध हो जाय मायने विशेष रोग हो जाय या कोई शत्रु उस पर शस्त्रपात करे, ऐसी कोई घटना हो जाय तो उसे बचानेको कौन समर्थ है ? जो जन्मा है वह नियमसे मरण करता ही है। चाहे उस समय वह मनुष्य बड़े-बड़े देवोंकी आराधना करे, देवताओंकी सिद्धि करे तो भी वह मरणसे बच नहीं सकता। कोई भी देव किसी जीवको मरनेसे नहीं बचा सकता। चाहे सैकड़ों मंत्रतंत्र कोई सिद्ध कर डाले, चाहे बड़े ध्यान पूजा जप-तप आदिकमें खूब मन लगा है फिर भी मरनेसे कोई बचा नहीं सकता। कोई शरीरमें रोग हो गया तो उसका उपचार औषधियोंके द्वारा तो हो सकता है, क्योंकि

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

निमित्त नैमित्तिक योग है और उस योगके नष्ट होनेसे असमयमें मरण न हो यह सम्भव हो सकता। पर आयुक्षय हो रहा हो या किसी भी स्थितिमें हो, कोई देवता या मंत्र तंत्र मरनेसे बचा ले, यह कभी नहीं हो सकता। जिन लोगों की ऐसी खोंटी श्रद्धा है कि देवता मुझे बचा लेंगे वे केवल कल्पना ही करते हैं। इससे सिद्धि नहीं है, जिसका मरण हो रहा जिस पर यम क्रुद्ध हो रहा उसे कोई नहीं बचा सकता। वह पुरुष चाहे अपना निवास स्थान छोड़कर धरतीमें प्रवेश कर जाय, बहुत नीचे स्थान बना ले, वहाँ रहने लगे या दूर देश में चला जाय तो भी वह मरणसे बच जाय, यह नहीं हो सकता। चाहे कोई पुरुष दीक्षा ले ले कि मैं घरको छोड़ दूँ, समुदायको छोड़ दूँ तो यह यम क्यों सतायगा, चाहे कोई ब्रह्मज्ञानीकी पूजा आदिक करे तिस पर भी यम क्रुद्ध होने पर उसे कहीं किसी तरह नहीं छोड़ सकता। तो जब जन्मा है तो मरण निश्चित है, ऐसा जाना तो विवेकियोंका कर्तव्य है कि रागद्वेष तजकर वे आत्म-चिन्तनकी तपस्यामें लग जायें।

प्रारब्धो ग्रसितुं यमेन तनुमान् दुर्वारवीर्येण यस्तं त्रातुं भुवने न कोऽपि सकले शक्तो नरो वा सुरः। नो चेद्देवनरेश्वर प्रभृतयः पृथ्व्यां सदा स्युर्जना विज्ञायेति करोति शुद्धधिषणो धर्मे मतिं शाश्वते ॥२६८॥

मरणकी सुनिश्चितता जानकर विवेकीजनोंकी धर्ममें वृत्ति—जिस पुरुषको यमराज ग्रसना चाहता है, जिसको यमके द्वारा ग्रसना प्रारम्भ हुआ है वह पुरुष और तो क्या कोई भी मनुष्य, कोई भी देव उसे बचा नहीं सकता। यदि इस छुद्र शक्तिधारी संसारी जीवमें मरणसे बचानेकी सामर्थ्य होती तो आज संसारमें कितने ही देव देवेन्द्र दृष्टिगोचर होते। पुराणोंमें कितने बड़े-बड़े पुण्याधिकारी पुरुषोंके चरित्र सुने हैं। यदि कोई मरणसे बचाने वाला होता या ये खुद अपनेको मरणसे बचा सकते होते तो वे दृष्टिगोचर होते हुए लोग कोई आज यहाँ दृष्टिगोचर नहीं हो रहे, सभी मरणको प्राप्त होते हैं। तो सभीको जब कभी न कभी मरण करना ही है, जिन्दा सदैव कोई नहीं रह सकता तो हे विद्वान पुरुषों! अपने आपके सम्बन्धमें भी तो सोचो, इस शरीरको अनिष्ट जानकर इन सांसारिक कार्यों को अनित्य समझकर सदा अविनाशी धर्ममें अपने चित्तको लगावो। धर्म है आत्माका शुद्ध चैतन्य-प्रतिभास। सो मात्र सबके ज्ञाता दृष्टा रहें। किसी भी पदार्थको न इष्ट समझें न अनिष्ट समझें। सर्व बाह्य हैं, अपनी परिणतिके अनुसार अपना परिणमन करते हैं।

चन्द्रादित्य पुरन्दरक्षितिधर श्रीकंठसीर्पादयो ये कीर्तिद्युतिकांतिधीधनबल प्रख्यात पुण्यो-दयाः। स्वेस्वे तेऽपि कृतांतदंतकलिताः काले व्रजंति क्षयं किं चान्येषु कथा सुचारुमतयो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

धर्मे मतिं कुर्वंतां ।।२९९।।

महाबलैश्वर्यादिके धारकोंका भी अवश्यंभावी मरण—इस संसारमें सबसे अधिक कान्ति वाले, कीर्ति वाले चंद्र-सूर्य आदिक हैं, जिनके सम्पदा बल पुण्य विशेष हैं। जैसे चन्द्र यह ज्योतिषी देवोंका इन्द्र है। इसके बड़ा वैभव है, सांसारिक सुख सम्पदा विशेष है। सूर्य प्रतीन्द्र है इसकी तो लोकमें देवताकी तरह मान्यता है। अनेक लोग तो जल ढालकर पूजा करते हैं। वैसे सम्पदा भी विशेष है। सांसारिक सुख देवेन्द्र भी जो स्वर्गों के बड़े इन्द्र हैं, बड़ी बुद्धि, सम्पत्ति, बलके धारी हैं महान पुण्य है। नरेन्द्र मुख्य राजा नारायण बलभद्र आदिक बड़े-बड़े पुरुष हुए, वे भी अपनी-अपनी आयुके अन्तमें यमकी दाढ़ के नीचे दबकर पिस जाते हैं, अर्थात् मरणको प्राप्त हो जाते हैं। तो जब ऐसी अद्‌भुत बल सम्पत्ति कान्ति कीर्तिके धारी मरण कर जाते हैं तो अन्य छोटे लोगोंकी तो कहानी ही क्या है? यांने सभी अवश्य ही मरेंगे। तो जब यहाँ मरण निश्चित है तो बुद्धिमान पुरुषोंको चाहिये कि वे सांसारिक भोगोंसे चित्तको हटाकर धर्ममें अपनी बुद्धिको दृढ़ करें। आत्मा स्वयं आनन्द स्वरूप है, ज्ञानमात्र है। यह केवल हो, पवित्र हो तो यह ज्ञाता ही रहता है और परम आल्हादका अनुभव करता रहता है। अपने स्वरूपको देखना यही धर्मका पालन है। स्वरूपमें मग्न होना यह ही धर्ममें स्थिर होना कहलाता है। सो विवेकीजन सांसारिक भोग लालसावोंको त्यागकर इस ही सहज आत्मस्वरूपमें अपने उपयोगको रमाकर निरन्तर सहज आनन्दका अनुभव किया करते हैं।

ये लोकेश शिरोमणिद्यु ति जलप्रक्षालितांघ्रिद्वया लोका लोकविलोकि केवल लसत्साम्राज्य लक्ष्मी-लक्ष्मी धराः। प्रक्षीणायुषि यांति तीर्थपतयस्तेऽप्यस्तदेहास्पदं तन्नान्यस्य कथं भवेद्‌-भवभृतः क्षीणायुषो जीवितं ।।३००।।

आयुक्षयसे सकल परमात्माके भी देहत्याग—इस लोकमें सबसे बड़े अरहंत भगवान हैं, जिन्होंने घातिया कर्मोंका नाशकर समस्त लोकालोकको एक साथ स्पष्ट जान लिया है। जो अनन्त ज्ञान, अनन्त दर्शन, अनन्त आनन्द और अनन्त शक्तिके स्वामी हैं, जिनके चरणकमल तीन लोकके ईशों द्वारा सदैव पूजे जाते हैं। अधोलोकमें भवनवासी, व्यन्तर देवोंके इन्द्र अरहंत परमेष्ठीकी पूजा किया करते हैं, मध्यलोकमें चक्रवर्ती बड़े-बड़े नरेन्द्र, सिंह (तिर्यञ्चोंका इन्द्र) ये नतमस्तक हो जाया करते हैं। ऊर्द्धलोकमें स्वर्गोंके इन्द्र जिनके चरण-कमलोंकी सेवा किया करते हैं, जिनकी सेवामें सदैव स्वर्गोंके इन्द्र रहते हैं, ये अरहंत परमेष्ठी अतीन्द्रिय असहाय ज्ञान वाले समस्त पदार्थोंके ज्ञाता हैं, जिनके समवशरण आदिक

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

३४ अतिशय आश्चर्यकारी वस्तुवोंको धारण करने वाले हैं। बड़ा अतिशय है, ऐसे अरहंत भगवान भी जब उनके आयु कर्मका अन्त होता है तो शरीरका परित्याग कर मोक्षलाभ करते हैं। मोक्ष जाना भी आयुका क्षय ही तो है। उसे पंडित पंडित-मरण कहते हैं। तो ऐसे बड़े सकल परमात्मा भी मरणको प्राप्त हुए, परम निर्वाणको प्राप्त हुए याने आयुके अन्तमें उन्हें भी शरीर छोड़ना पड़ता है तब अल्प आयुके धारक ऐसे सामान्य पुरुषोंकी तो कथा ही क्या कही जाय। क्या उन्हें यम छोड़ देगा? नियमसे उन्हें मरना पड़ेगा। संसारकी ऐसी स्थिति जानकर बुद्धिमान पुरुषोंका कर्तव्य है कि वे सांसारिक भोग सम्पदा यश कीर्ति आदिककी ओर न बढ़कर अपने आत्मस्वरूपकी ओर बढ़ें और और अपने स्वरूपमें रमण कर शान्त हों।

द्वात्रिंशन्मुकुटावतं सितशिरोभूभृत्सहस्त्रार्चिता: षट्खंडक्षितिमंडना नृपतय: साम्राज्यलक्ष्मी-धरा:। नीतायेन विनाशमत्र विधिना सोऽन्यान् विमुंचेत्कथं कल्पांतश्वसनो गिरींश्चलयति स्थैर्यं तृणानां कुत: ॥३०१॥

आयुक्षयसे चक्रवर्त्यादिकोंका भी मरण—इस लोकमें मनुष्योंमें, राज्यधिकारियोंमें सबसे महान होता है चक्रवर्ती। उस चक्रवर्तीको सदा ३२ हजार मुकुटबद्ध राजा सेवा किया करते हैं। ये ३२ हजार राजा तो खास राजा हैं। वहाँ छोटे-छोटे राजा भी अनेक होते हैं। सभी के द्वारा जिनकी सेवा होती है। जिन चक्रवर्तियोंकी आज्ञाका पालन करनेके लिए ये सभी राजा तत्पर रहते हैं। चाहे चक्रवर्ती कभी अयोग्य भी आज्ञा दे तो उसके भी पालनके लिए तत्पर रहा करते हैं। तो योग्य अयोग्य समस्त अज्ञावोंका राजागण पालन करते हैं। चक्रवर्तीका साम्राज्य आर्यखण्ड और अनार्यखण्ड छहों खण्डके निवासियोंपर रहता है अर्थात् चक्रवर्ती छह खण्डके अधिपति होते हैं। जो चक्रके अधिपति हैं, जिनको अनेक आयुध सिद्ध होते हैं. जिनमें एक चक्र नामका भी आयुध है। जिसपर यह आयुध चला दिया, चक्र चला दिया उसके प्राण नहीं बच सकते। हाँ यद्यपि वह देवोपुनीत होनेके कारण उस चक्रमें इतनी विशेषता है कि यदि वह चक्री अपने बंधुवोंपर वह चक्र चलाये तो उनपर न चलेगा, बल्कि उन बंधुवोंकी प्रदक्षिणा देकर वापिस आ जायगा, पर अन्य सभी तो उस चक्रके ग्रास बन जाते हैं। जिनमें ऐसा अद्भुत बल वैभव है उन चक्रवर्तियों को भी जब यह यम नहीं छोड़ता, उन्हें भी अपने बलसे पछार मारता है तो अन्य सामान्यजनोंकी तो कथा ही क्या है? भला कल्पांतकालमें चलने वाला वायु याने जब इस कल्पका अन्त होगा मायने अवसर्पिणी कालका अन्तिम काल छठा काल जब वह

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

पूर्ण होगा तो प्रलय हुआ करता है। उस प्रलयमें ७ प्रकारकी तीव्र वर्षायें होती हैं, उनमें एक वायु भी है। जब प्रलयके समयमें तीव्र वायु चल रही हो तो उस वायुसे बड़े-बड़े पहाड़ तक हिल जाया करते हैं, तो क्या उस वायुसे तृण नहीं हिल सकता? वह तो हिलेगा, ऐसे ही जब चक्रवर्तियों तकको यह यमराज पछार डालता है तो क्या सामान्य लोगोंको न पछारेगा? अर्थात् जो जन्मा है उन सभीका मरण होगा।

यत्रादित्यशशांकमारुतघना नो संति संव्यत्र ते देशा यत्र न मृत्युरंजनो नो सोऽस्ति देशः क्वचित्। सम्यग्दर्शनबोधवृत्त जनितां मुक्त्वा विमुक्तिक्षितिं संचित्येति विचक्षणाः पुरु तपः कुर्वंतु तामीप्सवः ॥३०२॥

मात्र मोक्षदेशमें ही यमका अप्रवेश—संसारमें ऐसे देश तो मिलेंगे कि जहाँ सूर्य न पहुँचे, चन्द्र न पहुँचे, हवा न जा सके, पानी न हो, ऐसे स्थान तो मिल जायेंगे परन्तु केवल एक मोक्ष देशको छोड़कर कोई देश ऐसा नहीं है जहाँ यमराजका प्रवेश न होता हो। यहाँ मोक्ष देशसे मतलब समस्त कर्मोंसे मुक्त हुआ जीव कहा गया है। मुक्त जीव जिनके कर्म ही नहीं हैं, शरीर ही नहीं है, आयु ही नहीं है तो उनके क्षयका क्या प्रसंग? वे सदा काल अपने इस अनन्त आनन्दमयी स्थितिमें रहेंगे, केवल इस एकाकी अशुद्ध परिणतिमें रहेंगे, पर उनको छोड़कर बाकी सभी जीवोंको मरण करना पड़ता है। उनको मोक्ष कैसे प्राप्त हुआ, उसका उपाय है सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्रका एकत्व होना। जिन जीवोंने अपने आत्मस्वरूपका विश्वास किया और जो सहज अपने ही सत्त्वके कारण आत्माका स्वरूप है, उस स्वरूप रूप अपनेको माना, जाना और ऐसा ही ज्ञाता द्रष्टा रहनेका पौरुष किया, आत्मज्ञानी, ध्यानी बने, अन्तर्मग्न हुए, उन पुरुषोंने कर्मोंको काटकर मोक्षअवस्था प्राप्त की। ऐसे जीव जहाँ रहते हैं उसे मोक्ष देश कहते हैं। भले ही उस सिद्धालयमें निगोदिया जीव भी रह रहें, उनका जन्म-मरण हो रहा एक श्वांसमें १८ बार। लेकिन वे मोक्ष देश वाले नहीं कहलाते। जैसे कोई भारतवासी एक आध महीनेको पासपोर्ट लेकर अमेरिका चला जाय तो वह अमेरिकावासी न कहलायगा। ऐसे ही मोक्षदेशवासीसे मतलब है—जिनको मुक्ति हुई उन पर यमराजका वश नहीं चलता, बाकी सभी पर यमराजका वश चलता है। सभी जीव मृत्युसे ग्रसे जाते हैं। तो जो लोग मोक्षदेशको पाना चाहते हैं याने यमके वारसे बचना चाहते हैं उनका कर्तव्य है कि सम्यग्दर्शन आदिक धारण करके वे महान तपश्चरणको करें।

मोक्षदेशवासी सिद्ध प्रभुका परिचय—सिद्ध मुक्तके मायने यह है कि जैसा आत्माका

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

सहज स्वरूप है वैसा ही रह जाना। जैसे अनेक पदार्थ हैं, परमाणु परमाणु हैं, धर्मद्रव्य अधर्मद्रव्य हैं, धर्म-अधर्म, आकाश-काल ये द्रव्य तो सदा एकाकी ही हैं, निर्लेप हैं, इनका किसी दूसरेके साथ लेप भी नहीं है। हाँ जीव और अणु पुद्गल ये विभागी बनते हैं, ये संयोगी बनते हैं। कितना ही संयोग हो पर सत्ता इन सबकी न्यारी-न्यारी ही है। तो मेरा सत्त्व जो मेरेमें है उस ही सत्त्वसे देखा जाय तो मैं अपने एकत्वस्वरूपमें रहता हूँ। इस एकत्वस्वरूप को देखें तो इसकी आराधनाके प्रसादसे यही एकत्वस्वरूप प्रकट व्यक्त हो जायगा। इसी को सिद्ध अवस्था कहते हैं। संसार की किसी भी स्थितिमें इस जीवको चैन नहीं है। सदा सभी स्थितियोंमें यह मलिन रहता है। भले ही कुछ लोगोंके द्वारा कोई सम्पत्तिवान देखे जाने पर भला कहलाये, यह बड़ा पुण्यवान है, पवित्र है, योग्य है, मगर जब तक कर्मका सम्बंध है तब तक क्या पवित्रता? थोड़े समयक कल्पित सुख मिला हुआ है। कुछ ही समय बाद इसका मरण होगा। वह काल्पनिक सुख सब खतम हो जायगा। संसारकी किसी भी स्थितिमें चैन नहीं है, इसलिए संसारकी कुछ भी स्थिति चाहिए नहीं। मेरे को तो केवल मेरा आत्माराम चाहिए। मेरी दृष्टिमें केवल मेरा यह चैतन्य स्वरूप परमात्मतत्त्व दृष्टि में रहे। मेरे ज्ञानमें वह ज्ञानस्वरूप ही बसा रहे। यह ही ज्ञानस्वरूप मेरा ज्ञेय बने। ज्ञान, ज्ञाता, ज्ञय एक रूप रहें। अपने आपमें ही अपना प्रकाश पाता हुआ सहज आनन्दमय रहूँ। यही स्थिति वास्तविक स्थिति है। कल्याणकारी स्थिति है। इस सिद्ध अवस्था की स्थितिको छोड़कर अन्य कुछ भी न चाहिए, ऐसा दृढ़ निर्णय होना ही चाहिए सम्यग्दृष्टिके ऐसा दृढ़ निर्णय रहता ही है कि मेरा कल्याण करने वाला केवल एक सिद्ध परिणमन ही है। सो ऐसे एकाकीपने की भावना रखें और सम्यग्दर्शन आदिक रत्नमय सहित महान तपश्चरणको करें और मृत्युके संकटसे छूटें।

येषां स्त्रीस्तनचक्रवाक युगले पीतांशुराजत्तटे निर्यत्कौस्तुभरत्नरश्मिसलिले आस्यांबुजभ्राजिते। श्री वक्षः कमलाकरे गतभया क्रीडां चकरापरां श्रीहि श्रीहरयोऽपि ते मृतमिताः कुत्रापरेषां स्थितिः ॥३०३॥

लक्ष्मीपति श्रीहरिका भी मरण—स्त्रियोंके स्तन रूपी चक्रवाकोंसे सहित और पीताम्बर रूपी मनोहर तटसे भूषित, कौस्तुभमणिकी छटकती हुई किरण रूपी जलसे व्याप्त मुख रूपी कमलसे अलंकृत जिसके वक्षस्थलरूपी विशाल तालाबमें साक्षात् लक्ष्मीने क्रीड़ाकी ऐसे श्री कृष्ण महाराज सरीखे महापुरुष भी कालके गलमें फंस गए तब फिर अन्य मनुष्य सदा काल कैसे जीवित रह सकते हैं? श्रीकृष्ण नारायण हुए और अपने

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

समयमें इनकी बड़ी ख्याति थी। नारायण और बलभद्र ये दोनो सगे भाई होते हैं और प्रायः कर बलभद्रका ऐसा पुण्य प्रताप होता है कि नारायण ही बलभद्रकी सेवा करता है और उसमें प्रमखता बलभद्र की होती है। जैसे श्रीराम बलभद्र थे और लक्ष्मण नारायण थे। वहाँ श्रीराम की ही प्रमुखता थी। यहाँ बलदेव बलभद्र थे और श्री कृष्ण नारायण थे, यहाँ श्रीकृष्ण नारायण की प्रधानता थी। तो इतने बड़े पुण्यशाली श्री कृष्ण नारायण जब ये भी कालके गालसे न बच सके इनकी भी मृत्यु हुई तो अन्य जीवोंकी कहानी ही क्या है? श्री कृष्ण जेलमें तो उत्पन्न हुए, जिससे यह प्रसिद्धि बनी कि जिनके जन्मका कोई गाने वाला न था और उनका मरण जंगलमें जरत कुमारके वाणोंसे हुआ जिससे यह प्रसिद्धि हुई कि मरण समय अन्य कोई रोने वाला न था। जिनका इतना पुण्य प्रताप कि जीवनमें लोग उन्हें भगवानकी तरह मानते थे, जब वे भी इस तरह जगमें न रहे तब फिर अन्य पुरुषोंकी तो बात ही क्या है? मतलब यह है कि जिनका जन्म हुआ है उनका मरण अवश्यभयांवी है, इसलिए जीवनकी लालसा न करना, किन्तु जीवनके क्षणोंमें शुद्ध आत्मद्रव्यके तत्त्वकी दृष्टि करके वास्तविक तपश्चरण करना।

भोक्ता यत्र वितृप्तिरंत कविभुर्भोज्याः समस्तांगिनः कालेशः परिवेषकोऽश्रमतनुर्ग्रासा विसंत्यक्रमैः। वक्त्रे तस्य निशातदंतकलिते तत्र स्थितिः कीदृशी जीवानामिति मृत्यु भीतमनसो जैनं तपः कुर्वते ॥३०४॥

मृत्युभीतमनस्क जनोंका कर्तव्य परमार्थतपश्चरण—इस संसारमें कभी भी तृप्त न होने वाले तीक्ष्ण दंष्ट्रावोंके धारक यमराज तो स्वयं भक्षक हैं और समस्त प्राणी दीन भक्ष्य हैं। अब बतलावो कि जहाँ यह यम बड़े वेगसे जीवोंमें पक्षपात न कर जिस किसी का भी भक्षण कर देता है और सारे प्राणी उस यमराजके भक्ष्य हैं तो अब बचनेका कौन सा अवकाश रहा कि जो कहीं जीवन टिका रहे और मरण न हो। और भी देखिये कभी भी न थकने वाला यह काल प्रभु याने आयु कर्म यह परिवेषक है अर्थात् जीवोंको घेर-घेर कर यमके पास लाने वाला है और जहाँ एक साथ सैकड़ों, हजारों, लाखों बेहिसाब ग्रस लिए जाते हैं तब जीवनके बचनेका अवसर कहाँ रहा? एक तो वह यमराज कभी तृप्त नहीं होता कि मानो लाख दो लाख अथवा करोड़ जीवोंको मार लिया और तृप्त हो जाय और बैठ जाय आरामसे। लोगोंके जीवन बचे रहें, तो यह तो कभी तृप्त होता ही नहीं है और प्राणी दीन मरने वाले सर्वत्र हैं ही और इस पर भी यह आयुकर्म खींच-खींचकर ले जाता है कि अब इसका काल समाप्त और फिर एक साथ ही लाखों करोड़ों अनन्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

जीव मरण कर जाते हैं। निगोदमें तो एक श्वाँसमें १८ बार जन्मते मरते हैं। निगोदों की संख्या तो अनन्त है। अब बतलावो कि मरणसे बचनेका कोई तरीका भी रहा क्या? फिर ऐसी स्थितिमें मनुष्य की सदा कोई एक सी स्थिति बनी रहे यह कैसे सम्भव है? इसी कारण जो मृत्युसे डरने वाले पुरुष हैं, संसार संकट नहीं चाहते हैं उन्हें चाहिये कि वे वीतराग जैन तपका आचरण करें। वस्तुत: आत्मा अमर है। प्रत्येक पदार्थ जो भी सत् है मूलत: उसका कभी नाश नहीं होता। केवल अवस्थावोंका परिवर्तन होता है। सो जीवकी संसारदशामें नरक, तिर्यञ्च, मनुष्य, देव, ये अवस्थायें हैं, सो ये अवस्थायें न हों और जीवका जो स्वयं सहज स्वरूप है उस स्वरूपके अनुरूप इसका विकास हो तो यह सदा अमर ही रहा। अवस्थावोंमें गया तो भी जीवका नाश नहीं हुआ मगर कष्ट तो पाया। कष्ट न पाये और अमर रहे ऐसी स्थिति है तो वह परमात्माकी स्थिति है, अन्यथा इस संसारमें जो वीतराग तपका आचरण नहीं करता उसको अनन्त बार जन्मना और मरना पड़ता है। यदि कोई ऐसा पुरुष संसारमें प्राणियोंको मारने वाला होता कि मान लो कुछ लाख, करोड़ आदिक नियमित संख्या वाले जीवोंको खाकर तृप्त हो जाता, पर ऐसा तो यह काल नहीं है। वह तो अनन्त जीव मरें तो भी अगले क्षण ज्योंका त्यों फिर मारनेको तैयार है। खैर तृप्त नहीं भी होता, कुछ दूर देश या परिमित स्थानमें ही जाने वाला होता, संगम रहित होता तो भी कुछ गनीमत थी लेकिन आयुकर्मका क्षय इसकी सहायता तो निरन्तर बनी हुई है या मानो बेहिसाब न खाकर क्रमसे नम्बर वार खाता होता या मानलो कुछ कम पैनी ही दाढ़ वाला होता, तीक्ष्ण दंष्ट्र वाला न होता तब भी आशा की जा सकती थी। तो शायद कोई न कोई जीव यमराजके तृप्त होनेसे या उसकी गति न होनेसे, छिपकर बच जानेसे या सहायकके अभावसे या नम्बर न आने से बच जाता, किन्तु ऐसा नहीं है। जो चाहे जीव जिस किसी भी समय मरणको प्राप्त हो जाता है। इसलिए इस दुःखदायी संसारसे मुक्त होने के लिए मनुष्योंको वीतराग भगवान द्वारा बताये गए वास्तविक आत्मीय तपश्चरणको करना चाहिये। परमार्थ तपश्चरण है यह कि निज चैतन्य स्वरूपमें उपयोग रमाये रहें। सो, ऐसा विवेकीजन करके संसार सागरसे पार हो जाते हैं।

उद्धर्तुं धरणीं निशाकररवी क्षेप्तुं मरुन्मार्गतो वातं स्तंभयितुं पयोनिधिजलं पातुं गिरिं चूर्णितुं शक्ता यत्र विशंति मृत्युवदने कान्यस्य तत्र स्थितिर्यस्मिन्माति गिरिर्बिले सह बनैः कात्र व्यवस्था ह्यणोः ॥३०५॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

महाबलशालियोंके भी मरणकी अवश्यंभाविता—संसारमें ऐसे-ऐसे बलवान लोग हैं कि वे इस पृथ्वीको पलट सकते हैं। सूर्य और चन्द्रमाको आकाशसे उतार सकते हैं। पवनको स्तब्धकर जहाँ का तहाँ रोक सकते हैं। समुद्र को पीकर सोख सकते हैं, पहाड़ तकको चूर्ण कर डालनेकी सामर्थ्य रखते हैं। तो ऐसे लोग भी जब मृत्युके मुखमें फंस जाते हैं और निशक्तके समान नष्ट भ्रष्ट हो जाते हैं तो अन्य मनुष्य इस यमके मुखमें न आयेंगे यह कैसे हो सकता है। भला जिस छिद्रमें बड़े-बड़े जंगल सहित पहाड़ घुस जायें उस छिद्रमें क्या परमाणु याने पुद्गलका सबसे छोटा टुकड़ा टिक सकता है? क्या वह प्रवेश न कर पायगा? तो जहाँ ऐसे बड़े-बड़े बलशाली लोग भी मरण कर जाते हैं वहाँ छुद्र शक्ति वाले जीव क्या जीवित बने रहेंगे? जो जन्मा है सो मरणको प्राप्त होता है। अज्ञानीजन ही इस जीवनको तरसते हैं। मेरा मरण न हो, जीवन बना रहे, पर ऐसा तरसनेसे क्या मरण बच जायगा? क्या जीवन बना रहेगा? विवेकीजन कभी इस प्रकारकी धुन नहीं रखते कि मेरा मरण न हो। अरे यहाँ जिन्दा होकर भी क्या कर लिया? कौन सा हितका काम कर लेते हैं? ये ही संसारके समागम आँखों दिखते हैं, उनकी ओर उपयोग लगता है, दुःखी होते रहते हैं। जीवनमें भी क्या रखा? मरण न हो इस प्रकार की वाञ्छासे क्या लाभ? जो हो सो हो, वहाँ भी मैं अपने आत्माके सहज ज्ञानानन्द स्वरूपको निरखता रहूँ, मरण हो तो वहाँ भी मैं अपने ज्ञानानन्द स्वरूपको निरखता रहूँ। तो सहज परमातत्त्वके निरखने की तो आशा रखना चाहिए और उसी के लिए पौरुष होना चाहिये पर इस अशुचि क्षणिक मायामय शरीरके बने रहने की भावना करना बेकार है। जो हो सो हो, किन्तु सभी स्थितियोंमें मेरे को मेरा आत्मतत्त्व दृष्टगत रहे।

सुग्रीवांगदनीलमरुतसुतपृष्टैः कृताराधनो रामो येन विनाशितस्त्रिभुवन प्रख्यातकीर्तिध्वजः। मृत्योस्तस्य परेषु देहिषु कथा का निघ्नतो विद्यते कात्रास्था नयतो द्विपं हि शशको निर्यापकः श्रोतसः ॥३०६॥

सुग्रीवादिमहापुरुषसेव्य श्रीरामका भी वियोग—इस लोकमें श्रीराम बलभद्र जैसे बड़े महिमावान पुरुष व्याप्त हुए जिनकी तीनों लोकमें कीर्ति प्रसिद्ध हुई। जिनकी सुग्रीव, अंगद, नील, हनुमान जैसे महान पुरुषों द्वारा सेवा हुई है। श्रीरामकी इन महापुरुषोंने बड़ी भक्तिसे सेवा की है। तो ऐसी प्रसिद्ध कीर्ति वाले श्रीरामचन्द्र जी भी जब यमसे न बच सके, जिस यमने इनको भी नष्ट कर दिया। आयु कर्मके अन्तमें शरीरका नाता

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

छोड़कर उन्हें भी चलना पड़ा। यद्यपि श्रीराम भगवान हुए हैं, मोक्ष प्राप्त किया है, पर निर्वाण तो तब ही हुआ जब कि आयु कर्म व शेष सभी कर्म नष्ट हो गए। तो उनका मरण पंडित-पंडित मरण है, जिसके बाद जन्म नहीं होता और न कभी मरना पड़ता, तो ऐसा निर्वाण हुआ है आखिर वे भी इस जगतमें रह न सके। तब यह यम किसी अन्य पुरुषको क्या छोड़ेगा? जो जन्मा है सो नियमसे मरता है। इसमें किसी भी प्रकारका संदेह नहीं है। भला जो नदी का बहाव इतना तीव्र है कि बड़े-बड़े हाथियोंको बहा ले जाता है तो क्या बहुत छोटे खरगोश सरिखे जंतुवोंको वह बहाव छोड़ देगा? वह तो पत्तो के माफिक बहावमें बहाता चला जायगा। तो भला जब ऐसे-ऐसे महापुरुष भी इस काल से न बच सके तो हम आप किसी को भी अब यह आशा न रखना चाहिये कि हमारा जीवन बना रहे और कभी मरण न आये। हाँ यह भावना अवश्य रहना चाहिए कि जीवन बना रहे तो मुझको अपने सहज परमात्मस्वरूपकी आराधना रहे। मरण होता हो तो उस समय भी निज सहज परमात्मतत्त्वकी आराधना रहा करे।

अत्यन्तं कुरुतां रसायनविधिं वाक्यं प्रियं जल्पतु वार्धेः पारमियुर्तं गच्छतु नभो देवाद्रि-मारोहतु। पातालं विशतु प्रसर्पतु दिशं देशांतरं भ्राम्यतु न प्राणी तदपि प्रहर्तुमनसा सत्यज्यते मृत्युना ॥३०७॥

मृत्युसे बचनेके लिये बड़े-बड़े उपायों की व्यर्थता—यह जीव मृत्युसे बचनेके लिए चाहे रसायनका सेवन करे परन्तु इस विधिसे वह मरणसे बच जाय यह नहीं हो सकता। जब आयु कर्मकी अवधि पूरी हो रही है तो जीवन कैसे सम्भव है? जीवन तो आयु कर्म के उदयमें ही चलता है। तो चाहे कैसे हो रसायनका सेवन करे पर आयुकर्मकी अवधि पूरी होने पर यह मृत्युमुखमें अवश्य हो जायगा। कोई पुरुष बड़े प्यारे मीठे वचन बोला करे पर प्रिय वचन बोलने से या मृत्यु राजाकी आराधनासे या मृत्युंजय जाप करनेसे मृत्युसे नहीं बच सकता कोई पुरुष समुद्रके दूसरे तट पर चला जाय तो क्या वहाँ मरेगा नहीं? अरे उस जीवके साथ ही तो आयुकर्म लगा हुआ है, जिसकी अवधि पूरी होती है और मरण होता है। कोई चाहे आकाशमें उड़ जाय कि वहाँ कोई सताने वाला, मारने वाला न होगा, मगर उड़ते ही हालतमें यदि आयुका क्षय हो जाय तो उसे गिरना पड़ता है,। मरना पड़ता है। कोई पुरुष सुमेरुपर्वतकी चोटीपर जा बैठे यहाँ जीव बहुत मरते हैं इसलिए इस वातावरण को छोड़े और कोई हो ऋद्धिबल ऐसा कि जिस बलसे यह मेरु पर्वतकी चोटीपर जा बैठे तो इससे कहीं मरणसे न बच जायगा। कोई पुरुष पातालमें घुस जाय यह सोचकर

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कि यहाँ यमका प्रवेश नहीं हो सकता तो यम तो सबके साथ ही लगा हुआ है। आयु-कर्मके क्षयका ही तो नाम यम है। जहाँ भी जो पातालमें भी हो तो वहाँ पर भी यह मृत्युसे नहीं बच सकता। कोई पुरुष किसी भी दशामें कितना ही दूर चला जाय और किसी भी नये देशमें कितनी ही दूर घूमने जाय, परन्तु वह मृत्युसे कहीं बच नहीं सकता। जिस समय जीवके आयुकर्मकी अवधि पूरी हो जायगी उस समय इसको अवश्य ही मृत्युके मुखमें फसना पड़ेगा, अर्थात् मरण करना ही पड़ेगा।

कार्यं यावदिदं करोमि विधिवत्तावत्करिष्याम्यद स्तत्कृत्वा पुनरेतदद्य कृतवानेतत्परा-कारितं। इत्यात्मीयकुटुंबपोषणपरः प्राणी क्रियाव्याकुलो मृत्योरेति करग्रहं हृतमतिः संत्यक्तधर्मक्रियः ॥३०८॥

क्रियाबुद्धिमें ही रहकर धर्मका विस्मरण—यह प्राणी जबसे होश सम्हालता है तब से ऐसे विकल्प करता रहता है कि यह काम मैं आज करता रहूँ, इस कामको मैं कल कर दूँगा। यह काम आज कर दिया है, इस कामको मैंने पहले ही कर डाला है आदिक विधिसे अपने कुटम्बके पोषणमें ही लगे हुए सैकड़ों प्रसंगोंमें क्रियावोंमें फंसा हुआ रहता है पर अचानक आयु समाप्त होती है तो इस कालके गालमें जाकर फसना पड़ता है। जब बहुत छोटा बच्चा है, तो वह भी अपने अन्दर में कुछ न कुछ सोचता रहता है मगर कुछ प्रकट नहीं होता। जब यह कुछ बड़ा बनता है, होश सम्हालता है, सांसारिक होशकी बात कही जा रही है तब से यह जीव यह मैं करता हूँ, यह मैं करूँगा, यह मैंने किया है, यों करने-करनेके विकल्पमें ही लगा रहता है और कुटुम्ब आदिक पर पदार्थोंको विषयभूत बनाया करता है, पर यह मृत्युक्षय, मरणकाल अचानक ही आ जाता है और यह जीव कालके गालमें फंस जाता है। सो ऐसा जीवन तो गुजर जायगा परन्तु यह प्राणी धर्मकी ओर कुछ भी ध्यान नहीं देता। यदि कुछ शरीरका बल मिला है, वचनसे बोलनेकी शक्ति आयी है। शरीरसे चेष्टा करने लायक हुए हैं तो यह करने-करनेके विकल्पमें ही लगा रहता है। यह ध्यानमें नहीं ला पाता कि बाह्य पदार्थोंमें मेरे कुछ करने का सामर्थ्य ही नहीं है। जो कुछ मैं कर रहा हूँ कर सकता हूँ सो अपने आपके गुण और प्रदेशोंमें कर रहा हूँ। सो कृतार्थता की बुद्धि नहीं आती। मेरे करनेको कुछ पड़ा नहीं है, मैं परिपूर्ण हूँ मेरे को मुझमें करना क्या है। बाहरमें कहीं किसी भी पदार्थमें मैं कुछ भी कर सकता नहीं ऐसा सच्चा ज्ञान नहीं कर पाता और विकट विकल्पमें ही रहकर मृत्युके मुखमें चला जाता है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

मांधाता भरतः शिवो दशरथो लक्ष्मीधरो रावणः कर्णः कंसरिपुर्वलो भृगुपतिर्भीमः परेऽप्युन्नताः। मृत्युं जेतुमलं न यं नृपतयः कस्तं परो जेष्यते भग्नो यो न महातरुर्द्विपवरैस्तं किं शशो भंक्ष्यति ॥३०६॥

महारथियों द्वारा भी मृत्युकी अविजेयता—बड़े-बड़े पुरुषभी मृत्युको जीत न सके। जिसमें मांधाता कोई बड़े वीर पुरुष हुए हैं वे भी न रह सके। भरत चक्रवर्ती जिसका छह खण्ड पर राज्य था जब आयुकर्मका क्षय हुआ तो उसे भी जाना पड़ा। भले ही वह निर्वाण गए हों तो भी आयुका क्षय तो हुआ। महादेव जो बड़ी विद्यावोंके सिद्ध करने वाले थे विद्याबलसे जिसने जगतको वश कर रखा था वह भी न रह सके। दशरथ (श्री रामके पिता) जिनकी उस जमानेमें बड़ी कीर्ति थी वे भी न रह सके। लक्ष्मण, नारायण, जिनका छह खण्डका राज्य था, पर जब गए तो अचानक ही चले गए। रावण प्रति नारायण के बड़ी विद्यायें थीं, अनेक विद्यावोंके धारी थे, जिनके बलकी बड़ी महिमा गायी गई है वे भी यहाँ न रह सके। कृष्ण बलभद्र आखिर ये भी न रह सके। भृगुपति परसुराम, भीम आदिक बड़े-बड़े पुरुष पराक्रमी होने पर शरीर भी इस यमराज की दृष्टि को न सह सके और उनको भी आयुके क्षय होने पर त्यागना पड़ा तो फिर अन्य लोगोंकी कथा ही क्या है ? कौन सदा जीवित रहेगा ? अपने ही शरीरको टटोलकर बोलो कि यह ही तो शरीर है जो लोगोंके द्वारा जला दिया जायगा। कैसा मोह कि इस शरीर को अपनाया और उसके आधार पर खुश हुए, निन्दामें नाखुश हुए, अनुकूल बात हुई तो खुश हुए, प्रतिकूल बात हुई तो नाराज हो गए, जिसका फोटो चाहते, जिसका नाम चाहते वह क्या कोई पवित्र वस्तु है ? अरे वह तो नष्ट हो जाने वाली चीज है। उसके जीनेकी आशा करना व्यर्थ है। जो जन्मा है सो नियमसे मरणको प्राप्त होता है। ठीक ही है, जो महावृक्ष बड़े-बड़े हाथियोंसे न टूट सके उसे खरगोश चाहे कि मैं इस वृक्षको तोड़ दूँ तो क्या तोड़ सकेगा ? नहीं तोड़ सकेगा, ऐसे ही जब बड़े-बड़े पुरुष भी यमकी आज्ञाका भंग न कर सके, यमको न जीत सके तो क्या छोटे-छोटे पुरुष इस मरणको जीत लेंगे ? नहीं जीत सकते। जो जन्मा है उसे नियमसे मरना पड़ेगा। बुद्धिमानी इसमें है कि जितना जीवन है उतने काल अपने सहज परमात्मतत्त्वका आलम्बन लेकर सबका विकल्प छोड़कर आत्मानुभव करें और ज्ञानानुभवके आनन्दसे तृप्त होवें। इसीसे कर्म कटते हैं और जन्म जरा मरणके रोग नष्ट होते हैं।

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

सर्वं शुष्यति सांद्रमेति निखिला पाथोनिधिं निम्नगा सर्वं म्लायति पुष्पमत्र मरुतः शम्पेव सर्वं चलं। सर्वं नश्यति कृत्रिमं च सकलो यद्वद् व्यपक्षीयते सर्वस्तद्वतुपैति मृत्युवदनं देही-भवंस्तत्त्वेतः ॥३१०॥

सर्व प्राणियोंके मरणकी अवश्यंभाविता—लोकमें जितने भी पदार्थ गीले हैं वे सब सूख जाते हैं, समुद्र हो, कुवाँ हो, नदी हो, सभी सूख जाते हैं याने सब विनाशीक हैं अपनी एक स्थिति में कुछ भी नहीं रह सकता। जितनी नदियाँ हैं वे सब समुद्रमें विलीन हो जाती हैं, वे अपना अस्तित्व कहाँ रख पाती हैं? पानी बहा आगे गया, समुद्रमें गिरा तो ऐसे ही सभी पदार्थ अपनी-अपनी परिणति करते हैं और पुरानी परिणति नष्ट कर देते हैं। जितने पुष्प हैं वे सब सूख जाने वाले हैं, फूल न भी टूटें, वृक्षमें ही लगा रहे तो भी सूख जायगा। वृक्षसे गिर गया तो भी सूख जायगा, इसी तरह जंगलमें जितने भी जीव हैं वे सब मरणकी ओर जायेंगे, कोई सदा न रहेगा, जितने भी पदार्थ हैं वे बिजली के समान चंचल हैं। जैसे बिजली चंचल है, स्थायी नहीं रह सकती ऐसे ही जगतके कोई भी पदार्थ स्थायी नहीं रह सकते। जितनी कृत्रिम वस्तुवें हैं वे सब विनाश-शील हैं, इसी कारणसे जब कि ये विनाशशील हैं, नित्य नहीं तो ये प्राणी भी जन्म धारण करने वाले जितने हैं वे सब मरण कर जायेंगे। यह प्राणी मरनेसे डरता क्यों है? इसको परिग्रहसे मोह है इसलिए डरता है। इसे यदि आत्माकी सुध हो, आत्माकी दृष्टि रहे तो फिर मरणका क्या भय? यह आत्मा यहाँ जिस किसी भाँति दृष्ट है वही आत्मा चलकर अन्य जगह गया तो उसको कौन-सी बुरी बात मिल गई? जो आत्म-ज्ञानी हैं वे मरणसे नहीं डरते, वे ही मृत्युको जीतने वाले कहलाते हैं। और जो अज्ञानी मोही हैं वे मरणसे डरा करते हैं, शरीरसे मैं निकल जाऊंगा यह सोचकर अज्ञानीजन ही दुःखी होते हैं, वे जानते हैं कि मेरा यहाँ बड़ा यश था, लोग मुझे बड़ा समझते थे, हमारे पास इतना बड़ा वैभव था, हम बड़े आराममें रहते थे, अब यह सब छूटा जा रहा है यह सोच सोचकर अज्ञानीजन दुःखी रहा करते हैं। परन्तु ज्ञानी पुरुष जानता है कि मैं आत्मा आत्मामें ही रहता हूँ, जहाँ जाऊँगा वहाँ ही मैं आत्मा रहूँगा, मेरे अस्तित्वका कहीं भी विनाश नहीं है। वह व्याकुलतासे रहित होता है।

प्रख्यात द्युतिकांति कीर्तिधिषणाप्रज्ञाकलाभूतयो देवा येन पुरंदरप्रभृतयो नीताः क्षयं-मृत्युना। तस्यान्येषु जनेषु कात्र गणना हिंसात्मनोविद्यते मत्तेभं हि हिनस्ति यः स हरिणं किं मुंचते केशरी ॥३११॥

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

क्षुधित सिंह द्वारा हरिणके ग्रहणकी तरह यमके मुखमें सर्व प्राणियोंका प्रवेश—जैसे मदोन्मत्त हाथियोंको भी पछाड़ देने वाला सिंह दीन हीन छुद्र हिरणको नहीं छोड़ सकता। उसके लिए हिरणका खा लेना, मार लेना कोई कठिन है क्या ? उसे अवश्य ही मार डालता है सिंह अपनी क्षुधा मिटानेको या अपनी प्रकृतिके कारण, तो इसी प्रकार संसार-की प्रसिद्धिसे प्रसिद्ध प्रताप वाले बड़ी कान्ति कीर्ति, बुद्धिके धारण करने वाले सर्व कला और शक्तिके भंडार इन्द्रादिक देवों तकको नष्ट कर देने वाला यह यमराज छुद्र प्राणियों को नहीं छोड़ सकता। सब ही अवश्य मरणको प्राप्त होते हैं। देखिये कोई अलग देवता नहीं है जो लोगोंकी जान लेने आता हो, सभी जीवों के साथ कर्म लगे हैं, उन कर्मोंका क्षय होता है। आयुमर्मका क्षय हो गया, नवीन आयुका उदय आ गया उसको मरण कहते हैं। तो वर्तमान आयुके क्षय का नाम यम समझ लेना चाहिये। चूँकि साहित्यिक अलंकारमें यमका (मरणका) वर्णन हुआ है सो यह यम जब बड़े-बड़े इन्द्रोंको भी नष्ट कर डालता है, जिनकी बड़ी सागरों पर्यन्तकी आयु है, जो बीचमें कभी मर नहीं सकते, जिनका वैक्रियक शरीर है, कहो छोटा शरीर बन जाय, कहो बड़ा बन जाय, कहो हल्का बन जाय या वजनदार बन जाय। सो बड़ी नीति रीति ऋद्धिके धारी ये देवेन्द्र भी यमके द्वारा मरणको प्राप्त होते हैं। उनकी भी आयुका क्षय होता है। अब भला विचारो कि जो अनगिनते वर्षों स्वर्गोंके सुख भोग रहा वह भी अन्तमें मरणको प्राप्त होता है तब फिर हम आप क्षुद्र प्राणियोंकी तो कथा ही क्या है ? किसी भी समय मरणको प्राप्त हो जाते हैं। तो जिन्हें मरणका कष्ट न भोगना हो उन्हें चाहिए कि धर्ममें चित्त लगायें। जन्म जरा मरण रहित आत्माके ज्ञानानन्द स्वभावकी आराधना करें। उस रूप अपने आपको देखें तो ये कर्म सब सूख जायेंगे। शरीर मिलना बंद हो जायगा। सिद्ध भगवान हो जायेंगे। सदाके लिए इसके समस्त संकट टल जायेंगे। सो दृष्टि रहना चाहिए अपने आत्मस्वरूप की ओर और जगतमें किसी भी उपक्रमके कर्ता न बनना चाहिए, क्योंकि बाह्य पदार्थोंमें यदि इसका लगाव रहा तो फिर आत्माकी दृष्टि नहीं बन सकती। तो जिसके आत्माकी दृष्टि नहीं बनी उसका जीवन बेकार है। संक्लेश पूर्वक मरण करेंगे तो उसके फलमें कठिन दुःख भोगना होगा।

श्रीह्री कीर्तिरतिद्युतिप्रियतमाप्रज्ञाकलाभिः समं यद् ग्रासीकुरूते नितांतकठिनो मर्त्यं कृतांतः शठः। तस्मात्किं तदुपार्जनेन भविनां कृत्यं बिशुद्धात्मनां किंतु श्रेयसि जीविते सति चले कार्या मतिस्तत्त्वतः ॥३१२॥

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

यम द्वारा देहविनाशके साथ-साथ सर्व गुणोंका विनाश—यह यम ऐसा दुष्ट है कि यह केवल मनुष्यके शरीरको ही नष्ट नहीं करता किन्तु उसके साथ-साथ लक्ष्मी, लज्जा, कीर्ति, कान्ति, रति, प्रज्ञा, कला आदिक समस्त गुणोंको नष्ट कर देता है। जब मरे तो कान्ति भी गई, शरीर पर झुर्रियाँ छा जाती हैं। जीव चला गया तो उसके साथ तैजस कार्माण भी चले गए। तो जब तैजस शरीर निकल गया तो शरीरमें मुर्दानी छा जाती है कान्ति कहाँ रह सकती? तो यह यम केवल शरीरको ही नष्ट नहीं करता किन्तु साथ ही कान्तिको भी नष्ट कर देता है। लक्ष्मीको भी नष्ट कर देता है। मर गए तो सारी लक्ष्मी छूट ही गई। कीर्तिको भी नष्ट कर देता है। मर गए तो फिर उसके लिए कीर्ति क्या रही! पिछले भवोंमें न जाने कितने बड़े-बड़े काम किये होंगे पर आज उनकी कीर्तिका कुछ स्मरण भी है क्या? उस कीर्तिसे इस जीवको क्या लाभ? तो ऐसे हो किन्हीं कारनामोंसे यह कीर्ति यह बन भी जाय तो भी मरणके बाद फिर उस कीर्तिसे क्या सम्बंध? तो शरीरको तो नष्ट कर ही देता है यह आयुकर्म (यमराज) मगर कीर्ति आदिक को भी नष्ट कर देता है। प्रज्ञा—चतुराई, इस भवमें इस भव जैसी चतुराई है। जब बच्चे थे तब कोई चतुराई न थी, जब कुछ बड़े होते गए तो धीरे-धीरे चतुराई बढ़ती गई, अनुभव भी बना बड़ी उम्र तक ये सब बातें जानने में आयीं, मर गए तो सारी चतुराई एक साथ खतम हो गई, अब अगले भवमें यहाँ की चतुराई किस काम आयगी? यहाँ से मरकर मानलो फिर मनुष्यभवमें ही पैदा हो गए तो फिर शुरू से वही अ आ इ ई की पाटी पढ़नी पड़ेगी। जो जो भी कलायें इस जीवनमें सीख लिया, मान लो किसी ने हारमोनियम बजाना सीख लिया या टाईपिंगके काम सीख लिया या कोई भी कला का काम सीख लिया, तो मरण होने पर तो ये सब कलायें व्यर्थ हो जायेंगी। अगले भवमें वे कलायें क्या काम देंगी? मान लो मरकर फिर मनुष्य बने तो फिर से वही पाठ सीखना पड़ेगा। तो यह यम सिर्फ इस मनुष्यके शरीरका ही नहीं किन्तु सम्पूर्ण कला व गुण आदिकको भी नष्ट कर डालता है। तो जो बुद्धिमान पुरुष हैं, आत्माके स्वरूपको जो जानने वाले हैं वे इस चंचल जीवनमें जीते हुए ही अपने मोक्ष सुखका उपाय बना लेते हैं। आत्म स्वरूपको बरबाद करने वाले पदार्थोंमें वे प्रीति नहीं करते। इनके फंदेमें वे नहीं फंसते। तो मोक्षसुख पायें। मोक्षसुख पानेका उपाय क्या है? अपने सहज आत्मस्वरूप का श्रद्धान करना, ज्ञान करना, और उस ही रूप अपने को मानकर रह जाना, अन्य विकल्प न करना यही मोक्षके पानेका उपाय है।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

यो लोकैकशिरः शिखामणिसमं सर्वोपकारोद्यतं राजच्छीलगुणाकरं नरवरं कृत्वा पुनर्निर्दयः। धाता हंति निरर्गलो हतमतिः किं तत्क्रियाभां फलं प्रायो निर्दयचेतसा न भवति श्रेयोमतिर्भूतले ॥३१३॥

दैवका विचित्र कदम—यह भाग्य इस मनुष्यको पहले तो ऐसा बड़ा बना देता है, ऐसी अपनी भलमंसी दिखाता है कि तीनों लोकके सिर पर पैर रखने वाला अर्थात् ऊंचा बना देता है। समस्त संसारके उपकारमें लगा देने वाला ऐसा महान बना देता है और मुकुटके समान गुणोंसे देदीप्यमान बना देता है। जैसे इन्द्र देवका जब तक जीवन है, पुण्यका उदय है तब तक उसमें कितनी महान शक्ति है। कोई भूख प्यास आदिक की वेदना उनको नहीं, बड़ा ऊंचा बना दिया कर्म ने, पीछे वह ऐसा निर्दयपना दिखाता है कि इस बेचारे इन्द्रके प्राण ही हर लेता है। किसीको खूब सुख मिले जिन्दगी भर, पर उसका आखरी परिणाम क्या होगा सो तो विचारो बड़ा दुःखी होना पड़ेगा। भला जगतमें है क्या कोई ऐसा मनुष्य जिसने जीवन भर सदा सुख ही सुख पाया हो? ऐसा कोई नहीं है? पुण्योदयसे जितनी सुख सामग्री मिलती हैं वे जब अन्तमें विघटती हैं तो उनके पीछे बड़ा दुःख होता है। यह बात सब की निगाहमें है कि मरण होते समय यह जीव सबके विछोहका बड़ा कष्ट मानता है। तो यह दैव पहले तो मनुष्यके साथ बहुत भलमंसी दिखाता है, इसे खूब ऊँचा बना देता है राजा बन गया, सारे वैभव मिल गए, बड़े-बड़े लोग जिसकी आज्ञा में रहते हैं, सब कुछ है, पर अन्तमें उसकी क्या हालत होती है सो वही जानता होगा। सब कुछ छोड़कर जाते समय उसको बड़ा कष्ट होता है। तो यह यमराज बिना ही कसूर के इस जीवको शरीरसे पृथक् कर देता है। जीवन भर सुख पाये और इस मनुष्य ने भी न किसी पर अन्याय किया, न किसी को सताया, धर्मसाधना में भी लगा रहा लेकिन आयुका क्षय और यह यम उसे भी शरीरसे पृथक कर देता है और निरर्थक काम करनेकी जड़ बुद्धिका परिचय देता है। भला किसीको मार देनेसे उसे मिला क्या? मानो कोई मर गया तो उससे यमको मिला क्या? लेकिन इसकी ऐसी प्रकृति ही है। ऐसा स्वरूप ही है वस्तुका। कोई भी जीव शरीर बने तो उसकी म्याद होती है। भले ही लोग जिसे वैकुण्ठकी कल्पना करते कि वहाँ कल्पकाल तक जीव मुक्त रहता है और फिर अवधि पूरी हो जाती है, कल्पकाल व्यतीत हो जाता है तो उसे फिर संसारमें जन्म लेना पड़ता है ऐसा कुछ लोग कहते हैं। उनका यह आशय जैन शासनके स्वर्ग और ग्रैवयकमें उत्पन्न होने वालेके साथ लगता है ग्रैवयकमें जो

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

उत्पन्न हुआ है या उससे आगे और ऊपर मानो उत्पन्न हुआ है तो वे सब अहमिन्द्र हैं। वे होते हैं मुक्त जैसे, उनके मंद कषाय होती, शुक्ल लेश्या उनके होती। तो लोगों की दृष्टिमें वे भगवान की तरह हैं मगर उनके भी आयु है। जब आयुका क्षय होता है तो उन्हें भी मरण करना पड़ता है। तो जो जन्मा है वह मरेगा। ऐसा जानकर बुद्धिमानी इसमें है कि यहाँ ऐसा काम कर जायें जिससे हम भविष्यमें आराम और शान्तिसे रह सकें। उसका उपाय है आत्माका ज्ञान करना।

रम्या: किं न विभूतयोऽतिललिता: सच्चामरभ्राजिता: किं वा पीनदृढोन्नतस्तनयुगास्त्रस्तैण-दीर्घेक्षणा:। किं वा सज्जनसंगतिर्न सुखदा चेतश्चमत्कारिणी किं त्वत्रानिलधूत दीपकलि-काच्छायाचलं जीवितं ॥३१४॥

जगतमें सर्व पदार्थोंकी दु:खकरता व हेयता—इस संसारमें जो-जो पदार्थ दु:खदायी मालूम देते हैं, हेय मालूम देते हैं, असार दिखते हैं और शास्त्रोंमें उनके छोड़नेका उपदेश भी दिया है, यदि ये पदार्थ सदा संग रहते और यह मनुष्य मरता नहीं तो फिर इन्हें कौन छोड़ना चाहता ? मान लो स्त्री पुत्र, धन वैभव मकान महल आदिक सदा साथ रहते तो फिर कौन इन्हें छोड़ना पसन्द करता ? यह शरीर यदि सदा निरोग रहे, इसमें जन्म, जरा, मरण आदिक रोग न आयें तो फिर इस शरीरको कौन छोड़ना चाहता ? ये इसी कारण छोड़े जाते कि ये सब चीजें विनाशीक हैं, असार हैं। इनसे आत्माका कोई हित ही नहीं हैं, तब ही तो ये हेय बताये गए। तो ये सब दु:खदायी हैं, हेय हैं, शास्त्रोंमें इनको छोड़नेका उपदेश है। वे इसीलिए तो हेय हैं कि भाई जीवों की भी पर्यायें सदा बदलती रहती हैं। और फिर इन पदार्थोंकी परिणतियाँ भी बदलती रहती हैं, तो इनका संग सदा नहीं रह सकता है। इनका जीवन क्षणभंगुर है। पवन से प्रेरे गए दीपकके लौ के समान अल्पकालमें नष्ट हो जाने वाला है। जैसे कोई सरसोंके तैलका दीपक जल रहा और हवा तेज चल रही तो उस लौ के रहनेका क्या ठिकाना ? शीघ्र ही बुझ जायगा। इसी तरह जो जीवन मिला है यह कालके लपेटके मारे सब बुझ जायगा। सो ये सब विनाशीक हैं, हेय हैं, असार हैं, दु:खदायी हैं। यदि ऐसा न होता सभी पदार्थ हमेशा एक समान बने रहते और यह मनुष्य भी न मरता तो फिर कौन पुरुष घरको त्यागकर, राज्यविभूतिको त्यागकर निर्ग्रन्थ होता। बनका सहारा लेनेकी फिर किसको जरूरत पड़ी थी ? तो चूँकि ये सारे पदार्थ विनाशीक हैं इस कारण ये हेय हैं, असार हैं, इनको बुद्धिमान पुरुष त्यागते हैं।

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

बाह्यार्थोंके त्यागे जानेका कारण बाह्यार्थोंकी विनश्वरता भिन्नता व हेयता—देखिये राज्य वैभव किसे प्यारा नहीं लगता ? जहाँ प्रजातंत्र पद्धति है वहाँ भी लोग यह चाहते हैं कि मैं राज्यका नेता बनूँ और जहाँ राज्य पद्धति बनी हुई है वहाँ राजा लोग अपने में बड़ी प्रभुत्व महसूस करते हैं। यद्यपि उनकी यह गलती है, इस थोड़े दिनोंका सुख समागम मिला तो उसमें क्या आसक्त होना, लेकिन कर्मोदय ऐसा है कि अपने को भूल जाते हैं और मिले हुए समागमोंसे अपनेमें अंहकार अनुभव करते हैं, गौरव अनुभव करते हैं। तो ये प्राणी यदि सदा रहते और इन पदार्थों का समागम सदा रहता तो इनको कौन त्यागनेकी वाञ्छा करता ? बड़े-बड़े महापुरुष तीर्थंकर जिनके देव रक्षक, देव सेवक जिनके मनको बहलानेके लिए इन्द्र तरसता, उन तीर्थंकरोंने भी सर्व परिग्रहोंको त्यागा और अपने आपमें अपने सहज परमात्मतत्त्वका ध्यान किया, जिसके प्रसादसे सर्व कर्मकलंक से छूटकर वे सिद्ध हुए। यदि ये पदार्थ सदा रहते, एक सरीखे रहते और यह मनुष्य भी सदा रहता तब तो धर्म कर्म क्या ? यह ही धर्म बन गया कि इस पदार्थको लिए रहो, भोगते रहो क्योंकि ये मिटने वाले नहीं हुए। न ये मिटने वाले हुए तो सदा छोड़ता ही न यह। जीव तो जितने लोग विरक्त हैं, विरक्त हुए हैं, विरक्त हुए थे वे इसी आधार पर तो विरक्त हुए कि ये सब पदार्थ विनाशीक हैं। इनके लगावमें आत्माको कोई लाभ नहीं होता। सो ये समस्त पदार्थ क्षणभंगुर हैं। जब पुरुषोंकी पार्टी बन गई, एक संगति बन गई, मित्रता बन गई तो उनको उस ही में आनन्द आ रहा कि इस मित्रता को कौन छोड़े ? यदि पदार्थ विनाशीक न होते, सदा ही जीवके साथ रहते तो इन पदार्थों को कौन त्यागता ? तो वैराग्यका आधार ही यह है कि सारे पदार्थ विनाशीक हैं, मुझसे निराले हैं। मेरा इनसे कोई सम्बंध नहीं है, बल्कि उसकी ओर लगाव बना रहता है तो उससे पापकर्म का ही वंध होता है, जिसके फलमें भविष्यमें नाना कष्ट भोगे जाते हैं। आत्महित केवल अपने ही स्वरूपसत्त्वके कारण जो अपनेमें स्वरूप है ज्ञानमात्र आनन्दमय उस ही रूप अपनेको अनुभव करे तो इसको संसारके संकटोंसे मुक्ति हो सकती है, और अपनेको भूल जाय और बाह्य पदार्थोंमें ही रमण करें तो उसका संस्कार चक्र कभी नहीं मिट सकता। जिनको मृत्युसे बचना है, संसारसंकटोंसे हटना है उनका कर्तव्य है कि संकटहीन अंतस्तत्त्वकी उपासना किया करें।

यद्येतास्तरलेक्षणा युवतयो न स्युर्गलद्यौवना भूतिर्वा यदि भूभृतां भवति नो सौदामिनि-संनिभा। वातोद्भूततरंगचंचलमिदं नो चेद्भवेज्जीवितं को नामेह तदेव सौख्यविमुखः

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

कुर्याज्जिनानां तपः ॥३१५॥

समागत युवती आदिके विनश्वरपनेके अभावमें तपोवृत्तिकी अनाश्रेयता—यदि इस संसारमें चंचल नेत्र वाली युवतियोंका मनोहारी यौवन ढल जाने वाला न होता तो उस सुखको छोड़कर परोक्ष सुख पाने की इच्छा से कौन तपश्चरण को तपता ? युवतियोंके मनोहारी चंचल नेत्र पुरुषोंकी कामवासनाको उद्गत करते हैं और यह मोही पुरुष वहाँ आसक्त होकर सुखका अनुभव करता है। यदि यह मनुष्य ऐसा ही बना रहे समर्थ और ये स्त्रियाँ सदैव इसी प्रकार संगमें रहें तो कौन तपश्चरणको तपता ? चूँकि ऐसा कभी हो ही नहीं सकता कि यह मनुष्य बलवान बना रहे भोग भोगने की सामर्थ्य वाला बना रहे और जिन युवतियों का संग समागम हुआ है वे सदा रहें, उनका कभी मरण न हो न खुदका मरण हो, ऐसा कभी हो ही नहीं सकता। यही तो संसारका रूप है, अतएव विवेकीजन इस भोग सामग्रीको त्याग कर तपश्चरण किया करते हैं। बड़े-बड़े राजावोंका ऐश्वर्य बिजलीके समान क्षण-क्षणमें चलायमान होता है, यदि यह राज्य ऐश्वर्य क्षणभंगुर न होता, स्थिर रहता, सदा साथ रहता तो कौन इस राज्य वैभवको त्यागता और तपश्चरणमें लगता, चूँकि ऐसा है ही नहीं कि राज्य वैभव सदा बना रहे। वह छूटता ही है, जीवनमें छूटता है, मरकर छूटता है इसलिए ये सब भी असार हैं और विवेकीजन बड़े वैभवको त्याग कर तपश्चरणमें लगा करते हैं। इस मनुष्यका जीवन वायुसे कँपायी गई चंचल तरंगों के समान क्षणस्थायी है। यदि कदाचित इस मनुष्यका जीवन सदा स्थिर रहता और ऐसा ही बलशाली रहता याने एक-सा बना रहता तो कौन पुरुष इस प्रत्यक्ष सुखको छोड़कर परोक्ष सुख पानेकी इच्छासे जैन तपश्चरणको करता ? चूँकि जीवन क्षणभंगुर है और ऐसा श्रेष्ठ मन मिला है कुछ समयको तो विवेकीजन इस मनको सहज परमात्मतत्त्वके ध्यानमें लगाते हैं और अपने जीवनक्षण सफल करते हैं।

मांसासृग्रसलालसामयगणव्याघ्रैः समाध्यासितां नानापायवसुंधरा रुहचितां जन्माटवीमाश्रितः। धावन्नाकुलमानसो निपतितो दृष्ट्वा जराराक्षसीं क्षुत्क्षामोद्धत मृत्युपन्नगमुखे प्राणी कियत्प्राणिति ॥३१६॥

जराराक्षसीके आक्रमणसे व्याकुल प्राणियोंका अटपट भागकर यम अजगरके मुखमें प्रवेश—मांस मज्जा खून आदिक अनेक धातु उपधातुवोंकी लालसा करने वाले इस रोग रूपी व्याघ्रोंसे यह संसार रूपी जंगल वेष्ठित है। जैसे जंगलमें अनेक व्याघ्र फिरा करते हैं जो दूसरोंके प्राण हरा करते हैं ऐसे ही इस संसारमें नाना प्रकारके रोग भरे पड़े

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

हुए हैं, इन भोगोंसे मांस मज्जा रुधिर आदिक धातुवें खोटी हो जाती हैं, सूख जाती हैं और नाना प्रकारके विघ्न रूपी वृक्षोंसे सघन है यह जन्मरूपी विशाल जंगल। जैसे विशाल वन नाना वृक्षोंसे सघन रहता है तो यह भी नाना विघ्न रूपी वृक्षों से भरा हुआ है। प्रत्येक जोवके कदाचित दुःख कम होता है, सुख आता है तो उसमें अनेक विघ्न उपस्थित होते हैं एक प्राकृतिक बात है, जो आत्मीय आनन्द नहीं है, जो सहज नहीं है, स्वाभाविक नहीं है उसकी क्या प्रतिष्ठा? उसमें तो विघ्न आया ही करते हैं। ऐसा नाना विघ्नोंसे भरा हुआ यह जन्मरूपी विशाल जंगल है। सो इस जन्ममें, इस जीवनमें जरा अर्थात् वृद्धावस्थारूपी राक्षसीको देखकर यह जीव व्याकुल हो गया है। इधर-उधर भागता है यह मन। इधर-उधर भागता हुआ यह जीव अजगर के मुख में पड़ जाता है। जैसे कोई पुरुष ऐसे जंगलमें फंस गया कि जिसके पीछे राक्षसी लग गई खानेके लिए तो डरके मारे इधर-उधर व्याकुल होकर भागता है और भागनेमें ही अजगरके मुखमें पहुँच गया, तो जैसे उसकी दुर्दशा है ऐसे ही वृद्धावस्थारूपी राक्षसीको देखकर यह जीव घबड़ाता है, इधर-उधर भागता है, उस अटपट भागते हुएमें उस यमराजके मुखमें, अजगरके मुखमें पहुँच गया जो भूखसे मुख बाये हुए था सो वहाँ यह जीव शीघ्र ही अपनी वर्तमानकालकी पर्यायका विनाश कर लेता है, याने प्रत्येक जीव बड़ी दुर्दशावोंमें आकर मरण कर लिया करते हैं ऐसे मृत्युसे व्याप्त इस संसारमें जो जीव रमते हैं, भोगकी इच्छा रखते हैं वे पुरुष महान अज्ञान अंधकारमें फसे रहते हैं और उन्हें सन्मार्ग नहीं दिखता। व्याकुल होकर संसारमें जन्म मरण करके भटकते ही रहा करते हैं।

मृत्युव्याघ्रभयंकराननगतं भीतं जराव्याधत स्तीव्रव्याधिदुरंतदुःखतरुमत्संसार कांतारगं।
कः शक्नोति शरीरिणं त्रिभुवने पातुं नितांतासुरं त्यक्त्वा जातिजरामृतिक्षतिकरं जैनेंद्र धर्मामृतं ॥३१७॥

मरणाक्रान्त जीवोंका धर्मातिरिक्त अन्य साहाय्यका अभाव—यह जीव बड़े तीव्र व्याघ्रोंसे भरे हुए इस संसारवनमें दुःख भोगता रहता है। नाना तरहके दुःख रूपी वृक्षोंसे सघन इस संसारवनमें यह जीव संकट भोगता रहता है और जब वृद्धावस्था रूपी व्याघ्रोंसे घिरा हुआ भयभीत हुआ यह जीव भयंकर यम रूपी व्याघ्रके मुखमें चला जाता है। उस समय उसकी रक्षा करने वाला कौन? जन्म मरणको नष्ट करने वाले जिनेन्द्र भगवानके द्वारा प्रणीत धर्मके सिवाय कोई बचा नहीं सकता। वे पुरुष धन्य हैं जो मृत्यु समयमें एक चैतन्यस्वरूप आत्मस्वरूप आत्मधर्मकी आराधना किया करते हैं। इस सद्धर्मको

Version 1

http://sahjanandvarnishastra.org/

आराधनाके प्रतापसे वह अगला भव पायगा तो सही, पर उत्तम पायगा और वहाँ संयम धारण करके संसारके संकटोंसे सदाके लिए छूट जायगा, ऐसा उसका पौरुष होगा। यदि कोई इस जीवको जन्म मरणके दुःखसे बचाने वाला है, इस जीवका यदि कोई रक्षक है तो वह जिनेन्द्र भगवान द्वारा उपदिष्ट यह सच्चा धर्म ही है। यह धर्म कहीं बाहर नहीं है। अपने आपका जो सहज स्वरूप है अपने ही सत्त्वके कारण अपना ही जो शील है, स्वभाव है उस रूप-अपनेको अनुभवना कि मैं वास्तवमें सहज चैतन्यमात्र ही हूँ। जो पवित्र आत्मा अपने आपके वास्तविक सहज स्वरूपको दृष्टिमें ले लेता है और इस अनुभव के प्रसादसे अलौकिक आनन्दका अनुभव कर लेता है वह पुरुष संसारमें संकटोंसे नियमतः छूट जायगा। विवेकी पुरुषोंको इस सहज परमात्मतत्त्वकी आराधना रखना चाहिये। इसकी दृष्टिमें यह ही सहज अंतस्तत्त्व बना रहना चाहिये। मृत्युको जीतने वाला यदि कोई तंत्र है तो यही सहज आत्मस्वरूपकी आराधना है। इसके अतिरिक्त जगतमें अन्य कोई तंत्र मंत्र नहीं है जो इस जीवको मृत्युकी परम्पराओंसे बचा सके। इस जीवका स्वरूप ही ऐसा नहीं है कि किसी वस्तुको कोई दूसरा परिणमा सके। मुझ जीवको मैं ही सुधारमें ला सकता हूँ और मैं ही बिगाड़में ला सकता हूँ। सहज आत्मस्वरूपकी अनुभूति होना यही वास्तविक धर्मपालन है।

एवं सर्वजगद्विलोक्य कलितं दुर्वारवीर्यात्मना निस्त्रिंशेन समस्तसत्त्वसमितिप्रध्वंसिना मृत्युना। सप्रत्नत्रयशातमार्गणगणं गृह्णंति यच्छित्तये संतः शांतधियो जिनेश्वरतपःसाम्राज्यलक्ष्मीश्रिताः ॥३१८॥

जन्मजरामरणाक्रान्त लोकमें विवेकियों द्वारा धर्मपालनका कर्तव्य—संसार का स्वरूप काफी बताया गया है, प्रत्येक पदार्थ अपने आपके ही सत्त्वके कारण स्वामी हैं, अपने आपकी ही परिणतिसे परिणमते हैं। भले ही विकार परिणति के लिए निमित्त नैमित्तिक योग अनिवार्य बना हुआ है, पर परिणमन सबका स्वयंका स्वयंमें है। यह वस्तु स्वातंत्र्य कभी भी खण्डित नहीं होता, ऐसे अपने-अपने स्वरूप में परिणमने वाले पदार्थोंका समूह ही तो यह जगत है तो जगतका जिसने सत्य स्वरूप जान लिया वह शान्त पुरुष इस यम-को जगतको जीतनेके लिए सम्यग्दर्शन आदिक रत्नत्रय रूप तीक्ष्ण बाणोंको ग्रहण करता है, यह जगत मृत्युरूपी राक्षससे व्याप्त है। अनन्तानन्त प्राणी अपनी अपनी आयुके क्षय होते ही मरणको प्राप्त होते हैं। सारी व्यवस्था ओटोमेटिक बनी हुई है। जिसने जैसे कर्म किया उसके अनुसार उस पर वैसी घटना बीतती है। इस मृत्युरूपी राक्षसने समस्त

Report any errors at vikasnd@gmail.com

http://www.jainkosh.org

प्राणियों के नाश करने की कमर कसी है। उसके नाशके लिए भी शान्त पुरुष ज्ञानी सम्यग्दृष्टि जीव भगवान जिनेश्वरके तपके साम्राज्यके प्रभावसे तपस्वी रत्नत्रयके धारी पुरुष इस मृत्यु पर विजय प्राप्त करते हैं। निर्वाण प्राप्त कर लेना ही वास्तवमें मृत्यु पर विजय पाना है, सो यह निर्वाण इच्छा निरोध चैतन्य प्रतपन परमार्थ तपके प्रसादसे होता है और सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र जो आत्मस्वरूप है, स्वाभाविक है, इन तीक्ष्ण वाणोंसे उस मृत्युका विनाश कर डालते हैं, जहाँ आत्माने अपने सहज आत्मस्वरूपका दर्शन किया और अपनी ही इस ज्ञान ज्योतिको निरन्तर निरखते रहते हैं, इस ज्ञानस्वरूपमें ही अपने आपको मग्न रखना चाहते हैं उन पुरुषोंको क्या संकट है और यह अमर आत्मा उनकी दृष्टिमें है और इस दृष्टिके प्रसादसे अद्भुत अनन्त सहज आनन्द भी भोगा जा रहा है तो वे पदार्थ हैं, उनको अब किस प्रकारका कष्ट रहा ? सो जो स्वपर तत्त्वके यथार्थ जानकार हैं वे पुरुष इस रत्नत्रय रूपी पैने वाणोंको ग्रहण करते हैं और इस यम-राजका खोज मिटाना चाहते हैं। वास्तवमें इस आत्माका परम मित्र आत्माका धर्म है, पर वह अपने आपमें ही शक्तिमान है, अपने आपको हो अपने द्वारा निरखता है, अथवा यह आत्मा सहज अपने आप ही स्वभावतः मौन रूप है, जाननहार है इसमें जो विकार आते हैं वह सब कर्मकी छाया है। जहाँ कर्मसे निराले सहज ज्ञानस्वरूपको देखा वहाँ छाया की प्रतिष्ठा नहीं रहती। जब यह आत्मा अपने आपके स्वरूपका अनुभव लेता हुआ सहज ज्ञानान्द स्वभावी अमृतका पान करता हुआ तृप्त रहता है तो जन्म जरा मरण इस संसार रोगके मिटानेकी अचूक औषधि है। सहज आत्मस्वरूपका अनुभवन है। सो हम सबका कर्तव्य है कि इस सहज आत्मस्वरूपका अनुभव पाकर हम अपने इस दुर्लभ मानव जीवन-को सफल करें।

Version 1